साधनों से योग तक

आज इष्ट-प्रेरणा से आपके सम्मुख बहुत विरोधाभासपूर्ण विषय रखूँगा–**'साधनों से योग तक'।** आपने समझा होगा साधना से योग तक–नहीं! किस प्रकार हम गृहस्थ में सांसारिक कृत्य करते हुए और साधनों को भोगते हुए महायोग की स्थिति को प्राप्त हो सकते हैं? क्योंकि मैं अक्सर कहता हूँ, कि **हमें जीवन काटना नहीं है, जीना है।** अतः जीवन को आनन्दमय और सुखमय जीने कि लिए क्या साधन आवश्यक हैं? क्या सुख-साधन हमारे जीवन को सुखमय बनाने के लिये स्वयं में पूर्ण हैं? सुख क्या है? साधनों की उसमें कितनी एवं क्या भूमिका है? सुख का स्त्रोत क्या है? सुख कार्यान्वित कहाँ से होता है? आज इन सब पहलुओं पर एकाग्रतापूर्वक पुनर्विचार करना परमावश्यक है।

अपने अनेक प्रवचनों में जैसा मैं इंगित कर चुका हूँ, कि ईश्वर सद्, चेतन एवं आनन्द का अविरल एवं अकाट्य सम्मिश्रण सच्चिदानंद है। देशातीत, कालातीत, धर्मातीत, कर्मातीत, कर्तव्यातीत, सम्बन्धातीत, त्रिगुणातीत एवं मायातीत है और स्वयं में ठोस-घन-शिला होते हुए भी हर्ष, उल्लास, अभय, आरोग्यता, सर्वसम्पन्नता, भक्ति, मस्ती, शक्ति, साहस, उत्साह, कृपा एवं आनन्द का सागर है। ऐसे सर्वशक्तिमान महाप्रभु की इस पृथ्वी पर सर्वोत्कृष्ट रचना **'मानव-देह'** है। यह मानव-देह माँ के गर्भ में नौ महीने सात दिन में निर्मित होने के बाद पृथ्वी पर उतरती है। इसे एक नाम दे दिया जाता है और शनैः शनैः इसकी बुद्धि का तथाकथित विकास होता है। दुर्भाग्यवश बुद्धि के विकास के साथ एक बहुत बड़ी भूल, बहुत बड़ी त्रुटि

व भयंकर अपराध हो जाता है, जिसका नाम है–**'देहाध्यास', कि 'मैं देह हूँ'**। जीवात्मा स्वयं को उस देह व उस देह के नाम से पहचानने लगता है, कि मैं अमुक-अमुक हूँ, अमुक-अमुक की सन्तान हूँ, अमुक-अमुक मेरा घर, जन्म-स्थान व प्रतिभाएँ आदि हैं। इस प्रकार हर मानव धर्म, कर्म व अन्य सब प्रकार की उपाधियों से स्वयं को लादकर सुख-साधनों की ओर दौड़ने लगता है। हम ईश्वर से विमुख होकर स्वयं को **'स्वयंभू'** ईश्वर ही समझने लगते हैं, कि मैं ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश हूँ। इस सृष्टि को चलाने वाला भी मैं ही हूँ, क्योंकि मैं स्व-निर्मित हूँ।

यहाँ से अन्धाधुन्ध दौड़ प्रारम्भ हो जाती है, क्योंकि **'सैल्फ-मेड'** ज़्यादा दौड़ते हैं। उनको दौड़ना पड़ता है, क्योंकि वे **'सैल्फ-मेड'** होते हैं, कि मैं अपने जीवन को अति उत्कृष्ट, अति विलक्षण और अति सुखमय बना कर ही छोड़ूँगा। मैं अपने परिवार को अमुक-अमुक स्थिति पर अवश्य ले आऊँगा। अपने बच्चों को मैं ऐसा बना दूँगा और न जाने क्या-क्या परिकल्पनाएँ तथा सपने हम अपने हृदय में संजोए, ईश्वर से विमुख होकर दौड़ने लगते हैं। हम भूल जाते हैं, कि हमारी इस देह का निर्माता कोई और था, वही इसका पालन करने वाला है तथा इसका संहार भी वही करेगा। तथाकथित विकसित बुद्धि इस तथ्य पर विचार ही नहीं करना चाहती, कि सारे जीवन के एक-एक पल, एक-एक क्षण व एक-एक श्वास का संचालन किसी और के हाथ में है, क्योंकि यह जीव **'सैल्फ मेड'** का जामा पहन लेता है।

हम अपने सच्चिदानन्द स्वरूप, जिसने हमें यह देह दी है, उसे भूलकर और उससे पूर्णतया विमुख होकर डिग्रियों, पदार्थों, धन-सम्पत्ति, पद, ज़मीन-जायदाद आदि की प्राप्तियों की ओर दौड़ने लगते हैं। ईश्वर हमें नहीं भूलता, हम ही उसे भूल जाते हैं। इसलिए इस भूल के लिए दैवीय अदालत से एक सज़ा मिलती है। एक नोटिस आ जाता है, कि ''यह मूर्ख मुझसे विमुख हो चुका है, अतः जो सुख-साधन इसे जन्मजात प्राप्त हैं और जो यह अहं वश अपनी तथाकथित बुद्धि से प्राप्त कर रहा है, उन सबके

सुखमय भोग का अधिकार इससे छीन लो।'' अतः **'सैल्फ-मेड'** भाग-दौड़ कर बहुत सुख-साधन एकत्रित करते रहते हैं, एकत्रित कर भी लेते हैं, लेकिन उनको सुख नहीं मिलता। क्योंकि वे मात्र सुख-साधनों को ही सुख का स्रोत समझने की भूल कर बैठते हैं, जो कि नितान्त विकृत मानसिकता का द्योतक है। सब कुछ मिल जाता है, लेकिन सुख नहीं मिलता:–

''यूँ तो तेरे बग़ैर मुझे कुछ कमी नहीं,
ये और बात है कि मयस्सर खुशी नहीं।''

सुख, साधनों में नहीं है। **सुख इन्द्रिय-जनित है और हमारी इन ज्ञानेन्द्रियों के पास अपना स्वयं का सुख भी नहीं है। ये उन साधनों के सम्पर्क-द्वारा हमारे आनन्द-स्वरूप से सुख लेकर, हमें देती हैं।** इन्द्रियों की क्षमता सीमित है और इन्द्रियों को सुख-साधनों की भी आवश्यकता है तथा वे सुख भी देती हैं, तो हमारे आनन्द-स्वरूप से उधार लेकर। जैसाकि मैं अनेक बार वर्णन कर चुका हूँ, कि यदि आपके पास एक से एक मनमोहक, भव्य, सुन्दर एवं स्वादिष्ट भोग-पदार्थ हों तथा आपकी इन्द्रियाँ भी स्वस्थ हों, परन्तु किसी कारण से आपका मन विक्षिप्त हो जाए और भीतर से आनन्द में अवरोध आ जाए, तो आपका उन पदार्थों की ओर देखने का भी मन नहीं करेगा। जैसे, यदि बिजली गुल हो जाए तो बल्ब भी हों, सारी फिटिंग भी ठीक हो, लेकिन बिना विद्युत-धारा के प्रकाश नहीं हो सकता। अतः आपको सुखी बनाने के लिए इन्द्रियों को तीन औपचारिकताओं की आवश्यकता है। **सर्वप्रथम, इन्द्रियों का स्वस्थ होना, दूसरा, सुख-साधनों का प्राप्त होना और सबसे महत्त्वपूर्ण है, भीतर से आपके आनन्द का सम्पर्क होना।** तीनों में से एक के भी अभाव में आप सुख नहीं ले सकते और हमारी सम्पूर्ण दौड़ होती है, ईश्वर-विमुख होकर सुख-साधनों की प्राप्ति की ओर।

ईश्वर क्या है–**सच्चिदानन्द–सद्, चेतन और आनन्द का पुंज,** ईश्वर-विमुखता से यहाँ अभिप्राय है, अपने आनन्द-स्वरूप से विमुखता। सुख-साधनों को भोगने के लिए वहाँ से आनन्द की पूर्ण पूर्ति चाहिए। आप अपने सच्चिदानन्द-स्वरूप से यदि विमुख हो जाते हैं, तो संसार के समस्त

सुख-साधन भी एकत्रित कर लें, तो भी आप सुख नहीं ले सकते। आप तनावित हो जाएँगे, कि मेरे पास इतना सब कुछ है, लेकिन मैं सुखी क्यों नहीं हूँ? दूसरे, सुख के लिए महत्त्वपूर्ण तथ्य है, **कि सुख सीमित है, लेकिन आनन्द असीम है, उसकी कोई सीमा नहीं है।** क्योंकि सुख इन्द्रियों से उत्पन्न होता है, जो दैहिक हैं, भौतिक हैं। जीवन में एक अवस्था ऐसी भी आती है, जब इन्द्रियों की शक्ति बिल्कुल क्षीण हो जाती है। धीरे-धीरे सारी इन्द्रियाँ जवाब देने लगती हैं, कि जितना चाहे सुख-साधन एकत्रित कर लो, हम आपको सुख नहीं दे सकतीं। सुख की उत्पत्ति की सीमा केवल इन्हीं इन्द्रियों तक है और इस सुख को भी वे हमारे आनन्द-स्वरूप से उधार लेती हैं, जो कि **'अतीन्द्रिय'** है, इन्द्रियों से परे है। आनन्द का कोष इन्द्रियों से परे है, दोनों आपके लिए हैं। तथाकथित सुख देने वाली इन्द्रियों से सुसज्जित ये भौतिक देह भी आपके लिए है, लेकिन यह आपका स्वरूप नहीं है। दुर्भाग्यवश, यही गलती हमसे हो जाती है, जिसे मैं अपने अनेक प्रवचनों में विस्तार से वर्णन कर चुका हूँ।

आपका यह सच्चिदानन्द-स्वरूप जो आनन्द देता है, वह शाश्वत् है। वह अजर, अमर, अनादि एवं अनन्त है। जो देह व इन्द्रियों को सब सुख देता है, शक्ति देता है और अखण्ड आनन्द से परिपूरित है, वह आप ही का अपना स्वरूप है। आपने देह को अपना स्वरूप समझा, जो कि नश्वर है। अब चुनाव आपका है, कि आप किसे चुनें! एक नश्वर है जो गलेगा, क्षीण होगा और जाएगा। उसके सुख के लिए हम सारी उम्र भाग-दौड़ कर सुख-साधन एकत्रित करते रहते हैं। अरे! सुख-साधनों से क्या आपका जीवन सुखद हो जाएगा? ध्यान रहे, यदि आपका लक्ष्य मात्र जीवन को सुखद बिताना है, तो ये एकत्रित की गई सुख-सुविधा की वस्तुएँ आपको दुःख अवश्य देंगी।

जीवन का परिदृश्य बदलता रहता है, कभी सुख-साधन नहीं होते, कभी इन्द्रियों में भोगने की क्षमता नहीं होती और कभी आपके भीतर के आनन्द की पूर्ति में किसी कारणवश अवरोध आ जाता है, **तो इन्द्रियों द्वारा भोग-पदार्थों से लिए हुए सुख की स्मृति आपको दुःखी अवश्य कर देगी,**

इसे कोई नकार नहीं सकता। इतना समय आप अपने शाश्वत-स्वरूप का दिग्दर्शन करने, सान्निध्य प्राप्त करने और उसे आत्मसात् करने में लगाते तो आप अमर हो जाते।

प्रश्न यह उठता है, कि क्या हम अपनी देह को उपेक्षित कर दें, क्योंकि यह नश्वर है? कदापि नहीं। इसकी पूजा करना और इसका बहुत ख्याल रखना, लेकिन इसको अपना स्वरूप मत समझना। क्यों मिलती है बार-बार मुझे यह नश्वर देह? एक मूर्ख भी जानता है, कि जो पैदा हुआ है, वह एक दिन मरेगा अवश्य। फिर इस नश्वर देह की क्या आवश्यकता है? क्यों है यह? न तो 'मैं यह देह हूँ' और 'न यह मेरी है' परन्तु 'यह मेरे लिए ही है', तो क्यों है मेरे लिए? मेरे लिए इसकी क्या भूमिका है? **वास्तव में यह मेरे शाश्वत् स्वरूप से मेरी पहचान करवाने के लिए मुझे दी गई है।** मैं अपने उस शाश्वत् आनन्दमय-स्वरूप को इस देह के माध्यम से कैसे पहचानूँ? यह जानना बहुत महत्त्वपूर्ण है।

मैं सुखपूर्वक जीवन जीना चाहता हूँ, ताकि यह देह मुझे तंग न करे, अपितु सहायक हो। ताकि मैं अपने उस शाश्वत्-स्वरूप को पहचान सकूँ, उसकी अनुभूति कर सकूँ, जिससे जन्म-जन्मान्तरों से **मैं बिछुड़-सा** गया हूँ। वह स्वरूप दिग्दर्शित नहीं होता, वह अदृश्य है और दृश्यमान है यह देह। बस यहाँ भूल हो गई, कि 'मैं यह देह हूँ'। अरे! आप ये देह नहीं हैं। असंख्य बार ये देह मिली और मिलती रहेगी, बिछुड़ती रहेगी। इसका उपयोग करिए, दुरुपयोग मत करिए। इसका अपना एक धर्म है, कि जो पैदा हुआ, वह मरेगा अवश्य। सब जानते हैं, इसकी अवस्थाएँ बदलती रहती हैं—बचपन, जवानी, बुढ़ापा, मृत्यु। जिससे आप **बिछुड़-से** गये हैं, जो **खो-सा** गया है, आपका वह शाश्वत्-स्वरूप क्या है?

जब हम साधनों के पीछे भागते हैं, तो अन्ततः दुःखी होकर अकाल मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। मैं **'अमरत्व'** के प्रवचनों में अतृप्ति, असंतुष्टि, आसक्ति, असुरक्षा, अशान्ति, भय, विक्षेप आदि के विषय में बता चुका हूँ। जो अपनी देह को अपना स्वरूप समझकर, जीवन को सुखमय बिताना

चाहते हैं, उन्हें मृत्यु के समय कोई न कोई आसक्ति व असंतुष्टि अवश्य रहती है। फिर जन्म होता है। लेकिन आपके अपने शाश्वत-स्वरूप की प्राप्ति के लिए जो कुछ ईश्वर ने आपसे करवाया है (ध्यान रहे जो ईश्वर ने आपसे करवाया है), वह अगले जन्म में ब्याज सहित मिलेगा। वह पैदा होते ही प्रकट होना शुरू हो जायेगा। कुछ बच्चे जन्मजात आरिफ होते हैं। **आपके साथ चलेगा आपका—पुरुषार्थ, आपकी उपासना, यज्ञ-कर्म, जप-तप तथा दान-पुण्य आदि।** अब प्रश्न यह उठता है, कि अपने शाश्वत् आनन्द-स्वरूप का दिग्दर्शन करने व आत्मसात् करने के लिए हम अपनी इस नश्वर देह का प्रयोग कैसे करें? बहुत महत्त्वपूर्ण बात आज आपके सम्मुख पहली बार रख रहा हूँ, कृपया एकाग्र करें।

आनन्द अनिर्वचनीय है, आपका सच्चिदानन्द-स्वरूप, आपका ईश्वर शब्दों से परे है। उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वह अनिर्वचनीय पद है। आप उसके बारे में सोच भी नहीं सकते, लिखना, पढ़ना व वर्णन करना तो बहुत दूर की बात है। ईश्वर ने स्वयं को बहुत गुप्त रखा है। लेकिन फिर भी महापुरुष उसके बारे में बोलते हैं और जिज्ञासु श्रवण करते हैं। इससे क्या होता है? एक बार मैंने वर्णन किया था, कि किसी ने नमक का एक पुतला बनाया और उसे एक विशेष डोरी से बाँध कर समुद्र में छोड़ दिया, कि जाओ समुद्र की गहराई नाप कर आओ। अब जैसे-जैसे वह गहराई में जाता गया वह घुलने लगा। उसका नमक खुरने लगा। पहले उसकी टांगे बेकार हो गईं, फिर कमर, फिर गरदन, आँख, मुँह और तथाकथित बुद्धि, सब घुल गई। समुद्र की गहराई में जाने के बाद वह नमक का पुतला, पुतला ही नहीं रहा।

हम उस सच्चिदानन्द ईश्वर का वर्णन नहीं कर सकते, परन्तु सन्त करते हैं, क्यों? क्योंकि उसका वर्णन करने से धीरे-धीरे हमारा अहं, हमारे पुराने संस्कार सब घुलने लगते हैं और अन्ततः हमारी मानवीय-बुद्धि भी घुल जाती है। हमारे नाम-रूप का जो पिंड है, जिसे हम अपना समझे बैठे थे, वह देहाध्यास समाप्त होने लगता है। **ईश्वर का वर्णन करते-करते सारा**

देहाभिमान घुल जाता है। वहाँ से उत्पन्न होती हैं–ऋतम्भरा,मेधा, प्रज्ञा और विवेक। जब उसका चिंतन करते-करते आपकी अपनी बुद्धि घुल जाती है, यह तभी सम्भव हो पाता है। **'ऋतम्भरा, मेधा, प्रज्ञा, विवेक'** इन शब्दों का अंग्रेजी में कोई अनुवाद नहीं है, क्योंकि उन्हें **विवेक, प्रज्ञा, मेधा और ऋतम्भरा** की धारणा ही नहीं है। भारत में ही ऋतम्भरा, प्रज्ञा, विवेक एवं मेधा हैं। यहाँ जो आए उनको भारत ने भिक्षा दी है। सबके लिए हमने अपने द्वार खोल दिए।

आज भी अगर विश्व में कोई महाऐश्वर्यपूर्ण देश है, तो वह भारत है। आज भी कोई जगद्‌गुरु है, तो वह भारत है। क्योंकि हमारे मनीषी घुल गये थे, उस सागर की गहराई जानने के लिए उन्होंने स्वयं को समाप्त कर दिया था। उसके बाद इन वेदों, शास्त्रों एवं पुराणों की रचना हुई, जो उनकी उस नश्वर-देह ने नहीं की, उनके शाश्वत-स्वरूप ने की। ये सब उनकी प्रज्ञा, मेधा, विवेक और ऋतम्भरा से प्रकट हुए।

सत्संग सुनने से क्या होता है? इन शब्दों में इतनी शक्ति है कि ये किसी को अछूता नहीं छोड़ते। किसी बर्तन में कोई शहद डाल दे और फिर उसे गिरा दे, तो गिराने के बाद भी बर्तन के साथ कुछ शहद लगा रह जायेगा। इसी प्रकार महापुरुषों के प्रवचन सुनकर आप एक कान से बात सुनकर दूसरे कान से निकाल भी दें, तो भी आप जब यहाँ से जायेंगे, तो कुछ देर के लिए ब्रह्ममय हो कर जायेंगे। चाहे आप एकाग्र करिए या न करिए। **ये शब्द चिपक जाते हैं, बीज बनकर।** किसी न किसी जन्म में वहाँ से वह स्वर्णिम वृक्ष उत्पन्न होगा, क्योंकि आपके मानस की भूमि आपके ऋषियों, महर्षियों की कृपा से बनी हुई है। आज विश्व में यदि कहीं शान्ति है, कोई रुहानी ज्ञान है, इल्म है, तो हमारे उन पवित्र भारतीयों के कारण है, जो पूरे विश्व में जहाँ-तहाँ बैठे हैं। जो भारतीय संस्कृति के पोषक हैं, उनकी श्वासों में, उनकी दिव्यता में वह प्रभाव है, जिससे उनके आसपास का वातावरण शान्त रहता है।

हमारा आनन्दमय शाश्वत स्वरूप अदृश्य, अवर्णनीय एवं अनिर्वचनीय

है और वही इन्द्रियों के द्वारा हमें सुख देता है। ईश्वर ने उसे इतना गोपनीय और सुरक्षित रखा है, कि उस आनन्द का तो हम वर्णन कर ही नहीं सकते; उसके सम्पर्क से इस नश्वर देह में आभासित इन्द्रिय-जनित सुख को भी व्याख्यायित नहीं कर सकते। जैसेकि हम जीभ से लिए गए किसी भी प्रकार के स्वाद को बता नहीं सकते, कि वह कैसा होता है :–

''मैं चला शराबखाने जहाँ कोई ग़म नहीं है,
जिसे देखनी हो जन्नत मेरे साथ-साथ आए।''

दो पेग पीकर कैसा मज़ा आता है, कि स्वयं पीकर देख लो। यदि आपकी इस नश्वर देह में इन्द्रियाँ न होतीं और उनका सुख न होता, तो आपको अपने आनन्द की कोई धारणा ही न हो पाती। इसलिए भौतिक देह को उपेक्षित नहीं करना। **भौतिक देह ने प्रज्ञावान् विवेकी पुरुषों को आनन्द का दृष्टिकोण दिया है।** आपकी इन्द्रियों ने आपको यह धारणा दी है, अतः ये पूजनीय हैं, इनका सदुपयोग करना सीखिए।

जन्म-जन्मान्तरों तक यह जीव, देह व इन्द्रियों के सुख के लिए दौड़ता रहता है और अन्ततः आसक्तियों को लेकर मर जाता है। कभी किसी जन्म में इसको कोई सन्त मिल जाता है, जो इसके आनन्द-स्वरूप की ओर इसे प्रवृत्त करता है। यह उस महापुरुष की कृपा से अपने इष्ट के सम्मुख होना प्रारम्भ करता है, लेकिन साधनों की प्राप्ति के लिए इसकी इच्छाएँ समाप्त नहीं होतीं। अतः सर्वप्रथम, साधना शुरू होती है, इन्हीं सुख-साधनों के लिए। पहले तो **'सैल्फ-मेड'** बनकर साधन इकट्ठे कर रहा था, तो वस्तुएँ मिलीं, लेकिन सुख नहीं मिला। अब किसी सन्त की कृपा से साधना की ओर प्रवृत्त होता है, वह भी साधनों के लिए, क्योंकि साधनों की इसकी वृत्ति समाप्त नहीं होती। क्या-क्या माँगता है, यह अपने इष्ट से और उसके लिए साधना करता है। ईश्वर प्रसन्न हो जाते हैं, कि कम से कम जीव ईश्वर की ओर मुड़ा तो सही और उन सुख-साधनों का भोग उसे मिल जाता है। पहले भोग इसलिए नहीं मिला, क्योंकि यह अपने आनन्द-स्वरूप, अपने इष्ट से विमुख होकर साधन एकत्रित कर रहा था।

ईश्वर की साधना जब साधनों के लिए होती है, तो उन प्राप्त किए साधनों का भोग तो मिल जाता है; लेकिन आनन्द फिर भी नहीं मिलता। असंतुष्टि बनी रहती है, कि अमुक व्यक्ति वैष्णो देवी के परम भक्त हैं, हर महीने वहाँ जाते हैं, पर यह मत भूलिए, कि वे कुछ न कुछ माँगने जाते हैं। देवी-देवता इसी से प्रसन्न हो जाते हैं, कि कम से कम इसे मुझमें विश्वास तो है। सारे पुरुषार्थ कर्म, यज्ञ, हवन, पूजन, तीर्थ-यात्रा आदि कुछ न कुछ भौतिक प्राप्तियों के लिए होते हैं। इन सबके पीछे कोई न कोई आकांक्षा रहती है। अतः यह साधना केवल साधनों के लिए होती है, जिससे साधन और उनका भोग तो मिल जायेगा, लेकिन संतुष्टि नहीं मिलेगी, आनन्द नहीं मिलेगा।

एक उदाहरण देता हूँ। महाराज मनु और महारानी शतरूपा विष्णु भगवान के उपासक थे। उन्होंने बहुत साधना की। अन्न-जल छोड़ दिया, मात्र वायु के आधार पर ही अनेक वर्षों तक उनका जीवन चला। दोनों कंकाल-मात्र रह गये। अन्ततः भगवान विष्णु प्रसन्न हुए और प्रकट होकर उन्होंने वरदान माँगने को कहा। तप करते-करते दोनों मरणासन्न हो गये थे, लेकिन फिर भी उनकी वासना नहीं गई। भगवान का वह अति भव्य सौन्दर्यवान स्वरूप देखकर उन्होंने वर माँगा, कि ''प्रभु! हमें आपके जैसा ही पुत्र चाहिए।'' भगवान ने कहा, कि ''महारानी मेरे जैसा कौन हो सकता है! मैं स्वयं ही तुम्हारे गर्भ से जन्म लूँगा।'' अगले जन्म में उन दोनों ने महाराज दशरथ और महारानी कौशल्या के रूप में पुनः जन्म लिया और उनकी गोद में स्वयं भगवान विष्णु 'राम' बनकर प्रकट हुए। इस प्रकार मनु व शतरूपा ने अपनी साधना से भगवान को प्रसन्न करके, उन्हें ही अपने पुत्र राम के रूप में प्राप्त तो किया, परन्तु स्वयं भगवान को पाकर भी दोनों एक दिन भी सुखी नहीं हुए। राजा दशरथ की मृत्यु का कारण बने—**राम**। स्वयं राम ने बचपन बिताया जंगलों में और उसके बाद सपत्नीक 14 वर्ष के लिए वन चले गये। राम बाद में राजा भी बने तो गर्भवती महारानी सीता का परित्याग कर दिया। अतः कौशल्या भी आजीवन दुःखी ही रही। इस प्रकार जब साधक

वस्तुओं और सुख-साधनों के लिए साधना करता है, तो वस्तुएँ मिलने पर भी वह असंतुष्ट एवं दुःखी रहता है।

अब जन्म-जन्मान्तरों तक इसी प्रकार साधनों के लिए साधना करते-करते, राज्य-ऐश्वर्य आदि बहुत कुछ प्राप्त होने के बाद भी जब आनन्द नहीं मिलता, तो फिर एक झटका लगता है, कि मुझे क्या मिला? साधना से यद्यपि आपके भोग की क्षमता भी बढ़ जाती है, परन्तु यदि आप साधना द्वारा उन साधनों को प्राप्त करेंगे, तो आपको उन वस्तुओं को प्राप्त करने के बाद भी अपनी साधना को जारी रखना पड़ेगा। अन्यथा जहाँ साधना छोड़ेंगे, वहीं से वे वस्तुएँ आपके लिए पुनः सिरदर्दी बनना शुरू हो जाएँगी, क्योंकि उनका अन्त भी आपकी इन्द्रियों तक ही है।

अब तीसरा सोपान शुरू होता है। **अब वही साधक ईश्वर-प्राप्ति के लिए साधना करना प्रारम्भ कर देता है,** कि मैंने साधनों का सुख भी भोग कर देख लिया, लेकिन मुझे संतुष्टि नहीं मिली, तो अब क्यों न मैं साधना ईश्वर-प्राप्ति के लिए करूँ। जब देह से साधना की जाती है, तो अपनी इन्द्रियों को नकार दिया जाता है—**इन्द्रिय-दमन करके या इन्द्रिय-निग्रह करके।** जैसे माता गान्धारी ने अपनी आँखों पर पट्टी बांध ली, कि मेरे पति नहीं देख सकते, तो मैं क्यों देखूँ! अतः साधना में साधक अपनी इन्द्रियों का दमन करता है, कि मैं अमुक स्वाद नहीं लूँगा, अमुक वस्तु का स्पर्श नहीं करूँगा, संगीत नहीं सुनूँगा आदि-आदि। लेकिन कोई कितना भी महान साधक क्यों न हो, उसका ध्यान इन्द्रियों तक ही केन्द्रित रहता है। जो भोगी है, उसका ध्यान भी इन्द्रियों तक ही केन्द्रित रहता है, क्योंकि वह इन्हीं इन्द्रियों को संतुष्ट करने में लगा रहता है। दोनों का संघर्ष इन्द्रियों से ही होता है। आयाम अलग-अलग हैं, साधक इन्द्रियों का दमन करता है और भोगी इन्द्रियों को तृप्त करने में लगा रहता है। इन्द्रियों की एक सीमित क्षमता है। अन्ततः साधक की इन्द्रियाँ उसे जवाब दे देती हैं, कि हमसे और तप नहीं होता। भोगी की इन्द्रियाँ भी अन्ततः सुख देने में असमर्थ हो जाती हैं। मैं कभी भी इन्द्रिय-दमन के पक्ष में नहीं रहा, मैंने **'सरस-साधना'** शीर्षक

प्रवचन में इन्द्रिय-निग्रह की चर्चा की है।

अब यहाँ एक आध्यात्मिक, वैज्ञानिक तकनीक है, कि किस प्रकार हम इन्द्रियों से सुख लेते हुए, अपने आनन्दमय कोष में प्रवेश करें। **किसी भी इन्द्रिय का सुख लेते हुए उसके चरमोत्कर्ष की सीमा पर पहुँचने से पहले ही, यदि हम ईश्वर का ध्यान करते हुए उसे बाइ-पास कर जाएँ, तो तुरन्त हम आनन्दमय कोष में प्रवेश कर जाते हैं।** आप देह और इन्द्रियों को उपेक्षित मत करिए, ये आपके लिए हैं, आपकी सेविकाएँ हैं। इन्द्रियाँ हमें यह बताने के लिए सुख देती हैं, कि तुम्हारा कोई आनन्दमय-स्वरूप भी है। वहाँ से हम सुख लेकर तुम्हें दे रही हैं और हमारी सीमा यहीं तक है। अगर हमारी सीमा को तुम पार कर जाओ, तो अपने आनन्द-स्वरूप में स्वतः पहुँच जाओगे। वह तुम्हारा अपना शाश्वत् आनन्दमय कोष है और वहीँ से हम आनन्द लेकर सुख में परिवर्तित करके तुम्हें देती हैं। यदि आपने सुख लेते-लेते इन्द्रियों की क्षमता को समाप्त कर दिया, तो आपको पुनः देह में लौटना पड़ेगा। आप आनन्दमय कोष का स्पर्श भी नहीं कर सकते। हमारे मनीषियों ने यह तकनीक दी है, जो केवल हमारे भारत का ही उत्पाद है। उदाहरण के लिए अगर आप संगीत सुन रहे हैं, उसका सुख ले रहे हैं, तो जब आप चरम-सुख की अवस्था में जाएँ तो संगीत बन्द कर दें।

आपकी इन्द्रियों व देह में आपके आनन्द-स्वरूप से सम्पर्क रखने का संचार माध्यम आपकी प्राण-गतियाँ हैं। जब आप इन्द्रिय-सुख की चरम सीमा पर जाकर उसे रोक देते हैं, तो आपकी प्राण-गतियों का वेग इतना बढ़ जाता है, कि वहाँ एक बाँध बन जाता है। योगी उन प्राण-शक्तियों को अपने आनन्दमय कोष में पहुँचने के लिए प्रयोग करता है। जिस प्रकार बिजली पैदा करने के लिए हम नदियों पर बांध बनाकर जल-प्रवाह को रोकते हैं। उस रुके हुए अथाह जल को विशेष ऊँचाई से फेंका जाता है और बिजली पैदा होती है। सहज, स्वाभाविक प्राण-गतियों में आप आनन्द की अनुभूति नहीं कर सकते, आपको बांध बनाना पड़ेगा, जिसके लिए आपको अपनी इन्द्रियों का सदुपयोग करना होगा।

मैंने बहुत संक्षेप में यह तकनीक बताई है, कि हमारे मनीषी जो इन्द्रिय-निग्रह करते थे, उसके पीछे यह रहस्य था। यद्यपि हम गृहस्थियों को सब प्रकार के सुख लेने हैं, मगर इन्द्रियों के सुख लेते-लेते उनकी क्षमता को समाप्त मत करना। नहीं तो पशुओं की तरह आप देह में ही घूमते रहेंगे और देह की क्षमता समाप्त होने के बाद उन सुखों की स्मृति दुःख का कारण अवश्य बनेगी। यदि आपने इन्द्रियों को बाइ-पास करके आनन्दमय कोष का स्पर्श प्राप्त कर लिया, जोकि अवश्य करेंगे, तो उस आनन्दमय कोष के सात सोपान हैं, जिनका मैं सार्वजनिक तौर पर वर्णन नहीं कर सकता। आनन्द के कोष में पहुंचने पर **आनन्द की अनुभूति होगी और सुख की मात्र स्मृति होती है।** आपके जीवन-काल की वृद्धावस्था में जब सुख-साधन नहीं होंगे या आपकी इन्द्रिय-क्षमता क्षीण हो जाएगी, तो उन सुखों की स्मृति तुरन्त आनन्द की अनुभूति में बदल जाएगी। इस प्रकार आप इन्द्रियों के माध्यम से सुख लेते-लेते आनन्दमय कोष में पहुँच जाएँगे।

यह प्रकरण कृपा-साध्य है। ध्यान रहे, यह मत समझना, कि कल से मैं ऐसा ही कर लूँगा, यह आपके हाथ में नहीं है। उस अवस्था में पहुँच कर आपको अपने इष्ट से प्रार्थना करनी पड़ेगी, कि ''हे प्रभु! मेरे आनन्द का सागर कहाँ है, मैं उसे छूना चाहता हूँ।'' प्रभु कृपा करेंगे, तो वही ज्ञानेन्द्रियाँ आपको आनन्दमय कोष का मार्ग दे देंगी। जब आप आनन्दमय कोष में प्रवेश कर जाएँगे, तो पुनः लौट कर देह में फिर भी आना पड़ेगा। क्योंकि यह देह एक उड़न पट्टी है, जहाँ से आप अपने आनन्दमय-स्वरूप के लिये उड़ान भरते हैं। लेकिन जहाज़ हवा में कब तक उड़ेगा, उसे लौट कर फिर से ज़मीन पर आना ही पड़ता है। अतः आपको भी देह में वापस आना पड़ेगा, इसलिए देह की उपेक्षा मत करना। जब यह क्रम बार-बार होगा, तो आपकी इन्द्रियाँ आपकी सेविकाएँ हो जाएँगी, क्योंकि ये जान जाएँगी कि यह उस आनन्द-स्वरूप में स्वयं भी जा सकता है, जहाँ से हम सुख उधार लेती हैं। फिर आपकी देह आपकी प्रशसंक हो जाएगी। इन्द्रिय-दमन द्वारा अथवा अत्यधिक भोग द्वारा यदि आप इन्द्रियों को नोचना शुरू कर देंगे, तो एक

समय ऐसा अवश्य आएगा, कि आपकी अपनी ही देह आपसे घृणा करने लगेगी। अपनी देह ही जिससे घृणा करने लगती है, तो उसके सब सगे-सम्बन्धी व प्रियजन भी उससे घृणा करने लग जाते हैं। सबसे पहले जब किसी का सम्बन्ध खराब होता है, तो वह अपनी देह के साथ होता है। इन इन्द्रियों का भरपूर इस्तेमाल कीजिए। इनके द्वारा सुख भोगने के लिए नहीं, इनकी सीमाओं को पार करने के लिए। आपको देह फिर लेनी है, आपको लीला करने के लिए फिर आना है।

जब योगी को (अब साधक के स्थान पर योगी शब्द का प्रयोग कर रहा हूँ) धीरे-धीरे आनन्द-स्वरूप की अनुभूति होने लगती है और इन्द्रियाँ उसकी सेविकाएँ बन जाती हैं, तब आप उपासक बन जाते हैं। यह उपासना या उपासक, साधक के बाद का सोपान है। आप अपने उस सच्चिदानंद-स्वरूप के पास बैठना शुरू कर देते हैं। **जब आप उपासक बन जाते हैं, तो कुछ दिनों तक साधनों की फिर याद आती रहती है, लेकिन प्राथमिकता समाप्त हो जाती है। इस अवस्था में आकर आपको सद्गुरु मिल जाता है। जब आपकी साधना का लक्ष्य ईश्वर की प्राप्ति हो जाता है, तो आपकी समस्त आसक्तियां, भक्ति बन जाती हैं, वासना, उपासना बन जाती है, सांसारिक राग व मोह, वैराग में बदल जाता है और वैराग, अनुराग में परिवर्तित हो जाता है।** सबको इस प्रक्रिया से गुज़रना पड़ता है। लेकिन जब ईश्वर की किसी साधक पर कृपा-दृष्टि हो जाए, तो उसकी लम्बी छलांग भी लग जाती है।

उपासक को उस सोपान पर मिलता है सद्गुरु, जो उसे उसके निराकार की अनुभूति करवाता है, समाधि में ले जाता है तथा यज्ञ-हवन आदि करवाता है। **पहले साधक यज्ञ-हवन वस्तुओं की प्राप्ति के लिए करता था, अब सद्गुरु उससे यज्ञ-हवन ईश्वर के ईश्वरत्व का दिग्दर्शन करने के लिए करवाता है। अन्ततः वह एक दिन अपने इष्ट के साथ जुड़ जाता है, जिसे कहा है योगी और उस जुड़ने को कहा है—योग।** इसका अर्थ यह नहीं, कि आप अपने इष्ट के विग्रह के साथ चिपक जाएँ, तो योग हो

गया! योग का अर्थ है आपका हर श्वास, हर चिन्तन, हर विचार, हर कृत्य, हर पल अपने इष्ट के निमित्त होता है।

आप व्यापार करते हैं, तो ग्राहक में इष्ट को देखते हैं। उसके द्वारा दिये हुए धन को आप उसका प्रसाद मानकर ग्रहण करते हैं। सर्वत्र आपको अपना इष्ट ही नज़र आता है। इसको कहा है **'योग-स्थिति'** और यही **मोक्ष-स्थिति** है, जो भारतीय संस्कृति के अनुसार हमारे जीवन का अन्तिम लक्ष्य है। हम संसार के सुखों, ऐश्वर्यों को भोगते हुए, साधना व उपासना करते हुए, इस अन्तिम योग-स्थिति को प्राप्त हों। **इसमें सायुज्य, सामीप्य, सालोक्य, सारूप्य एवं कैवल्य–सभी मोक्ष आ जाते हैं।** यही योग-स्थिति अन्ततः साधक को उसकी पसन्द और भाव के अनुसार किसी विशिष्ट मोक्ष या सारे मोक्षों में ले जाती है, जिसे कहा है **'जीवन-मुक्ति'।** जीवन-मुक्ति का अर्थ यह नहीं है, कि मृत्यु के बाद मुक्ति, बल्कि जीवनकाल में संसार को भोगते हुए आप अन्ततः ईश्वर का चिन्तन करते हुए सद्‌गुरु-कृपा व इष्ट-कृपा से अपनी अन्तिम स्थिति अपने सच्चिदानंद स्वरूप का दिग्दर्शन करें, उसका सान्निध्य प्राप्त करें एवं उसे आत्मसात् करें। उसी को योग-स्थिति एवं जीवन-मुक्ति कहा है। हम भारतीय संस्कृति के पोषकों एवं द्योतकों का यह अधिकार है, कि हम अपने उस खोए हुए स्वरूप का दर्शन अवश्य करें। प्रत्येक सन्त व महापुरुष का यह कर्तव्य है, कि वह भारतीयों को उस स्वरूप से अवगत अवश्य कराएँ, क्योंकि उस स्वरूप को आत्मसात् करना हम सबका जन्मसिद्ध अधिकार है।

'बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय'

(23 मार्च, 2003)

सत्संग

आज इष्ट-कृपा से व आप सब की प्रेरणा से बहुत दुर्लभ विषय, जो मानव-जीवन का अति आवश्यक अंग है, प्रस्तुत करूँगा, जिसका नाम है—**'सत्संग'।** आज सत्संग पर **'सत्संग'** होगा, जिस पर कि मानव-जीवन आधारित है। जैसाकि मैं एक बार वर्णन कर चुका हूँ, कि पाँच वस्तुएँ मानव-जीवन में बहुत दुर्लभ हैं—**पहला, अच्छा स्वास्थ्य** जो सबको नहीं मिलता। मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा होना बहुत बड़ी नेमत है। **दूसरे,** हम गृहस्थियों को अच्छे स्वास्थ्य के साथ **अच्छा धन** भी चाहिये, किसी महापुरुष ने कहा है :—

'साधु कौड़ी से कौड़ी का और गृहस्थी बिन कौड़ी, कौड़ी का।'

अर्थात् जिस साधु ने धन-सम्पदा एकत्रित की हो, वह कौड़ी का है, यानि बेकार है और यदि गृहस्थी के पास धन न हो, तो गृहस्थ बेकार है। अच्छा स्वास्थ्य और अच्छा धन जब किसी को प्राप्त हो जाता है, तो अक्सर लोग भगवान को भूल जाते हैं, कि भगवान को बुढ़ापे में याद कर लेंगे, जो कभी हो नहीं सकता। अतः **तीसरा,** अति दुर्लभ संयोजन है, **ईश्वर-भक्ति।** लेकिन ईश्वर-भक्ति की एक बहुत बड़ी समस्या है, कि जब भक्ति की शक्ति अपना प्रभाव दिखाने लगती है, तो अक्सर अभिमान जाग्रत हो जाता है। किसी बड़े अफसर या किसी अति धनाढ्य व्यक्ति की दोस्ती से भी लोगों की बुद्धि खराब हो जाती है, अहं आ जाता है। किसी राजनेता या मंत्री से जान-पहचान हो जाए, आना-जाना हो जाए, तो अक्सर लोग अभिमानी हो जाते हैं। जिसकी उस सर्वशक्तिमान, कोटि-कोटि ब्रह्माण्डनायक परमात्मा से दोस्ती हो जाए, उठना-बैठना हो, तो दिमाग सांतवें आसमान पर पहुँच

जाता है।। उसके बाद ह्रदय, मन और रूह को शान्त रखना बहुत आवश्यक है, क्योंकि भक्त के ह्रदय में उठा हुआ कोई भी संकल्प व्यर्थ नहीं जाता, ईश्वर के संकल्प व्यर्थ जा सकते हैं। महापुरुषों ने **चौथा** दुर्लभ संयोजन दिया है, **विनम्रता।** भगवान श्रीकृष्ण ने प्रतिज्ञा की थी, कि मैं महाभारत के युद्ध में शस्त्र नहीं उठाऊँगा और उनके परम भक्त भीष्म पितामह ने प्रतिज्ञा की थी, कि मैं इनसे शस्त्र उठवा कर ही दम लूँगा। घमासान युद्ध हो रहा था और रोज़ भीष्म पितामह पाण्डवों के दस हज़ार योद्धाओं को गिनकर मारते थे। त्राहि-त्राहि मच गई, अर्जुन घबरा गए, कि प्रभु आप मेरा रथ ही हांकते रहोगे, यह बाबा तो विनाश कर रहा है, प्रलय कर देगा। इनको तो इच्छा-मृत्यु का वरदान है, आप कुछ करते क्यों नहीं? दो चार दिन तो भगवान तमाशा देखते रहे, पर फिर उन्होंने अपना सुदर्शन-चक्र उठा ही लिया, तो भीष्म पितामह ने उनके चरणों में प्रणाम सूचक बाण चला दिया। **प्रभु से पूछा गया, कि आपने शस्त्र क्यों उठाया तो बोले, कि हमारा भक्त ऐसा चाहता था। अतः प्रभु अपने भक्तों की प्रतिज्ञा का मान रखने के लिए अपनी प्रतिज्ञा भी तोड़ देते हैं। इसलिए भक्तों में विनम्रता का होना ज़रूरी है।**

अब **पाँचवा** अंग जो बहुत ही दुर्लभ है, वह है—**सत्संग।** जोकि मानव-जीवन का आधार है। ध्यान रहे, जो मानव-देहधारी पशु हैं उनका नहीं, यदि वे मानव हैं, तो उनका आधार सत्संग होना परम आवश्यक है, **'बिन सत्संग विवेक न होई।'** मानव-बुद्धि इतनी विस्तृत एवं विराट शक्ति है, कि इसके साथ यदि विवेक न हो, तो यह विनाश का कारण बन जाती है। जैसाकि आज आप प्रत्यक्ष देख रहे हैं, कि अमेरिकी तथा यूरोपीय देश अति बुद्धिवादी हैं और विश्व को विनाश के कगार पर ले आए हैं। परन्तु हमारी भारतीय मेधा, विवेक, प्रज्ञा, ऋतम्भरा और प्रार्थनाओं से ऐसा हो नहीं सकता। हमारी विवेकमयी प्रार्थनाओं में इतनी शक्ति है, कि हम जो चाहेंगे, वही होगा। वहाँ विवेक क्यों नहीं है? क्योंकि वहाँ सत्संग नहीं है, झूठ का संग है और वह संक्रमण हम भारतीयों में भी आ चुका है, जिसका इलाज हमें

शीघ्र करना है, **''बिन हरि कृपा मिले नंहि संता।''** हरि-कृपा के बिना संत नहीं मिलता, शेष धन, दौलत, पद, सम्पदा, नाम, यश आदि सब कुछ मिल सकता है, लेकिन संत और सत्संग अपने माता-पिता तथा प्रभु-कृपा के बिना नहीं मिलता। हनुमान जी लंका में प्रवेश कर रहे थे, तो लंकिनी उनकी मुष्टिका-प्रहार से घायल हुई और उन्हें आशीर्वाद देती हैः—

''तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग,
तूल न ताहि सकल मिली जो सुख लव सत्संग।''

हे तात! तराजू के एक ओर यदि हम स्वर्ग एवं वैकुण्ठ का सुख रख दें और दूसरी ओर सत्संग का सुख रख दें, तो वह समस्त स्वर्ग एवं वैकुण्ठ का सुख, क्षण मात्र के सत्संग के सुख का तिनके के बराबर भी मुकाबला नहीं कर सकता। तो ऐसी क्या अमोघ शक्ति अथवा अद्‌भुत चमत्कार है, इस सत्संग में!

यह हमें आज अति स्पष्ट हो जाना चाहिये, कि सत्संग है क्या? परिभाषा क्या है सत्संग की और सत्संग का जीवन में महातम्य क्या है. सत्संग किसके श्रीमुख से हो और सत्संग सुनने का अधिकारी कौन है? सत्संग के बारे में, उस सत्य के बारे में सभी महापुरुष वर्णन करते आये हैं। हमारे भारत में ऋषि परम्परा रही है, मनीषियों, तपस्वियों, साधकों, देवर्षियों, ऋषियों व साधु-सन्तों ने समय-समय पर अपने श्रीमुख से हमारे भारतीय समाज एवं विश्व को निर्देशित किया है, कि सत्य क्या है। मैं बहुत वर्षों से आपके सम्मुख विभिन्न विषयों पर बोलता रहा हूँ, आज मैं इष्ट-प्रेरणा से उस सत्संग को पारिभाषित करूँगा। आपकी अति एकाग्रता वांछनीय है।

''समस्त दैहिक, बौद्धिक एव मानसिक प्रकरण, क्रियाएँ एवं भाव,उदाहरण के लिए जप, तप, समाधि, ध्यान, साधना, उपासना, यज्ञ, हवन, प्रवचन, स्वाध्याय, श्रवण, चिंतन, मनन, नित्याध्यासन, तीर्थ-यात्रा, पवित्र नदियों का स्नान, दान, पुण्य, संत-सेवा, सद्‌गुरु सेवा, समाज-सेवा और इसके अतिरिक्त आपके स्वभाव के अनुसार कुछ भी, जो आपको, आपके देहाध्यास से मुक्त कर दे और आनन्दमय

जीवन जीने में सहायक हो, प्रेरक हो एवं आनन्दमय जीवन जीने की कला सिखाए, उसका नाम है 'सत्संग'।'' बहुत अटपटी परिभाषा है। देहाध्यास तो दारू पीने से कुछ समय के लिए छूट जाता है, लेकिन फिर महा निराशा हो जाती है, कि कल से नहीं पिऊँगा। अतः उसके साथ शर्त यह भी है, कि देहाध्यास छूटे और जीवन आनन्दमय बीते। अतः उस प्रकरण का, उस भाव का, उस स्वभाव का और उस क्रिया का नाम है–**'सत्संग'**।

सत्संग की महिमा जानने से पहले झूठ-संग से जो दुर्गति होती है, उसका ज्ञान एवं अनुभव होना परमावश्यक है। क्योंकि जब तक झूठ-संग से हुई दुर्गति व कष्टों का अनुभव हमें नहीं होगा, तब तक हम सत्संग की ओर प्रेरित नहीं हो सकते। जैसाकि मैं कई बार इंगित कर चुका हूँ, कि **सत्य की अनुभूति से पहले असत्य को जानना परमावश्यक है।** जिसको असत्य का अनुभव नहीं हुआ, वह सत्य की अनुभूति नहीं कर सकता।

अब प्रश्न यह उठता है, कि असत्य क्या है? हम सब इसको अनुभव कर रहे हैं, लेकिन स्वयं से स्वयं को अनदेखा कर रहे हैं। हम नहीं जानना चाहते, कि हम कष्टों, भय, रोग, असन्तोष, त्रास, विक्षेप, अतृप्ति और सारी आधि-व्याधियों से जो पीड़ित हैं, उसका कारण क्या है? और यदि जानना भी चाहते हैं, वह अपने हिसाब से जानना चाहते हैं। उसमें भी अपनी बुद्धि का चातुर्य लगाने से हम बाज़ नहीं आते। मैं अनेक बार वर्णन कर चुका हूँ, कि जैसे ही मानव-शिशु धरा पर आता है और उसकी बुद्धि का तथाकथित विकास होता है, एक रूप तो उसका पहले से ही होता है, उसे एक नाम भी दे दिया जाता है। अतः वह स्वयं को उसी नाम-रूप से पहचानने लगता है, कि मैं अमुक-अमुक हूँ। जैसेकि एक छोटा बच्चा कहीं किसी मेले में जा रहा है, तो उसे पिता, माता का नाम रटवाते हैं, उसका अपना नाम रटवाते हैं, कि कहीं मेले में उँगली छूट जाये और वह गुम हो जाए, तो वह किसी को बता सके। वैसे ही हमको देहाध्यास हो जाता है, कि 'मैं यह देह हूँ'। यह मिथ्याध्यास हो जाता है। देह असत्य नहीं है, कृपया ध्यान दीजिए, मानव-देह असत्य नहीं है। यह गलती भूलकर भी नहीं करना। जैसाकि

बहुत लोग कहते हैं, कि देह असत्य है, जगत सपना है, आदि-आदि। उस सच्चिदानन्द की सृष्टि में कुछ भी असत्य नहीं है। **यदि कोई वस्तु ईश्वर-द्वारा निर्मित है, ईश्वर-द्वारा पालित है और ईश्वर-द्वारा ही संहारित है, तो वह सच्चिदानन्द ही होनी चाहिए। क्योंकि ईश्वर स्वयं में सच्चिदानन्द है।** ये कष्ट, ये दुःख, ये रोग, ये त्रास, ये भय, ये विक्षेप ईश्वर ने पैदा नहीं किए, क्योंकि ईश्वर को इनकी कोई जानकारी ही नहीं है। कभी आपने सुना है, कि ईश्वर को अस्पताल में दाखिल होना पड़ा या ईश्वर को घाटा पड़ गया या ईश्वर पर शुक्र-शनि की दशा चल रही है। ऐसा कुछ भी ईश्वर को नहीं होता।

वह सच्चिदानन्द परम ऐश्वर्यवान, महाख्यातिवान, महासशक्त, महासौंदर्यवान, महाज्ञानवान और परम त्यागवान ईश्वरीय सत्ता कभी बीमार नहीं पड़ती, कभी दुःखी नहीं होती। वहाँ आनन्द ही आनन्द है और आनन्द के अतिरिक्त कुछ नहीं है। **उसके नाम में आनन्द, उसके वर्णन में आनन्द, उसके श्रवण में आनन्द, उसके प्रसाद में आनन्द, उसके चरणामृत में आनन्द और सब आनन्द ही आनन्द है।** जैसे, यदि सूर्य भगवान को कहें, कि हमारा अन्धेरा दूर करो, तो सूर्य भगवान को अन्धकार शब्द ही पहली बार सुनाई देगा, कि यह अन्धकार क्या है? इसलिए प्रभु से प्रार्थनाएँ भी सकारात्मक करनी चाहिएँ। यह नहीं, कि प्रभु मेरी निर्धनता दूर करो। ऐसी प्रार्थनाएँ प्रभु के रिकार्ड में हैं ही नहीं। प्रभु भी भ्रमित हो जाते हैं, कि यह निर्धनता क्या है? वे तो परम ऐश्वर्यवान हैं अतः हमारी प्रार्थनाएँ भी सकारात्मक होनी चाहिएँ :—

''देहि मे सौभाग्यं, आरोग्यं, देहि मे परमं सुखं,
रूपं देहि, जयं देहि, यशो देहि, द्विषो जहि।''

''याहि शिवा वर देहि मोहे,
शुभ कर्मन ते कबहुँ न टरौ,
न डरौं अरि सौं जब जाहि लड़ौं,
निश्चय कर अपनी जीत करौं।''

प्रभु के आगे कभी भी अपने दुःखों, कष्टों, रोगों व मुकदमेबाजी आदि का रोना न रोना। हे प्रभु ! तुम ऐश्वर्य, सौन्दर्य, बल, ज्ञान, ख्याति एवं त्याग से पूर्ण हो, मुझे भी ऐसा ही कर दो। ईश्वर के गुणों को अन्तर्निहित करके, उसके लिए प्रार्थनाएं करनी हैं। अब प्रश्न यह उठता है, कि दुःख, कष्ट, रोग, भय, त्रास, विक्षेप आदि से तो हम सभी ग्रसित हैं, पूरा विश्व पीड़ित है और बुद्धिजीवी ज्यादा त्रसित हैं, तो इनका पदार्पण कहाँ से हुआ ? यह बहुत महत्त्वपूर्ण है, कि यदि प्रभु ने ये कष्ट निर्मित ही नहीं किए, तो ये आए कहाँ से ? आज **'सत्संग'** के इस प्रवचन में इसका विश्लेषण होना परमावश्यक है।

देह स्वयं में सत्य है, लेकिन हमने जब देह पर अधिपत्य किया, उसको अपना स्वरूप मान लिया, वहाँ असत्य आ गया, जिसे कहा है—**देहाध्यास**। वह देहाध्यास नामक महारोग हम जन्म-जन्मान्तरों से लिए चल रहे हैं और जितनी भी हमारी व्याधियाँ हैं, उनका मूल कारण भी यही है। क्योंकि इस देह पर हम अनधिकृत कब्ज़ा करते ही पकड़े गये। दैवीय अदालत में मुकदमा चला और परिणामस्वरूप हम सभी तारीखें भुगत रहे हैं। ध्यान रहे, जन्म-जन्मान्तरों में जो हमें बार-बार आना पड़ता है, ये हमारी कोर्ट की तारीखें पड़ रही हैं। आज हमने इसका फैसला सुनवाना है तथा इसकी फाइल समाप्त करवानी है। आज, अभी इसी दरबार में यह केस समाप्त होना चाहिये। हटा दीजिए अपने ये वकील, ये पंडित, मौलवी या पादरी, जिनके कारण यह केस लम्बा खिंचता चला आ रहा है। आज सत्य का संग होगा, आपके हृदय से एक रूहानी आवाज़ उठेगी, उस महाअदालत के जज, ईश्वर के सम्मुख, कि उसको यह केस आज ही आपके पक्ष में समाप्त करना होगा।

हमने सत्संग के जितने भी प्रकरण बताए—जप, तप, ध्यान, मनन आदि, ये सब हम देह से करते हैं और फंसे भी हम देह से ही हैं। मैं एक प्रवचन में वर्णन कर चुका हूँ, कि हमारी तीन देह हैं—**स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण देह।** स्थूल-देह, जो हमारे लिए मिली है, यह हमारे नाम-रूप की देह है। इसका जन्म होता है और जिसका जन्म होता है, उसकी मृत्यु अवश्य होती

है। हमने होश सम्भालते ही इस नश्वर स्थूल-देह पर अपना कब्ज़ा कर लिया, तो इसके साथ ही हमारी समस्त सूक्ष्म-देह स्वतः ही हमारे गले पड़ गई। प्रत्येक व्यक्ति का अपना जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड, पूर्ण जगत होता है, वह उसकी सूक्ष्म-देह है। माता-पिता, भाई-बहन, सगे-सम्बन्धी, आस-पड़ोस, देश-विदेश, जाति-पाँति, धर्म, समाज, मित्र-शत्रु, धन, सम्पदा, डिग्रियाँ और जो-जो भी किसी का अपना दृश्यमान जगत है और जहाँ-जहाँ दिमाग जाता है, वह उसका सूक्ष्म-जगत है। हमारी अपने नाम-रूप की स्थूल-देह इस सम्पूर्ण जगत का आधार है, नींव है। जैसे, एक बहुत बड़ा भवन एक स्तम्भ पर खड़ा हो, ऐसे ही हमारा सम्पूर्ण जगत हमारे एक नाम-रूप के देहाध्यास रूपी स्तम्भ पर खड़ा है। यदि हम अपना नाम-रूप खिसका दें, तो हमारा सारा जगत ढह जाएगा। तो जब हम देहाध्यास या देहाधिपत्य में आ जाते हैं, कि 'मैं यह देह हूँ' और 'यह देह मेरी है' तो उस समय हमें चुपचाप एक नुकसान और भुगतना पड़ता है, कि जितना देह के ऊपर जगत आधारित है, वह भी स्वतः हमारे गले पड़ जाता है तथा हम उस सबके लिए उत्तरदायी हो जाते हैं। हमारी तीसरी देह है, **कारण-देह**। स्थूल-देह दृश्यमान है और आपका समस्त सूक्ष्म-मण्डल भी प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है, दोनों नाम-रूप में हैं और नाम-रूप में जितना जगत है, वह ईश्वर की माया है। माया असत्य नहीं है, पर माया पर कब्ज़ा करना असत्य है, क्योंकि वहाँ माया क्षमा नहीं करती। एक बहुत बड़ा रहस्यमय तथ्य आपके सम्मुख रख रहा हूँ, वहाँ माया विकराल होकर आपको अति भयानक, महादुर्दान्त कष्ट देती है।

माया आपकी कारण-देह से प्रकट हुई है, ध्यान रहे, कारण-देह भी आपकी है, जो अदृश्य है। आपकी उस अदृश्य कारण-देह से आपकी स्थूल-देह सहित यह सारा दृश्यमान जगत प्रकट हुआ है, जो आपके लिए है। **यदि आप उसे नाम-रूप में, अपने इष्ट-रूप में मानकर उसके सम्मुख अपनी स्थूल-देह और अपने सम्पूर्ण सूक्ष्म-मण्डल का समर्पण करते हैं, कि हे प्रभु! ये समस्त माया आपकी है, मेरी देह का एक-एक श्वास, एक-एक पल, एक-एक प्राण तुम्हारा है, तो आपके लिए जो देह**

मिली है वह, और सम्पूर्ण सूक्ष्म-जगत आपके लिए हो जाता है। ईश्वरीय माया माँ बनकर आपकी रक्षा करती है, पालन करती है और प्रभु से आपको मिलवा देती है। आज के **'सत्संग'** में इस परम रहस्य को आत्मसात कर लीजिए, कि आज तक जन्म-जन्मान्तरों में जो इस देह पर अनधिकृत कब्ज़ा करते रहे, वह आज छोड़ दीजिए। यह आपको कहीं का नहीं रखेगा, वही सिलसिला फिर बार-बार चलेगा। अतः रहस्य की बात यह है, कि आपका स्थूल-शरीर और उस पर आधारित सम्पूर्ण सूक्ष्म दृश्यमान जगत आपके लिए है, आपका नहीं है। जो अदृश्य है, वह है—**'कारण-शरीर'** जो आपका है। स्थूल, सूक्ष्म, कारण का बाह्य प्रकटीकरण क्रमशः विराट, हिरण्यगर्भ और ईश्वर है, जिसका विस्तार से विवेचन मैं आज नहीं करूंगा, क्योंकि वह अत्यन्त जटिल और रहस्यमय है।

आपका **'कारण'** आपका ईश्वर है। आप उस सच्चिदानन्द का अंश हैं, उसी की सन्तान हैं, जो दृश्यमान नहीं, अदृश्य है, वह आपका है। अतः तीनों देहों में से आपकी केवल कारण-देह है, जो अदृश्य है, वह आपकी अपनी है। जिस प्रकार आपकी कारण-देह सच्चिदानन्द, कालातीत, देशातीत, कर्त्तव्यातीत, धर्मातीत, लिंगातीत, सम्बन्धातीत व त्रिगुणातीत है, उसी प्रकार आप भी उसी के अंश हैं। लेकिन हमने मूर्खतावश, अज्ञानवश और पाश्चात्यानुगमनवश केवल दृश्यमान स्थूल एवं उस पर आधारित सूक्ष्म-जगत पर कब्ज़ा कर लिया। जितना यह दृश्यमान जगत है, वह सब आपके लिए है। लेकिन भ्रम व अज्ञानवश जो देह हमारी नहीं थी, हमने अपनी समस्त शारीरिक, मानसिक व बौद्धिक शक्तियों को उसी के लिए झोंक दिया। जीवन की दो धाराओं—**जीवन के लिए** और **जीवन काहे के लिए** में से अधिकतर लोग और विशेषकर अति बुद्धिजीवी लोग जीवन के लिए ही जीते हैं। जब आप देह के लिए और देह पर आधारित जगत के लिए अपनी समस्त दैहिक, मानसिक और बौद्धिक शक्तियों का प्रयोग करना शुरू कर देते हैं और आपका एक ही लक्ष्य होता है, कि देह के लिए करना, तो दैवीय शक्तियों से सज़ा मिलती है।

इस प्रकार हम ईश्वर-प्रदत्त इस देह का दुरुपयोग करते हैं, यह देह हमें इसलिए नहीं दी गई थी। हम होश सम्भालते ही स्वयं का व अपने बच्चों का कैरियर बनाना प्रारम्भ कर देते हैं। प्राणायाम, जप, तप, ध्यान आदि के लिए आपके बच्चों के पास समय ही नहीं होता। बच्चों के सर्वांगीण विकास में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है, परन्तु आप समझते हैं, कि ट्यूशन से आप बच्चों का भविष्य बना लेंगे। आपको इसका ज्ञान नहीं है, कि उच्च डिग्रियाँ प्राप्त करके सी. ए., एम. बी. ए, आई. ए. एस. बनकर सारी बुद्धि मात्र कैरियर पर लग जाती है और आपके बच्चे देश, समाज व परिवार किसी के भी योग्य नहीं रहते। बहुत पढ़े-लिखे लोग सामान्य व्यवहार तक भूल जाते हैं। किसी उच्च-शिक्षित से पत्र लिखवाओ, तो वे पत्र भी अधूरा ही लिखेंगे। हम सत्य कह रहे हैं, कि बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए स्वयं आपको और उन्हें कारण-देह से जोड़ना होगा, जो महाशक्ति का भण्डार है। सुबह यदि नौ-दस बजे बच्चा सोकर उठेगा और सोफे पर बैठकर पढ़ेगा तो उसकी कमर जवानी में ही टेढ़ी हो जाएगी। अरे! किसी नौजवान युवा को देखो, वह दीवार का सहारा लेकर खड़ा होता है। बिना किसी सहारे के अपनी टाँगों के बल पर कोई आधा घण्टा से ज्यादा खड़ा नहीं हो सकता। परीक्षाएँ आने पर बच्चों में भय व्याप्त हो जाता है, उल्लास समाप्त हो जाता है। पढ़ाई उनके लिए एक हौव्वा बन चुकी है, कि मुझे रोज़ी-रोटी के लिए कैरियर बनाना है। अरे! पशु भी अपनी रोज़ी-रोटी की चिन्ता नहीं करता और हम अपने छोटे से पेट के लिए अपनी समस्त शारीरिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों को झोंक देते हैं। एक चींटी, एक मच्छर, खटमल, मक्खी आदि में कितनी शारीरिक शक्ति होती होगी, कितनी बुद्धि होगी, पर सब खा-पी रहे हैं, रह रहे हैं और आपको तो कितनी बुद्धि दी है! 1200 से लेकर 1800 ग्राम तक आपके मस्तिष्क का वज़न है। हाथी कितना विशालकाय होता है, लेकिन उसका मस्तिष्क आपसे छोटा है और आप अपने इतने बड़े विकसित मस्तिष्क का प्रयोग उसके लिए कर रहे हैं, जिसके लिए पशु भी नहीं करते।

अरे! इस बुद्धि से यह तो सोचा होता, कि क्या मैं स्वयं पैदा हुआ हूँ? आपको उत्कृष्ट, विलक्षण एवं चमत्कारिक देह स्वतः ही मिली है। जिसका एक बाल, एक नाखून भी आज के वैज्ञानिक और आविष्कारक नहीं बना सकते। यह देह, जो पूर्णतः स्वचलित व वातानुकूलित है, इसका सब कुछ स्वतः ही होता है। माँ-बाप स्वतः ही मिलते हैं, आपके बच्चे की जो तथाकथित शिक्षा होती है, वह भी स्वतः होती है, विवाह-शादी स्वतः होती है, विभिन्न प्रकार की बौद्धिक व मानसिक शक्तियों से युक्त आपकी सन्तान भी स्वतः ही होती है। सबके पीछे दैवीय रहस्य होते हैं, लेकिन हम अपना अहं लगाने से बाज़ नहीं आते। मृत्यु भी स्वतः ही होती है और मृत्यु के बाद के क्रिया-कर्म का प्रबन्ध भी कोई स्वयं नहीं करता। **यदि जीवन का आनन्द लेना है, तो या शिव बन जाइए या शव बन जाइए।** आपकी सम्पूर्ण देह आपकी सेवा में आ जाएगी, आपके जीवन का एक-एक पल आपके लिए होगा।

हम फँसे देहाध्यास से और सर्वप्रथम अपने कारण-शरीर को भूलकर, ईश्वर-विमुख होकर अपने बल-बूते पर जीवन के लिए भाग-दौड़ करने लगे और दैवीय अधिनियमानुसार जो कुछ भी एकत्रित किया, उसका भोग नहीं कर सके। जिसके फलस्वरूप अतृप्ति, असुरक्षा, अशान्ति, आसक्ति, भय और विक्षेप आदि हमें अकाल मृत्यु में ले जाते हैं। फिर अकाल जन्म होता है और यह सिलसिला कई जन्मों तक चलता रहता है। कभी किसी संत की कृपा होती है, तो हम ईश्वर के सम्मुख होना प्रारम्भ करते हैं। उसे किसी नाम, रूप, साकार, निराकार में मानकर साधना करते हैं, परन्तु साधनों में आसक्ति होने के कारण वह साधना भी देह के सुख-साधनों के लिये होती है। इसका विस्तार से वर्णन मैंने **''साधनों से योग तक''** शीर्षक प्रवचन में किया है। हम अपनी कारण-देह इष्ट के सम्मुख होकर साधना करते हैं, तो किसी न किसी जन्म में संत-कृपा व इष्ट-कृपा से ऐसा समय आता है, कि साधनों से विरक्ति हो जाती है। ऐसा भाव प्रबल हो जाता है, कि पूरे विश्व का साम्राज्य भी यदि मुझे मिल जाए तो क्या? इसी स्थिति में आपको सद्‌गुरु मिल जाता है।

आपने सत्संग के जितने भी प्रकरण किए, वे सब देह से किए और आपने इन्द्रियों के सुख के लिए जो कुछ भी प्राप्तियाँ कीं, वे भी देह से कीं। जब विरक्ति हो जाती है, तो सत्संग वास्तव में वहाँ से प्रारम्भ होता है। आप जिज्ञासु बन जाते हैं, कि जीवन क्या है, कहाँ से आया हूँ मैं? जब संसार के सुखों, भोगों से तृप्ति हो जाती है, वहाँ से सत्संग की श्रृंखला प्रारम्भ होती है। सत्संग कोई मज़ाक नहीं है कि भजन सुन लिए, गा लिए, ताली बजा ली। हाँ! यह भी सत्संग का एक आयाम है, लेकिन वास्तविक सत्संग तभी होता है, जब आप में जिज्ञासा जाग्रत होती है। जिज्ञासा का भी कोई अंग्रेज़ी अनुवाद नहीं है, क्योंकि जितना पाश्चात्य जगत है, वह साधनों तक ही समाप्त हो जाता है। उनका सब कुछ मात्र अपनी इन्द्रियों के सुख तक ही सीमित है, जबकि हमारा विशिष्ट, उत्कृष्ट और दिव्य-जीवन इन्द्रियों के बाद शुरू होता है। हमारी कारण-देह का आनन्दमय कोष अतीन्द्रिय है! वहाँ इन्द्रियों की कोई भूमिका नहीं रहती। पाश्चात्य और भारतीय जीवन-शैली में बहुत अन्तर है। जहाँ भौतिक सुख और इन्द्रियों की क्षमता रहती है, जहाँ तक उनकी सीमा की सीमा है, पाश्चात्य जगत केवल वहीं तक सीमित है। **क्यों होता है हमारा पुनर्जन्म, इस रहस्य को आप आत्मसात् कर लीजिए, क्योंकि हमारा जीवन वहाँ से शुरू होता है, जहाँ उनका जीवन समाप्त होता है।** ऐ भारतवासियो! हम क्या हैं, इसकी झलक आपको मिलनी चाहिए। ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट रचना यदि मानवों में कहीं भी कोई है, तो वह एक भारतीय ही है। न जाने ईश्वर हम पर इतने कृपालु क्यों हुए! हमारी अपनी देह—कारण-देह है, जो अजर है, अमर है, सच्चिदानन्द है :—

''असतो मा सद् गमयः, तमसो मा ज्योतिर्गमयः,
मृत्योर्मा अमृतं गमयः''

हम भारतवासी अजर-अमर हैं। हमारी मृत्यु नहीं होती। जन्म-मृत्यु हमारे लिए मात्र जीवन के दो पड़ाव हैं। इन्द्रियों के सुखों का बाइ-पास करके हम अपने आनन्दमय कोष में प्रवेश करते हैं और **कारण-देह** पर हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। अतः सत्संग वहाँ से शुरू होता है:—

"गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु, गुरुर्देवोः महेश्वरः,
गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म, तस्मै श्री गुरुवे नमः।"

पारब्रह्म परमेश्वर निराकार है। वह कभी साक्षात् प्रकट नहीं होता, लेकिन वही सद्गुरु बनकर, देह धारण करके उस महामानव के लिए प्रकट हो जाता है, जिसको जीवन के इस साकार, प्रत्यक्ष, दृश्यमान स्थूल और सूक्ष्म रूपों के देहाध्यास से विरक्ति हो जाती है। सद्गुरु उसे ईश्वर के ईश्वरत्व और निराकार की अनुभूति करवाता है। जब आप परम जिज्ञासु बन जाते हैं, कि इन्द्रियों की सीमा के आगे क्या है? जब आनन्द के लिए आर्तनाद होती है, तब उस वक्त दैवीय अधिनियमानुसार उस पारब्रह्म परमेश्वर को सद्गुरु बनकर प्रकट होना पड़ता है। वहाँ पर बड़ी दिव्य घटनाएँ होती हैं—**आपकी समस्त सांसारिक आसक्तियाँ, भक्ति बन जाती हैं। वासनाएँ, उपासना बन जाती हैं और सांसारिक राग, वैराग में बदल जाता है। वहाँ से ईश्वर के चरणों में अनुराग शुरू होता है। जब आपका दिल, दिमाग, रूह सबका समर्पण हो जाता है, कि प्रभु मेरा स्वरूप कहाँ है, मैंने इन्द्रियों के बड़े भोग देखे हैं, अब मैं संतुष्टि चाहता हूँ, मेरा आनन्द-सागर कहाँ है? जहाँ से सत्संग शुरू होता है, वहाँ से हम उत्कृष्ट भारतीयों का दिव्य मानव-जीवन शुरू होता है।**

सत्संग के तीन आयाम हैं:—**शान्त, एकान्त और तत्त्व-चिंतन।** हर समय आपका मन-मस्तिष्क निरन्तर उधेड़बुन में लगा हुआ अशान्त ही रहता है। शारीरिक, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय बहुमुखी चिन्ताओं से त्रसित आप अशान्त रहते हैं। पहले शान्त होना आवश्यक है, क्योंकि जब तक आप शान्त नहीं होंगे, तब तक एकान्त नहीं हो पाएगा। कृपया एकान्त की अपनी धारणा को संशोधित करिए, कि **किसी निर्जन स्थान, वन, पर्वतीय क्षेत्र, गुफा में बैठना एकान्त नहीं है, क्योंकि एकान्त भौतिक व दैहिक नहीं है।** मन-मस्तिष्क में भावों एवं विचारों की उधेड़बुन एकान्त की स्थिति नहीं बनने देती। **इसीलिए प्रवचन से पहले कीर्तन-भजन होता है। आप ताली बजाकर गाते हैं, ताकि आप देह, दिल व दिमाग**

से शान्त हो जाएँ, आप दिव्य वचनों को सुनने के अधिकारी बन जाएँ, अन्यथा आपको कुछ पल्ले नहीं पड़ेगा। तो सद्‌गुरु सबसे पहले जिज्ञासु को शान्त करता है। चिकित्सक होने के नाते मैं चिकित्सा-शैली के आधार पर वर्णन करता हूँ। जैसे एक मरीज़ पेट-दर्द से तड़पता हुआ आया है, तो सर्वप्रथम कोई अनुभवी चिकित्सक उसका दर्द दूर करेगा, किसी भी प्रकार से। न कि पहले उसका इतिहास पूछने लगे, कि यह दर्द तुम्हें कब से है, घर में और किसी को तो नहीं है, कितनी बार पहले हो चुका है! आदि-आदि। जब दर्द दूर हो जाएगा, मरीज़ को चैन पड़ेगा, तभी हम ये सब बातें पूछते हैं और उसका उचित इलाज करते हैं। अतः मरीज़ का सर्वप्रथम शान्त होना बहुत आवश्यक है।

इसी प्रकार पहले वह सन्त, वह सद्‌गुरु अपने जिज्ञासु शिष्य को शान्त करता है जाप, ध्यान, समाधि, कीर्तन, भजन आदि प्रकरणों को उसके मूल स्वभाव के अनुसार कराता है। जैसा मैं पहले कह चुका हूँ, कि **आपका स्वभाव ही आपका धर्म है। तो सद्‌गुरु को जिज्ञासु के मूल स्वभाव का निर्णय करना पड़ता है।** जैसेकि चिकित्सक एक जैसे रोग से पीड़ित हरेक मरीज़ को एक ही दवाई नहीं देता। मरीज़ की आयु, लिंग, शरीर का वज़न, पारिवारिक इतिहास आदि देखकर ही दवाई दी जाती है। इसी प्रकार सद्‌गुरु को अपने जिज्ञासु शिष्य का स्वभाव देखना होता है। कोई घूमने-फिरने का बहुत शौकीन हो, तो सद्‌गुरु उन्हें तीर्थ-यात्रा में लगा देता है। जब वह खुद घूम-फिर कर तंग आ जाता है, कि गुरु जी महाराज! अब मैं कहीं नहीं जा सकता, तो फिर सद्‌गुरु उसे बिठा देता है। सद्‌गुरु कभी उस पर ज्ञान नहीं थोपता, जब तक वह शान्त न हो जाए। किसी को दान में, पुण्य में लगा देता है, कोई धन का अति लोभी है, तो उसे जाप में लगा देता है, कि कम से कम उसके लोभ से जाप बढ़ेगा। सद्‌गुरु अपने शिष्य के काम, क्रोध आदि तथाकथित विकारों का प्रयोग करता है। अरे! आपके अन्दर जिन्हें आप दुर्गुण कहते हैं, वस्तुतः प्रभु ने आपको विभूतियाँ दी हैं। आप सद्‌गुरु के चरणों में बैठकर उनका सदुपयोग करिए। काम एक

महाशक्ति है, तो प्रभु से प्रार्थना करिए, कि हे प्रभु ! मुझे महाकामी बना दो, कि मुझे आपके अतिरिक्त और किसी की कामना ही न हो, महाक्रोधी बना दो, कि मेरे और तेरे बीच यदि कोई प्रलोभन या सांसारिक वैभव आए तो मैं उसे भस्म कर दूँ। महालोभी बना दो, कि एक क्षण का भी समय मेरे पास हो तो मैं तेरा जाप करता रहूं, महामोही बना दो, कि तेरे बिना मैं जी न सकूँ और जब तक मैं तेरा दीदार न कर लूँ, मेरे प्राण भी न निकलें, महा अहंकारी बना दो, कि मैं, केवल मैं ही, तुम्हारी एक मात्र सन्तान हूँ :—

''खुदा नबी दोनों की इन्तहा हूँ मैं, स्वाहा हूँ मैं, महास्वाहा हूँ मैं।''

यदि जुआरी हैं, तो जुआ लगाइए अपने जीवन का :—

'बहुत जन्म जिए रे माधो, ये जन्म तुम्हारे लेखे।'

अरे ! सत्संग की शुरुआत होती है अपनी ज़िन्दगी को दाँव पर लगा कर। बार-बार मुझे यह देह मिलती है, अब मैं अपनी इस देह और ज़िन्दगी को जुए के पहले दाँव के रूप में लगाता हूँ। मुझे महाशराबी बना दो :—

''नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन-रात।''

पता ही न चले, ज़िन्दगी शुरू कहाँ हुई और समाप्त कहाँ हुई। ये काम, क्रोध, लोभ, मोह, अंहकार, जुआ, नशा आदि विकार तब तक थे, जब तक आप में देहाध्यास था, देहाध्यास के समाप्त होते ही ये विकार दिव्य-उत्प्रेरक बन जाएँगे और आपको आपके इष्ट से मिलने में सहायक हो जाएँगे। आप जब अपने कारण से जुड़ना चाहेंगे, तो आपको इनका सदुपयोग करना पड़ेगा। आपको प्रार्थना करनी पड़ेगी, कि प्रभु ये मेरा क्रोध, काम आदि कम पड़ रहा है।

सद्गुरु पहले शान्त करता है, आपके स्वभाव के अनुसार कुछ भी प्रकरण करवा के। दूसरा आयाम है **'एकान्त' एक+अन्त,** जहाँ एक का अन्त हो जाए, उस मानसिक स्थिति को एकान्त कहा है। घर से लड़-झगड़ कर यदि आप किसी निर्जन स्थान या पर्वत की गुफा में बैठ जाओ, तो जो चीज़ें आपको घर में याद नहीं आएँगी, वहाँ जा कर अवश्य याद आएँगी। तो मानस में विचारों की दौड़ शुरू हो जाती है। **एकान्त वह मानसिक स्थिति**

है। जहाँ आपकी स्वयं की नाम-रूप की देह का आपको आभास न रहे। क्योंकि सारा ब्रह्माण्ड, सारा सूक्ष्म-जगत आपने इसी आधार पर खड़ा किया है। आपकी इस स्थूल-देह का अस्तित्व आपसे परे हो जाए और आप जाग्रत हों, तभी आपकी एकान्त की स्थिति का आपको अनुभव होगा। क्योंकि जब रात को आप सो जाते हैं, तब भी आपकी स्थूल नाम-रूप की देह आपके लिए नहीं रहती, शान्त हो जाती है। पाँच स्थितियों में ऐसा होता है; **सुषुप्ति, मृत्यु, विस्मृति, मूर्छा एवं तुरिया समाधि,** जिनका हम बहुत बार वर्णन कर चुके हैं। नाम-रूप की अनुभूति जब न रहे उस स्थिति को एकान्त कहा है, लेकिन यदि आप सत्संग चाहते हैं, तो उस एकान्त में आपका जाग्रत होना परमावश्यक है। जब आप जागृति में हों और आपकी ये नाम-रूप की स्थूल-देह आपसे परे नज़र आए। **'अद्य दिवसम्'** प्रवचन में इसके दो प्रकरण हमने बताए थे—**सौ साल की सैर** और **लययोग** या **भस्मी योग।** अपनी देह के एक सत्य को पकड़कर आत्मसात् करना है, वह एक सत्य है आपकी खाक, भस्मी, जो कि हम अवश्य बनेंगे :—

''हमारी खाक को दामन से झाड़ने वालो,
सब इस मुकाम से गुज़रेंगे ज़िन्दगी के लिए।''

इसमें से सबको गुज़रना होगा और हमारी राख हमारे अपने घर में लाने का प्रावधान नहीं है। अतः राख हमारी देह का अटल सत्य है। जब हम देह में होते हैं, तो एक दूसरे से भिन्न होते हैं। किसी के पास धन ज्यादा है किसी के पास शक्ति, किसी की पोस्ट बड़ी है, आदि-आदि। अतः हम व्यक्ति की व्यक्ति से तुलना उसके शेष से करते हैं। लेकिन हमारा अन्तिम शेष, महाशेष है—भस्मी और वह महाशेष इसलिए है क्योंकि वहाँ कोई तुलना नहीं है। सबकी राख एक जैसी ही होगी। जब हम अपने उस महाशेष में परिवर्तित होंगे, तो हम नहीं होंगे, हम उसकी अनुभूति नहीं कर सकते। **इसलिए जीवन-काल में रोज़ उस महाशेष को अपने ध्यान में लाना, कि मैं एक दिन राख अवश्य बनूँगा और कुछ बन सकूँ या न बन सकूँ, कि मैं भस्मी हूँ। आप स्वयं को उस महाशेष के साथ पहचानिए, उसे आत्मसात्**

करिए। जब जीवन-काल में आप कुछ क्षणों के लिए उस महाशेष में उतरेंगे, तो उस महाआनंद, सन्तोष का आपको चस्का पड़ जाएगा। जिस दिन आप ऐसा कर पाएँगे, आपको शिवत्व का ज्ञान हो जाएगा और आप भी भगवान शंकर की तरह विश्वनाथ हो जाएँगे। ये है भारतीय संस्कृति और सत्संग। आपमें परिकल्पना की महान शक्ति है, उसका सदुपयोग करिए। अपनी देह के उस अटल व निश्चित सत्य को परिकल्पना में आत्मसात् करिए। हम सभी प्रतीक्षासूची में हैं, न जाने कब समय पूरा हो जाए। जब आप उस अवस्था में एकाग्र करेंगे, तो आपको परम शान्ति का अनुभव होगा, शास्त्र ने इसे **लययोग** कहा है। तब आपको शिवत्व का आभास होगा और परम ऐश्वर्य की अनुभूति होगी। आपका देहाध्यास छूट जाएगा और आपका उस महाकारण के साथ सान्निध्य होना प्रारम्भ हो जाएगा। महाशेष को धारण करते ही आप महाविशेष बन जाएँगे।

अतः सत्संग का पहला सोपान है **शान्त**, दूसरा **एकान्त** और तीसरा व अन्तिम सोपान है **तत्त्व-चिन्तन,** जो स्वतः प्रारम्भ हो जाता है। शान्त और एकान्त दो कार्य आपको सद्‌गुरु के निर्देशन में इष्ट-कृपा से करने पड़ते हैं। उसके बाद का जो कार्यक्रम है, वह आपकी कारण-देह, आपका ईश्वर स्वयं आपसे करवाता है। आगे का क्षेत्र ईश्वर का है, जो स्वयं आपको अनुभूति करवाता है और इसे कहा है–**आत्मानुभूति**।

पहले आपको देहाध्यास था, फिर जब भस्मीयोग प्रकरण रोज़ प्रारम्भ होता है, तो आपको **भस्माध्यास** हो जाता है। अपना परिचय आप दूसरों को चाहे कुछ भी दें, परन्तु हृदय में आपको यही आभास होता है, कि मैं भस्मी हूँ और इसके बाद आपको **इष्टाध्यास** हो जाता है, जोकि हमारे जीवन का चरम लक्ष्य है। अतः **देहाध्यास से भस्माध्यास और फिर भस्माध्यास ही इष्टाध्यास में परिवर्तित हो जाता है,** कि तुम खुदा हो, मैं खुदा हूँ और बहुत कुछ आरम्भ हो जाता है, जो सार्वजनिक तौर पर कहने वाली बातें नहीं हैं।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(30 मार्च, 2003)

प्रदत्त-कर्म

आज इष्ट-कृपा से एवं आप सभी परम जिज्ञासुओं की सद्-प्रेरणा से आपके सम्मुख बहुत नया विषय रखूँगा, जो सनातन है, व मानव-जीवन का लक्ष्य है। सम्भवतः मानव-जीवन मिला ही इसीलिए है। विषय का नाम है—**'प्रदत्त-कर्म'**। आनन्दमय उत्सव हमारी भारतीयता का मूल है, क्योंकि हमारी भारतीय संस्कृति और मात्र भारतीय संस्कृति ही विश्व में ऐश्वर्य से परिपूरित है। उत्सव की परिभाषा मैं अपने प्रवचनों में कई बार दे चुका हूँ। हमारी भारत-भूमि और भारतीयता तथा हमारे जीवन का हर कृत्य, हर पहलू यदि मैं अतिशयोक्ति न करूँ, तो हर श्वास उत्सवमय है। आनन्द का दृष्टिकोण और धारणा मात्र भारतीय संस्कृति एवं भारतीयता में ही है।

हमने आपको बताया था, कि जितने भी ईश्वरीय कृत्य हैं, वे तीन आनन्दों से युक्त होते हैं। कोई कृत्य ईश्वरीय है या मानव-बुद्धि के मिथ्या अहं के हस्तक्षेप से है, उसकी कसौटी **'आनन्द'** ही है। दैनिक जीवन में हम मानव विभिन्न प्रकार के जो पारिवारिक, सामाजिक, व्यापारिक, शैक्षिक व राजनैतिक निर्णय लेते हैं, वो निर्णय हमारा अपना है या ईश्वर द्वारा रचित है, इसका परीक्षण हम कैसे करें। कई बार आपने अुनभव किया होगा, कि बैठे-बैठे हम अकारण ही हृदय से प्रसन्न हो जाते हैं। उस प्रसन्नता का कोई ज्ञात कारण नहीं होता। किसी भी कृत्य से पहले यदि अज्ञात प्रसन्नता हो, यानि **कोई कार्य यदि आनन्द में प्रारम्भ हो, आनन्द में चले और उसकी समाप्ति भी आनन्द में हो तथा वह कार्य स्वतः भाव से हो, आपकी बौद्धिक योजनाओं से परे हो, तो वह कार्य दैवीय है।** यदि किसी कार्य में

तीनों आनन्दों में से एक का भी अभाव है, तो समझिए कि वह कृत्य आपने अपनी अहं बुद्धि के हस्तक्षेप से किया है। यह आध्यात्मिक सत्य मैं कई बार उजागर कर चुका हूँ।

अब आइए मानव-जीवन पर! आप सब मुझसे सहमत होंगे, कि ईश्वर ने यह मानव-देह बहुत ही चमत्कारिक बनाई है। जो करोड़ों महाब्रह्माण्डों का निर्माण, पालन व संहार करता है, उस सच्चिदानन्द ईश्वर ने इस संसार—महानाट्यशाला में असंख्य जीव, जन्तु व प्राणी बनाए हैं, असंख्य नदियाँ, सागर, आकाशमण्डल, पृथ्वीमण्डल, वायुमण्डल, वसुन्धरा, वसुन्धरा के सातों तल, पर्वत श्रंखलाएँ, वनस्पतियाँ आदि बनाई हैं और यदि कोई उत्कृष्टतम, सुन्दरतम, विलक्षणतम व भव्यतम रचना उसने की है, तो वह है—**'मानव-देह।** मानव-देह हमें मिली है स्वतःभाव से। एक बहुत गम्भीर विषय को अत्यन्त सरलीकृत करके प्रस्तुत कर रहा हूँ। बड़े डंके की चोट पर हम कहते हैं, कि इस दिन मैं पैदा हुआ। इतने अहं से हम कहते हैं, जैसे हम खुद ही पैदा हुए हों। पूछो, कि मरेंगे कब? वहीं बोलती बंद हो जाती है। जब आप खुद पैदा हुए थे, तो खुद ही मरेंगे भी। बार-बार स्वयं से पूछिए, जन्म-दिन पर बड़ी जल्दी अपनी मोहर लगा देते हैं, कि मैं अमुक दिन पैदा हुआ था। कितना अहं है, हमारे हर वक्तव्य में और हर कृत्य में! हम यह नहीं कह सकते, कि प्रभु ने अमुक दिन मुझे यह देह दी थी। अतः यह देह हमें स्वतः भाव से मिली है। जिस ग्रह-नक्षत्र, जिस दिन, जिस महीने, जिस समय हमें यह देह मिलती है, उसके अनुसार ब्राह्मणों से हम जन्म-पत्री बनवाते हैं। ईश्वर हमसे परामर्श लेकर हमें यह देह नहीं देता, हमें इस विषय में कोई संशय नहीं होना चाहिए।

यह देह हमें स्वतः मिली और जब हमें होश आया तो इस देह को हमने अपने साथ पाया। गर्भाधान से लेकर डिलीवरी तक लगभग नौ महीने सात दिन हम अपनी माँ के गर्भ में रहे, जिसका कोई भी ज्ञान किसी को भी नहीं है। बचपन के कुछ महीने हमने जिस अवस्था में बिताए, उसका भी किसी को कोई ज्ञान नहीं होता। जब हमें होश आया, नामकरण हुआ और हमने

अपने नाम के साथ अपनी देह को पहचाना तथा हमने अपनी इस सुन्दर व भव्य देह को अपने साथ पाया। अतः यह सारा प्रकरण स्वतःभाव से आनन्दमय होता है। अगर माँ के गर्भ में हमें होश होती और यदि संसार में आते समय, डिलीवरी के समय हमें होश होती, तो हम तौबा-तौबा करते आते। लेकिन प्रभु ने यह समस्त प्रकरण ऐसा यन्त्रवत् किया है, कि हमें अपने गर्भाधान की अवस्था का, डिलीवरी के समय का और अपनी शैशवावस्था का कुछ भी ज्ञान नहीं होता। यदि आप इस प्रकरण पर एकान्त में बैठकर एकाग्र करें, तो आप पाएँगे, कि यह जन्म का समस्त कृत्य स्वतःभाव से और आनन्दमय है। इतनी सुन्दर देह सबको यूं ही, बिना कुछ किए मिल जाती है, जिसके एक बाल, एक नाखून का निर्माण भी हम नहीं कर सकते। **आनन्द में देह मिली, क्योंकि प्रभु ने दी थी। ईश्वर का हर कृत्य आनन्द में शुरू होता है, आनन्द में चलता है और आनन्द में ही समाप्त हो जाता है।**

प्रश्न यह उठता है कि हमारे दो आनन्द क्यों लुप्त हो गये–**देह तो आनन्द में मिली, लेकिन जीवन आनन्द में क्यों नहीं बीतता, मृत्यु आनन्द में क्यों नहीं होती?** आज एक बहुत नई धारणा आपके सम्मुख रख रहा हूँ, इससे कोई इंकार नहीं कर सकता कि देह हमें आनन्द में मिली, क्योंकि जब हमने होश सम्भाला देह को अपने साथ पाया। इसका भी कोई विरोध नहीं कर सकता, कि उस अज्ञात शक्ति ने देह हमको दी है, जिस देह का हम कुछ भी नहीं बना सकते। होश सम्भालते ही देह के साथ अपने माता-पिता को अपने साथ पाया, रहने को हमें स्थान मिला और आवश्यकतानुसार अन्य सब कुछ मिला। यहाँ विचारणीय विषय यह है कि जो देह हमको स्वतःभाव से मिली है और जिस देह की समाप्ति का या अन्त समय का हमको कोई ज्ञान नहीं है, अगले श्वास की हमको कोई सुनिश्चितता नहीं है, तो हमने बुद्धि के तथाकथित विकास के साथ इस **देह के कृत्यों पर, जो ईश्वर-प्रदत्त थे, अपनी मोहर क्यों लगा दी**। **स्वयं इस सबके कारण क्यों बन बैठे?** जो हमारे एक-एक श्वास, एक-एक गति,

एक-एक प्राण को सम्पूर्णतया निर्देशित करता है, संचालित करता है और जो उसका कारण है, उस कारण पर हमने अपनी बुद्धि का हस्तक्षेप कर दिया, कि ''यह देह मेरी है, मैं इस दिन पैदा हुआ, मैंने यह शिक्षा प्राप्त की, मेरा इस युवक या युवती से विवाह हुआ, मेरे अमुक-अमुक बच्चे हैं, मैंने इनका कैरियर बनाया और मैं ही इनके भविष्य का निर्माता हूँ।'' हर बात पर हमने अपनी **'मैं'** लगानी शुरू कर दी। कोई पूछे, कि पैदा अपने आप हुए थे क्या ? तो बोले, कि नहीं ! पैदा तो हो गए थे। जहाँ पैदा हुए, जिस माता-पिता से पैदा हुए वह क्या आपने चुने थे? कि 'नही'। जहाँ पर भी हम अपना 'मैं' लगा सकते हैं वहाँ हम नहीं चूकते।

हम सभी सद्‌गृहस्थ बैठे हैं। गृहस्थी में कई बार पति-पत्नी में किसी बच्चे को लेकर झगड़ा हो जाता है। बेटे ने जब कोई खुराफात की तो पति पत्नी से यह कहने से नहीं चूकता, कि यह तेरी औलाद है, तुम्हारा तो खानदान ही ऐसा है। जहाँ पर उसने कोई प्रसिद्धि प्राप्त की, कोई तमगा लिया, कोई अच्छी डिवीज़न ली, तो कहेंगे, कि क्यों न हो ! यह मेरा बेटा जो है। दो तीन बच्चों में से कोई लायक निकल जाए तो अवश्य कहेंगे, कि मैंने अपने बच्चों को बहुत अनुशासित रखा है, मैं इनकी बहुत परवाह करता रहा, प्रारम्भ से ही। पूछो, कि दूसरा बदमाश क्यों निकला ? तो कहेंगे, कि क्या करें समाज ही ऐसा है। तो यह हमारा दैनिक-जीवन है। तथाकथित बुद्धि के विकास के साथ ही हमने अपने बच्चों का कैरियर बनाना शुरू कर दिया और बच्चों को पब्लिक कैरियर बना दिया। **ईश्वर-प्रदत्त एक करिश्मे को, जो आपके घर में, आपके अंश से पैदा हुआ है और न जाने वो आपका क्या लगता है, आप तुरन्त अपनी मोहर लगा देते हैं, कि यह मेरा बेटा है।** अरे विचार करिए, कि वो आपका क्या लगता है ? जो आपको ईश्वर ने दिया है, हो सकता है वो आपका कोई घनिष्ठ मित्र हो, आपका गुरु हो अथवा आपका शिष्य हो। हो सकता है वो आपका कोई शत्रु हो, जो हिसाब-किताब चुकाने आया हो। बात चल रही है, ईश्वर ने किस प्रकार आनन्दमय कृत्य करके सब कुछ दिया था और हम उसमें अपने तथाकथित तुच्छ अहं से

हस्तक्षेप करके, अपने को महान समझते हुए, जीवन को कैसे अति नारकीय बनाते हैं।

जीवन एक स्वतः आनन्दमय प्रकरण है, इसको अव्यवस्थित मत करिए। आप सब बुद्धिजीवी इसके स्वतः आनन्दमय प्रवाह में बाधा बनते हैं और इसके बदले में तनाव, दुःख, रोग, भय, विक्षेप, त्रास और न जाने क्या-क्या पाल लेते हैं। जितनी भी मानव-देह की संक्रामक व लाइलाज बीमारियाँ हैं; जैसे—मधुमेह, गठिया, दमा, उच्च-रक्तचाप, अल्सर, एलर्जी आदि, वो हमारी बुद्धि के हस्तक्षेप के कारण ही होती हैं। आप बुद्धि से विचार करिए, कि प्रभु ने आपको बुद्धि क्यों दी है? जितने अन्य जीव-जन्तु व पशु जगत हैं, उनकी बुद्धि बहुत सीमित है और मानव की बुद्धि अति विकसित है।

आप हमसे सहमत होंगे, कि मानव-देह प्रभु की एक विशेष चमत्कारिक रचना है। यह जो **विशेष-देह** इस संसार में है, वो **मानव-देह** है। इस विशेष **मानव-देह** का एकमात्र कारण ईश्वर है और ईश्वर दूसरा कारण बने **देह-विशेष** को देने का। थोड़ा सा गम्भीर विषय है, कृपया एकाग्र करिए। असंख्य प्राणियों व जीव-जन्तुओं से हटकर **आपको विशेष मानव-देह** प्रभु ने दी और इस **विशेष मानव-देह** के साथ प्रभु एक दूसरा कारण भी बने और वह था आपको **देह-विशेष** देना। एक दी **विशेष-देह** और दूसरी **देह-विशेष** दी। **प्रत्येक विशेष-देह अपने में देह विशेष है।** प्रत्येक व्यक्ति के जन्म का समय, रंग, रूप, प्रतिभाएं, परिस्थितियाँ, शारीरिक बल, बौद्धिक बल पृथक होता है। कोई भी व्यक्ति एक दूसरे से नहीं मिलता। यह प्रभु का महान चमत्कार है, कि सबको विशेष मानव-देह के साथ देह-विशेष भी मिली है। अरे! बुद्धि का इस्तेमाल करना है तो इस बात पर करिए, कि प्रभु ने मुझे विशेष मानव-देह क्यों दी और मानवों में देह-विशेष क्यों दी? मुझे बिल्ली, कुत्ता, मक्खी, मच्छर क्यों नहीं बनाया? किस कारण मैं जानवरों व अन्य जीव-जन्तुओं से विशेष हूं, पृथक हूँ। क्या मैं डंके की चोट पर कह सकता हूँ कि मैं पशुओं से अलग हूँ। विशेष मानव-देह के साथ देह-विशेष क्यों दी?

क्योंकि ईश्वर कोई निरर्थक कार्य नहीं कर सकता। ईश्वर का प्रत्येक कार्य सार्थक होता है और तीनों आनन्दों से युक्त होता है। कोई भी व्यक्ति अपनी देह के निर्माण का कारण स्वयं नहीं है। वह नहीं कह सकता, कि देह मैंने बनाई है। अपनी मृत्यु पर अधिकार किसी का नहीं है। बुद्धिजीवियो ! अपनी बुद्धि से विचार कर आश्वस्त हो जाइए, कि आपके जीवन का एक-एक श्वास मात्र ईश्वर-इच्छा से ही चल रहा है और आपको बुद्धि का प्रयोग मात्र यह देखने के लिए करना है, कि इसे ईश्वर चला कैसे रहा है। इस तथ्य पर पशु-वर्ग व अन्य जीव-जन्तु एकाग्र नहीं कर सकते, केवल मानव ही कर सकता है।

प्रभु ने जो यह स्वतः मानव-देह दी, हमारे मनीषियों ने इस पर विचार किया। जैसाकि मैं कह चुका हूँ, कि केवल भारतीय संस्कृति के पोषकों व द्योतकों को ही पुनर्जन्म मिलता है, अन्यथा किसी को नहीं मिलता। मानव-देह हमें प्रारब्धवश मिलती है और जो भी जीवन में कृत्य होते हैं, सब कुछ उस प्रारब्धवश ही होते हैं। मैंने अपने **'कारणं-कारणानाम्'** शीर्षक प्रवचन में जीवन के कर्मों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया था। हम अति बुद्धिजीवी अधिकतर **स्वयंभू कर्म** करते हैं, वो कर्म जिनका कारण हम स्वयं उत्पन्न कर लेते हैं, जबकि हम जानते हैं, कि कार्य जब, जहाँ, जैसे होना होगा, हो ही जाएगा। जैसेकि हमारा जन्म हुआ, अथवा हमारी मृत्यु होती है। परन्तु अधिक बुद्धिजीवी शान्त बैठकर प्रभु के कृत्यों की प्रतीक्षा नहीं कर सकते और **अकारण-कारण** बनकर धक्के खाते रहते हैं। ऐसे कर्मों से दैवीय अधिनियमानुसार कुछ प्राप्ति नहीं होती और यदि होती भी है, तो आपको विक्षिप्त करके ही छोड़ती है। दूसरे, प्रारब्धवश जो **सन्दर्भ-कर्म** होते हैं, जिन्हें कहा है **कारण-कारण**, उनका कारण भी अपनी बुद्धि के अहं से आप स्वयं बन जाते हैं। उनका फल भी आपके लिए आनन्दमय नहीं होता। ये कर्म प्रभु की कृपा से स्वतः ही प्रारब्ध के अन्तर्गत होते हैं, परन्तु ऐसे कर्मों की उपलब्धि के फल को हमने अपनी बुद्धि के अहं से आनन्दरहित कर दिया। इसका परिणाम यह होता है, कि दैवीय अधिनियमानुसार हमें 1008

धाराओं में से सज़ाएँ भुगतनी पड़ती हैं। उस महाकालेश्वर की 1008 विधाएँ हैं, माँ जगदम्बा के विभाग की 108 धाराएँ हैं। माँ बहुत कोमल हृदय की होती है, हल्का हाथ रखती है। इन दैवीय धाराओं का हमारे ऋषि-मनीषियों ने हिमालय की कन्दराओं में बैठकर अध्ययन किया और ध्यान-समाधि में उनका दिग्दर्शन किया है। उसकी कुछ झलकियाँ प्रभु-कृपा से आपके सम्मुख रखूँगा।

जब आप प्रारब्धवश स्वतः मिली मानव-देह के कृत्यों पर, जो दैवीय अधिनियमानुसार स्वतः होते हैं और आनन्दमय होते हैं, अपनी **अविकसित-विकसित बुद्धि** के अहं से अपनी मोहर लगाते हैं, कि यह मैंने किया, यह मेरी वजह से हुआ, तो वहीं पर दैवीय अदालत से धाराएँ लग जाती हैं। आपकी पृष्ठभूमि और नीयत भी देखी जाती है, पूर्व इतिहास देखा जाता है, क्योंकि वह विधाता बहुत ही दयालु और कृपालु है। परन्तु जब बार-बार आप स्वयं को ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश समझते हैं, सत्संग नहीं करते, बाज नहीं आते, कि जीवन तो मैंने ही चलाना है, मैं नहीं चलाऊँगा तो मेरा परिवार कैसे चलेगा? जहाँ यह अहं आता है, तो दैवीय अदालत स्वतः ही सज़ा सुना देती है, कि इस मूर्ख, इस शठ की प्राप्तियों के भोगों के सभी अधिकार छीन लो।

चमत्कारिक, पूर्णतः स्वचलित व वातानुकूलित देह के साथ जो-जो आपको प्रारब्धवश मिला और जो आपने तथाकथित विकसित बुद्धि के अहं से उपलब्धियाँ कीं, जो आपको स्वतः होनी ही थीं, उन सबके भोग का अधिकार आपसे तुरन्त छीन लिया जाता है। ईश्वरीय अधिनियमानुसार यह सब कार्य स्वतः ही होता है। ये दैवीय संस्थान अदृश्य रूप से चुपचाप कार्य करते हैं और आपके भोग के सारे अधिकार छीन लिए जाते हैं। इन सज़ाओं को थोड़ा बहुत सभी भुगत रहे हैं। विचार करिए! डिग्रियाँ आपकी हैं, उनका इस्तेमाल कोई और कर रहा है। बड़ी-बड़ी डिग्रियों वाले बड़े-बड़े रेस के घोड़े बने हुए हैं, वे बिके हुए हैं, हम जीवन-काल के समय का स्वयं प्रयोग नहीं कर सकते। आपके पास स्वाध्याय, यज्ञ, हवन, जप, तप, सत्संग करने का समय नहीं है। आपका समय बिका हुआ है, उस रोज़ी-रोटी के लिए, जिसके लिए कुत्ता भी

चिन्ता नहीं करता। व्यास-गद्दी से सत्य कह रहा हूँ, शास्त्र ने भी माया के पीछे भागने वाले को पागल कुत्ता कहा है।

जो अति शिक्षित मायिक व्यक्ति हैं, वे ईश्वर नाम की किसी चीज़ को न जानते हैं न जानना चाहते हैं, वे बस भागते हैं। उनके पास अपने परिवार, समाज व किसी के लिए समय नहीं है। सुबह से ही घर में ताले लग जाते हैं और मात्र सोने के लिए ही घर खुलते हैं। वह नींद भी उनकी अपनी नींद नहीं होती। सोने के लिए भी उन्हें दारू पीनी पड़ती है या फिर नशे की गोलियाँ खानी पड़ती हैं। पाश्चात्यानुगमन की देन है यह। आज हमारे भारतीयों के घर, घर नहीं रहे। वे घर तथा उनकी दीवारें, यहाँ तक कि उनकी देह भी उनसे घृणा करने लगती है, क्योंकि ईश्वर ने यह विशेष मानव-देह आपको निरर्थक भाग-दौड़ करने के लिए नहीं दी थी। आपने अपनी अति विशिष्ट शारीरिक, बौद्धिक व मानसिक शक्तियों को उस रोज़ी-रोटी के लिए झोंक दिया, जिसके लिए जानवर एवं पशु जगत भी चिन्ता नहीं करता। अतः दैवीय अदालत के अन्तर्गत ईश्वर आपको सज़ा सुना देते हैं, कि जो मैंने इसे दिव्य प्राप्तियाँ दी हैं, उन सबके भोग का अधिकार इससे छीन लो।

यहाँ पर एक तकनीकी तथ्य और है, हम सभी प्राप्तियों के पीछे भाग रहे हैं, हमारी सारी दौड़ उन विभिन्न चाहतों को पूरा करने के लिए है, जो वस्तुएँ हमको स्वतः प्राप्त होनी थीं। जो हम अपनी प्रारब्ध रूपी जड़-चेतन की ग्रन्थि में साथ लेकर आए थे, उन्हीं वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए हम बौद्धिक, शारीरिक व मानसिक तनाव मोल ले लेते हैं। बुद्धिजीवी लोग पूछते हैं, कि फिर बैठे-बिठाये कैसे मिल जाएँगीं? अरे! यह सुन्दर मानव-देह क्या तुम्हें स्वतः बैठे-बिठाये नहीं मिल गई, तुमने माँ के गर्भ में इसे प्राप्त करने के लिए क्या किया था? सब कुछ बैठे-बिठाये ही तो मिलता है, यहाँ तक कि जब मर जाओगे, तो क्या तब भी अपनी लकड़ी, कफन आदि का प्रबन्ध स्वयं करोगे? निगमबोध घाट पर जाकर देख लो, कितने आराम से मुर्दा लेटा होता है और शेष सभी व्यस्त होते हैं। कोई रोने में, कोई उन्हें चुप कराने में,

कोई पंडित बुलाने में, कोई लकड़ी आदि लाने में, पर मुर्दा शान्त लेटा रहता है और सारा प्रबन्ध स्वतः ही हो जाता है। इसलिए मैंने बहुत बार कहा है, कि **यदि जीवन का आनन्द लेना चाहते हो तो या शिव बन जाओ या शव बन जाओ।**

मैं आपको कृत्यों से विमुख होकर निठल्ला बैठने का उपदेश नहीं दे रहा हूँ। आपका जब किसी प्राप्ति का समय आएगा तो उसकी सारी परिस्थितियाँ स्वतः बनेंगी। वह आपके प्रारब्ध में उसी प्रकार अंकित है, जैसेकि आपकी देह का एक सुनिश्चित समय पर इस पृथ्वी पर आना निश्चित था। आपको निर्धारित माता-पिता ही मिलने थे, उसी समय, उसी देश, उसी परिस्थिति में आपका जन्म होना सुनिश्चित था। इसी प्रकार आपके जीवन में विभिन्न प्राप्तियाँ भी उचित समय पर स्वतः ही होनी थीं। सब कुछ स्वतः ही होता है। अपने आप से खुद ही पर्दा किए हुए हैं हम। यदि हम अपना अहं लगाने से बाज़ नहीं आते, तो? दैवीय अधिनियमानुसार की विभिन्न 1008 धाराओं के अन्तर्गत हमें सज़ाएँ भुगतनी पड़ती हैं।

हम सब प्राप्तियों के पीछे भाग रहें हैं। पहली बात तो प्राप्ति का होना ही सुनिश्चित नहीं है, हम धक्के खाते रहें, प्राप्ति हो न हो। यदि प्राप्ति हो भी जाए तो उसके भोग का अधिकार भी संदिग्ध होता है। आपके तनाव का अधिकतर कारण यही है, कि आप अपनी प्राप्तियों का भोग नहीं कर पाते और वे प्राप्तियाँ ही आपके लिए मानसिक तनाव व अशान्ति का कारण बनती हैं। ज़्यादा चिंतित व भयभीत Haves वाले हैं। वे ज़्यादा इसलिए दुःखी हैं, क्योंकि उनकी प्राप्तियों के भोग का अधिकार दैवीय अदालत द्वारा उनसे छीन लिया जाता है। दैनिक जीवन के नग्न सत्य आपके सामने रख रहा हूँ। आपकी देह, धन, शारीरिक बल, प्रतिभाओं, डिग्रियों का भोग कोई और कर रहा होता है। प्रश्न यह उठता है कि प्राप्ति मेरी है, मैं उसे क्यों नहीं भोग पाता हूँ? तो उत्तर मिलता है, किस्मत खराब है। फिर हम ज्योतिषियों, तन्त्र-मन्त्र वालों के पास भागते हैं और वे कुछ अंगूठियाँ पहनवा देते हैं, लेकिन उन सबके पीछे प्राप्तियों को भोग न पाना ही कारण होता है।

कहाँ भूल हुई ? आप किसी चीज़ को प्रारब्धवश या अन्यथा प्राप्त करते हैं, जिसमें आपकी अपनी देह भी है, जो आपके लिए है। आपको अपनी सब प्राप्तियों का अधिकार उस दैवीय अदालत में तहे-दिल से समर्पित करना पड़ेगा; नहीं तो आप उनका भोग स्वयं नहीं कर सकते। यह हमारे मनीषियों और चिन्तकों ने अपने ध्यान और समाधि में देखा कि किसी चीज़ को भोगने का अधिकार आपको दैवीय अदालत से ही मिलेगा। आपको किसी सिद्ध सन्त रूपी वकील के निर्देशानुसार दैवीय अदालत में याचिका देनी होगी कि "मैं अमुक-अमुक, मूर्खतावश इस देह को अपनी मान चुका हूँ। ये-ये वस्तुएँ मुझे आपकी कृपा से प्राप्त हुई हैं, ये मेरी नहीं हैं प्रभु ! ये आपकी है, मैं इन्हें तहे-दिल, तहे-मन, तहे-रूह से आपके चरणों में, आपकी कृपा से, आपकी दी हुई शक्ति से आपको समर्पित करता हूँ। इसलिए प्रभु ! मुझे इन्हें आनन्द से भोगने का अधिकार दिया जाये।" प्रभु कृपा करके आपको इज़ाजत दे देंगे, कि हाँ बेटा ! भोग लो। अन्यथा आप संसार की किसी भी वस्तु का भोग नहीं कर सकते। आज जितने भी तनाव हैं, दुःख व कष्ट हैं, मानसिक अशान्तियाँ हैं, वे इस कारण हैं कि आप वस्तुओं के पीछे भाग कर उन्हें प्राप्त तो कर लेते हैं, पर उनका भोग आपको नहीं मिलता और आपके सामने ही उनका भोग दूसरे करते हैं। क्योंकि ईश्वर ने आपके एक-एक क्षण का अधिकार अपने नियन्त्रण में रखा हुआ है। अतः आप ईश्वर को चाहें भी तो भूल नहीं सकते।

हमें ज्ञात होना चाहिये, कि हम ऋषियों-मनीषियों की सन्तानें हैं। उन पूर्वजों को नमन करना आप मत भूलिए, नहीं तो आपके भोगों के समस्त अधिकार छीन लिए जाएँगे। पाश्चात्य संक्रमण आप भारत में मत आने दीजिए। अरे ! शहीद भगतसिंह व चन्द्र शेखर आज़ाद जैसे वीर पुत्रों को पैदा करने वाली माताएँ किसी विश्वविद्यालय में नहीं पढ़ी थीं। वे भारतीय संस्कृति से ओत-प्रोत थीं, उन्होंने सिंह पैदा कर दिए। तो आप भी भारतीय संस्कृति को पुनर्विकसित करिए।

यदि आप अपनी देह का समर्पण करते हैं, कि "प्रभु ! यह तन, मन,

धन जो कुछ भी है, सब तुम्हारा है, मेरा कुछ नहीं है,'' तो आपको बिना प्राप्तियों के ही भोग का अधिकार मिल जाता है। मैं आपको निठल्ला बैठने का सूत्र दे रहा हूँ। हमारी फितरत में है निठल्लापन। जैसे बड़े लोग ज्यादा काम नहीं करते, वैसे ही जो विशुद्ध भारतीय हैं, वे भी ज्यादा काम-धाम नहीं करते। वे प्रभु का चिन्तन करते हैं और आनन्द लेते हैं, क्योंकि विश्व में प्रभु ने हम भारतीयों को आनन्द में, आनन्द के लिए ही उत्पन्न किया है। हमारे लिए काम वे करते हैं, जो ईश्वर को भूलकर वस्तुओं के पीछे भागते हैं और हमारे लिए प्राप्तियाँ करते हैं; क्योंकि उन्हें तो अपनी उन प्राप्तियों के भोग का अधिकार होता नहीं। हम उत्सवमय हैं, आनन्द से युक्त हैं। हमें अपनी परम्पराओं व पूर्वजों के संस्कारों का अनुगमन करना चाहिए। जीवन में घटने वाली कोई भी घटना; दुर्घटना या त्रासदी नहीं होती। जो भी आपके जीवन में स्वतःभाव से घट गया या घटेगा या घट रहा है, वह सब ईश्वर का प्रसाद मानकर चलिए। क्योंकि ज्वार-भाटे हमेशा समुद्रों में ही आते हैं, ताल-तलैया में नहीं आते। जब कोई तथाकथित बड़ी त्रासदी हो जाए, तो समझिए प्रभु ने आपको सागर घोषित करते हुए विशेष-सूची में रखा है। अरे! वह आपसे स्वयं कुछ विशेष करवाना चाहता है। दिल-दिमाग खोलकर रखिए, चूहों की तरह नहीं, सिंहों की तरह विचरण करिए। अतः अपनी मानव-देह को आप रोज़ ईश्वर के चरणों में समर्पित करिए :-

''त्वदीयं वस्तु प्रभु तुभ्यमेव समर्पये।''

जब तक आप रो कर समर्पण नहीं करेंगे, तब तक वहाँ सुनवाई नहीं होगी। जब आप तहे-दिल से रो कर पुकार करेंगे और अपनी देह का समर्पण करेंगे, तो उस दिन का आनन्द आप देखिए! उस दिन का सारा कार्यक्रम प्रभु स्वयं निर्धारित करेंगे और वह आनन्दमय ही होगा, चाहे वह तथाकथित दुर्घटना या त्रासदी ही क्यों न हो। ईश्वरीय शब्दकोष में त्रासदी नामक शब्द ही नहीं है। हमने अपनी बुद्धि के अहं से ये शब्द पाल लिए हैं। सब कुछ ईश्वरीय प्रसाद मानिए :-

"तू मेरा साहिब रहमाना, मैं तेरा दीदार दीवाना,
तू मुझे खुशी दे या गम दे, ये तेरा अख्तियार है,
हम बेनियाज़ हो गए झोली पसार के।"

आपकी झोली में जिस दिन वह जो भी डाल दे, उसे उसका प्रसाद मानिए। उसे दुर्घटना मत घोषित करिए। वह आपके जीवन में मील का पत्थर होगा। वो आपके जीवन की सुघटना बनेगी। आप व्यथित मत होइए। **इष्ट के पास बैठकर विचार करिए, कि "प्रभु! आपने मुझे यह जो प्रसाद दिया है, इसके पीछे भी आपका कोई आनन्दमय कारण अवश्य होगा।"**

इस प्रकार हम इस पूर्ण सत्य से अवगत हो जाते हैं और ईश्वर द्वारा दी गई इस देह द्वारा समर्पण भाव से सांसारिक कार्य करते रहते हैं, जो हमारे स्वभाव, परिस्थितियों और प्रतिभाओं के अनुरूप प्रभु ही करवाते हैं। आप उन कर्मों को करिए, परन्तु उनके कारण को, कर्त्ताभाव को, कर्म को और कर्मफल को ईश्वर-समर्पित करते जाइए। यहाँ पर एक दिव्य अधिनियम है। **जब हम अपने जीवन को इस प्रकार ढाल लेते हैं और विवेक-बुद्धि से इस तथ्य को आत्मसात् कर लेते हैं तथा सद्गुरु-कृपा द्वारा, सत्संग द्वारा, स्वाध्याय, जप, तप, दान, पुण्य, यज्ञ-हवन, चिन्तन-मनन इत्यादि के तहत जीवन के कार्य करते हैं, तो एक दिन प्रभु-कृपा से हम प्रारब्ध से मुक्त हो जाते हैं।** प्रारब्ध रूपी (अदृश्य कैसेट) जिसके तहत हमको बार-बार जन्म मिलता है, वह समाप्त हो जाती है। यहाँ से शुरू होता है सिलसिला **प्रदत्त-कर्मों** का। यहाँ तक आपके कर्म वे थे, जिनके लिए आपको **विशेष-देह** मिली थी। जब आपका प्रारब्ध साधना, उपासना व पुरुषार्थ द्वारा प्रभु-कृपा से समाप्त हो जाएगा, तो प्रभु ने जिसके लिए आपको **देह-विशेष** दी है, वह विभाग शुरू हो जाएगा। प्रभु आपसे वह करवायेंगे, जिसके लिए उन्होंने आपकी **देह-विशेष** बनाई, उसकी इतनी औपचारिकताएँ थीं। **स्वयंभू और संदर्भ कर्मों** में अपना हस्तक्षेप नहीं करना। प्रभु आप कर रहे हैं, आप करवा रहे हैं, आप क्यों कर रहे हैं? क्योंकि मेरी यह देह भी तो आपने ही दी है, इसलिए मैं कैसे कर सकता हूँ।

इसके एक-एक प्राण, एक-एक श्वास के स्वामी आप हैं। सम्पूर्ण नियन्त्रण आपका है। अतः जो कर रहे हैं आप कर रहे हैं, आप ही ने करवाया है। जब कोई आपके किसी कृत्य की प्रशंसा करे तो उसके सामने बेशक खुश हो लेना, परन्तु घर में जाकर इष्ट के सामने खूब रोना, कि "प्रभु! अब मुझे और मूर्ख मत बनाइए। मैं जन्मों-जन्मान्तरों से बनता आया हूँ।" नहीं तो दिव्य-अधिनियम के अन्तर्गत कोई न कोई सज़ा फिर मिल जाएगी। किसी चीज़ पर अपना अहं मत करना।

जब हम अपने प्रारब्ध कर्मों और अन्य कर्मों को ईश्वर के नाम से करते-करते परिपक्व हो जाते हैं, तो प्रभु हमसे वह करवाते हैं जिसके लिए उसने हमको देह-विशेष दी है। अभी तक सब कुछ **विशेष-देह** के कारण करवाया था। अभी तक हम वो कर रहे थे, जो **हम भी** कर सकते थे। पर '**देह-विशेष**' के कर्मों में प्रभु आपसे वह करवाएँगे जो **आप ही** कर सकते हैं। क्योंकि **"Everybody is highly indispensible." जो आप कर सकते हैं, वो आप ही कर सकते हैं।** बशर्ते जो आप भी कर सकते थे, उसमें आप अपनी बुद्धि का अहं न लगाएँ। पूर्णतः तहे-दिल से रोते हुए ईश्वर-समर्पित करते जाएँ। **तभी आपसे ईश्वर वे प्रदत्त-कर्म करवाएंगे।** क्योंकि ईश्वर उन कर्मों को करवाने के लिए आपको, आपकी देह की सीमाओं से पार ले जाते हैं। आपको असीम, अगणित शक्तियों से परिपूरित कर देते हैं।

आप मुझ से सहमत होंगे, कि हमारी शारीरिक, बौद्धिक व मानसिक शक्तियों की एक निश्चित सीमा है। **लेकिन जब प्रभु आपसे प्रदत्त-कर्म करवाएँगे, जिसके लिए आपको देह-विशेष दी है, तो वे आपको इन सीमा से बाहर ले जाकर उसी क्षण असंख्य-गुणा, गणनातीत शक्तियों से विभूषित कर देंगे।** हनुमान जी के रूप में इसका उदाहरण मैं कई बार दे चुका हूँ। प्रभु श्रीराम ने माता सीता की खोज करके पहचान के लिए अपनी अँगूठी श्रीहनुमान जी को दी, जो उन्होंने चुपचाप अपने मुख में रख ली। अब समस्त वानर सेना जामवन्त, अंगद, नल, नील आदि सागर-तट पर शोक-निमग्न बैठे हैं कि इस अथाह-सागर को पार कौन करे? क्योंकि

जटायु के भाई सम्पाति ने उन्हें सीता का पता बता दिया था, कि वे दक्षिण दिशा में त्रिकूट पर्वत पर बसी लंका में अशोक वाटिका में बैठी हैं। हनुमान जी तो घुटने में सिर दिए रो रहे थे, कि प्रभु श्रीराम ने मुझे अँगूठी क्यों दी, मैं तो माता सीता तक पहुँच ही कैसे सकता हूँ? क्योंकि उनको यह ज्ञान ही न था, कि यह कार्य वह ही कर सकते हैं। वृद्ध जामवन्त जी देखते हैं कि शिव-शक्ति संगम का साकार अवतार यह हनुमान उदास बैठा अश्रु बहा रहा है, तो वे उसे जाग्रत करने के विभिन्न प्रयास करते हैं :—

''कहहु रीछपति सुनु हनुमाना,
का चुप साधि रहेउ बलवाना।
पवन तनय बल पवन समाना,
बुधि विवेक विज्ञान निधाना।
कवन सो काज कठिन जग माहिं,
जो नहीं होय तात तुम पाहिं।''

परन्तु हनुमान जी में कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। कहते हैं कि फिर प्रभु श्रीराम जी की प्रेरणानुसार उन्होंने कहा :—

''राम काज लगि तव अवतारा,
सुनतहिं भयहु पर्वताकारा,
सिंहनाद करि बारहिं बारा,
लीलहि नाँघहु जलनिधि खारा,
सहित सहाय रावनहि भारी,
आनहु इहाँ त्रिकूट उपारी।''

जामवन्त जी ने जैसे ही प्रभु द्वारा प्रदत्त-कर्म की बात कही, कि ***''राम काज लगि तव अवतारा''*** जिसके लिए हनुमान जी को देह-विशेष मिली थी, वे तुरन्त जाग्रत हो गये और असीम शक्तियों से परिपूरित हो गए। ''जय श्री राम'' कहते हुए सिंहनाद करने लगे, कि मैं खेल ही खेल में यह खारा सागर लाँघ कर, रावण को उसके योद्धाओं सहित पछाड़कर, पूरे त्रिकूट पर्वत को, जिस पर लंका बसी है, उखाड़ कर लाता हूँ। हनुमान जी यह सब

कर सकते थे। उनमें इतनी शक्तियाँ जाग्रत हो गई थीं, परन्तु उन्होंने विवेक नहीं खोया और जामवन्त जी से पूछा, कि मैं इतना कर सकता हूँ, पर मुझे आप उचित परामर्श दीजिए, कि मुझे करना क्या है? तो जामवन्त जी ने आनन्दित होकर कहाः—

'' एतना करहु तात तुम जाई, सीतहि देखि कहहु सुधि लाई।''

अतः यह था **'प्रदत्त-कर्म'**। अब बुद्धिजीवी विचार करते हैं कि जो हनुमान जी बैठे अश्रु बहा रहे थे, उनमें इतनी शक्ति कहाँ से आ गई। अरे! प्रभु ने वह असीम आरक्षित शक्तियाँ आपके लिए व्यक्तिगत तौर पर सुरक्षित रखी हैं। वो शक्तियाँ आपको तब दी जाती हैं, जब आप उन कार्यों के लिए स्वयं को सुरक्षित रखते हैं, जिनके लिए प्रभु ने आपको बनाया है। आप सबमें व्यक्तिगत तौर पर वे समस्त शक्तियाँ हैं, आप सबके अन्दर वह हनुमन्त-शक्ति है। शिव-शक्ति का अवतार हनुमान एकाएक जाग्रत हो गया। शिव-शक्ति का यह अवतरण भारतीय संस्कृति का बहुत महत्त्वपूर्ण पहलू है। हमारे यहाँ आध्यात्मिक आधार पर विवाह होते हैं। हमारे यहाँ पत्नी, धर्मपत्नी होती है। यदि आज तक कोई परम गृहस्थ विश्व में हुआ है, तो वह प्रभु श्री हनुमान जी ही हैं। वे शिव-शक्ति समन्वय के साकार प्रतीक हैं, क्योंकि देवाधिदेव महादेव ने अपने इस एकादश रुद्र अवतार में माँ पार्वती, माँ जगदम्बा-शक्ति को अपनी पूँछ के रूप में अपनी देह के साथ सम्पृक्त कर रखा है। कोई भी व्यक्ति अपनी पत्नी को जितना भी प्रेम करता हो, उसे भौतिक रूप से अपनी देह के साथ सम्पृक्त नहीं कर सकता। भगवान शंकर और उनकी धर्मपत्नी पार्वती जब हनुमान जी के रूप में एक देह में आ गये, तो इस देह में स्वयं भगवान शंकर और माँ जगदम्बा अपनी अपार शक्तियों को नहीं जानते। अतः स्वयं श्रीहनुमान जी भी अपनी अनन्त शक्तियों को नहीं जानते। जिस घर में पति-पत्नी सामंजस्य होगा, एकता होगी, उस घर में हनुमन्त-शक्ति अवश्य प्रकट हो जाएगी। उस घर में उत्पन्न होने वाली सन्तान कोई महा-नृप, महा-योगी, महा-मति होगी। आप भारतीय संस्कृति के द्योतक हैं, पोषक हैं तो **घर में पति-पत्नी में सामंजस्य**

होना परम आवश्यक है। पाश्चात्यानुगमन और तथाकथित उच्च-शिक्षा के कारण हम उस सामंजस्य को खोते जा रहे हैं। **गृहस्थ की नींव है, यह शिव-शक्ति संगम। जिस घर में पति-पत्नी का समन्वय होगा, वहाँ लक्ष्मी अपने सातों स्वरूपों के साथ वास करेगी।** वहाँ सुख, समृद्धि, संतोष, शान्ति, स्वास्थ्य, स्वजन व सत्संग होगा। आप विचार करिए, यदि आपके घर में ऐसा सामंजस्य नहीं है, तो आप कभी भी प्रदत्त-कर्मों के लिए नहीं चुने जा सकते। इसलिए आप सब सद्‌गृहस्थों से मेरा आग्रह है, कि आप परम्परागत सद्‌गृहस्थ को पुनर्विकसित करिए। आपके अन्दर के वे संस्कार मात्र आच्छादित से हो गए हैं, नष्ट नहीं हुए हैं। आप अपने-अपने घरों को संशोधित व सुवासित करिए, ताकि **प्रत्येक घर में हनुमन्त-शक्ति का अवतार हो। आप पूर्ण ऐश्वर्य से परिपूरित हों और प्रदत्त-कर्मों को करने के अधिकारी बनें, यही हमारी शुभकामना है।**

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय।'

(20 अप्रैल, 2003)

हवन

आज इष्ट एवं सद्गुरु-कृपा से हम सब इस दिव्य घर में हवन-कुण्ड बनने पर यज्ञ के शुभारम्भ के महोत्सव पर एकत्रित हुए हैं, यह निस्सन्देह हम सबका परम सौभाग्य है। किसी भी सद्गृहस्थ के यहाँ जब हवन-कुण्ड बनता है, तो यह उसके जीवन की सर्वोत्कृष्ट घटनाओं में से भव्यतम एवं परमोत्कृष्ट घटना है। **इस घटना के घटते ही उस सद्-गृहस्थ के घर दिव्यता की नींव पड़ जाती है। वह दिव्य-गृहस्थ बन जाता है और उस घर में ईश्वर अपनी छः परम दिव्य विभूतियों, पंच-महाभूतों, पंच-प्राण-शक्तियों और तैंतीस करोड़ परम दिव्य विधाओं के साथ विराजमान होता है।**

वह महा ईश्वरीय सत्ता जब अपने भक्तों के आग्रह पर कभी इस धरा पर अवतरित होती है, तो उस अंशावतार अथवा पूर्णावतार में छः दिव्य विभूतियों का होना परमावश्यक है—**महासौन्दर्यवान, परम ज्ञानस्वरूप, महासशक्त, परम ऐश्वर्यवान, ख्यातिवान एवं अन्ततः परम वैराग्यवान अथवा त्यागवान।** इन गुणों से विभूषित वह महासत्ता स्वयं में निराकार है एवं सच्चिदानन्द है। शास्त्र ने उसे ठोस-घन-शिला कहा है—'**ना कित आएबो न कित जाएबो**'—वह स्वयं में धर्मातीत, कर्मातीत, सम्बन्धातीत, कर्त्तव्यातीत, कालातीत, त्रिगुणातीत, मायातीत, लिंगातीत, अजर-अमर, अनादि, अनंत, अविरल एवं अकाट्य है। ऐसी परम ईश्वरीय सत्ता को मानव, उसके साथ सम्पर्क करने के लिए, उसका सान्निध्य व प्रेम प्राप्त करने के लिए नाम-रूप में मान लेता है, जिसे मैंने **'इष्ट'** नाम दिया था। हमारा वह इष्ट ही सर्वोपरि परमात्मा है, हमारा सद्गुरु है :—

''गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु, गुरुर्देवो महेश्वरः,
गुरु साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः।''

गुरु ब्रह्मा है, गुरु विष्णु है, गुरु महेश है, गुरु ही वह पारब्रह्म परमेश्वर है, जिसका कोई नाम-रूप नहीं है, जो निराकार है। सद्‌गुरु अथवा इष्ट उसका साक्षात् साकार-स्वरूप धारण कर लेता है। अपने भक्तों व शिष्यों को सद्ज्ञान से परिपूरित एवं आलोकित करने के लिए उसे दिव्य-अधिनियम के अन्तर्गत स्वयं अपनी माया में आना पड़ता है। वह साकार नाम-रूप में आता है। यद्यपि उस नाम-रूप का उसके स्वयं के लिए कोई महात्म्य नहीं होता। ईश्वर की उस नाम-रूप में साकार सत्ता को जब हम मान्यता दे देते हैं, उसे अपना इष्ट, सद्‌गुरु व सर्वोपरि परमात्मा मान लेते हैं, तो यह मान्यता निजी व व्यक्तिगत है, उसे हम मानकर चलते हैं। क्योंकि यदि हम विचारपूर्वक चिन्तन करें तो आश्वस्त हो जाते हैं, कि हमारे समस्त सम्बन्ध हमारी मान्यता पर ही आधारित होते हैं। यह मानने की प्रतिभा हम सबमें है; परन्तु दुर्भाग्य यह है, कि हम सांसारिक सम्बन्धों को मान्यता तो देते हैं, परन्तु यदि वे सम्बन्ध आध्यात्मिक स्वरूप न लें तो अन्ततः हमें गर्त या नरक में ले जाने के लिए पर्याप्त होते हैं। वे सम्बन्ध जिनसे हम तथाकथित सुखों की आकांक्षा करते हैं, वे एक दिन अवश्य हमारे दुःखों का कारण बनते हैं।

हम मान्यता की इस अद्‌भुत प्रतिभा-क्षमता का सदुपयोग करते हुए उस पारब्रह्म परमेश्वर को भी नाम-रूप में मान लें। उससे सम्बन्ध बना लें, जैसेकि हमने संसार को माना है, तो उसका मनन, चिन्तन, ध्यान, पूजा, अर्चना, जाप, वन्दन आदि करते-करते एक दिन कभी न कभी उसकी परम कृपा से हमारी मान्यता सिद्ध हो जाती है। **इष्ट की ओर से भी जब आपको मान्यता दे दी जाती है, तो उसे मान्यता की सिद्धि कहा है,** जो बहुत महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि आपका मान्यता देना अलग बात है और दूसरी ओर से मान्यता मिलने पर मान्यता की सिद्धि होना सर्वथा पृथक आयाम है। इस प्रकार हमने अपनी पसन्द के किसी भी नाम-रूप में इष्ट को मान्यता दी,

परन्तु हम केवल उस एक नाम-रूप तक ही यदि सीमित रह गए और भगवान की भगवत्ता तथा ईश्वर के ईश्वरत्व को उसमें आरोपित नहीं किया, तो इष्ट व सद्‌गुरु की धारणा में भी पारस्परिक संघर्ष हो जाते हैं। जिसे आपने इष्ट माना है, उसे छः दिव्य-गुणों से विभूषित होना अति अनिवार्य है। जब आपकी मान्यता सिद्ध हो जाती है, तो सब झगड़े समाप्त हो जाते हैं। दिव्य-गुण तो वही हैं, ईश्वर का ईश्वरत्व तो एक ही है। जब वह इष्ट भी आपको मान लेता है, तो आपको अनुभूतियाँ होनी शुरू हो जाती हैं, जोकि आपकी निजी व गुप्त सम्पदा है। उन्हें अपने सद्‌गुरु के अतिरिक्त किसी के सामने उजागर नहीं करना चाहिए। आपके और आपके इष्ट के बीच की अनुभूतियाँ आपकी अपनी हैं, वे आपका न जाने क्या-क्या कर देंगी! कभी विशेष महाकृपा होगी तो वह इष्ट आपको दर्शन भी दे देगा। यह बहुत चमत्कारिक व आकस्मिक कृपा है, कब, किस पर, क्यों, कहाँ होती है, यह कृपा करने वाला जाने! यह सोच-समझ का विषय नहीं है।

इस प्रकार एक विशेष नाम-रूपी साकार सत्ता में आपने ईश्वरत्व को प्रतिष्ठित करके इष्ट माना, परन्तु इष्ट की ओर से मान्यता के लिए कई बार अनेकानेक जन्मों तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है। जब आप सद्‌गुरु के चरणों में पहुँचते हैं, तो सद्‌गुरु इस प्रक्रिया का सरलीकरण करता है। वह अग्नि-रूप ईश्वर के ईश्वरत्व तथा उसकी छः दिव्य-विभूतियों का दिग्दर्शन करवाने के लिए अपने परम सद्‌शिष्यों से हवन करवाता है। जब हवन-कुण्ड में श्रद्धा, भाव एवं परम पावन मन्त्रोच्चार के साथ अग्नि प्रज्ज्वलित होती है, तो आपके साकार-इष्ट के छः दिव्य गुण, वे छः परम विशिष्ट विभूतियाँ उस निराकार अग्नि-स्वरूप में साक्षात् दिग्दर्शित होती हैं, जिनके बिना ईश्वर होता ही नहीं है। अग्नि की लालिमायुक्त नृत्य करती हुई लपटें उसका **सौन्दर्य** है, अग्नि का तेज उसकी **शक्ति** है, अग्नि का प्रकाश **ज्ञान** है, उसमें श्रद्धापूर्वक अर्पित किए गए विभिन्न सुगन्धित द्रव्य व औषधियाँ उसका **ऐश्वर्य** है, उसमें उठता धूना उसकी **ख्याति** है और अन्ततः महाशेष भस्मी उसका **वैराग** अथवा **त्याग** है। तो सद्‌गुरु हवन-अग्नि में, जो ईश्वर का

निराकार-स्वरूप है, ईश्वर की इन छः परम विभूतियों का अपने परम दिव्य सद्शिष्य को साक्षात् दर्शन करवा देता है, कि देखो यह निराकार ब्रह्म है और ये छः विभूतियाँ ही तुम्हारे साकार इष्ट में भी प्रकट होंगी। हवन-अग्नि में सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड का संचालन, पालन व संहार करने वाले पांच महाप्राणों, पंच-महाभूतों एवं अपने इष्ट के तैंतीस करोड़ स्वरूपों का दिग्दर्शन भी आप मन्त्रोच्चार के साथ करते हैं। इन तैंतीस करोड़ देवताओं व आपके इष्ट की शक्तियों द्वारा ही आपकी देह सहित सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड का निर्माण, पालन एवं संहार होता है। केवल मानव-देह और गाय माता की देह में ही तैंतीस करोड़ देवता विराजमान रहते हैं।

हवन में आप पँच-प्राण-शक्तियों के निमित्त आहूतियाँ अर्पित करते हैं—**'ॐ प्राणाय स्वाहा, ॐ अपानाय स्वाहा, ॐ समानाय स्वाहा, ॐ उदानाय स्वाहा और ॐ व्यानाय स्वाहा।'** प्राण नामक प्राण-शक्ति से हवन-अग्नि में **तेज**, शक्ति व प्रखरता आती है, उदान-प्राण लपटों को **सौन्दर्य** प्रदान करता है, अपान-प्राण धूने या **ख्याति** को प्रकट करता है, समान-प्राण हवन में अर्पित सभी सुगन्धित समिधाओं या द्रव्यों रूपी **ऐश्वर्य** का द्योतक है और वह ऐश्वर्य ही अन्ततः **भस्मी** में परिणत हो जाता है, व्यान-प्राण अग्नि के ज्ञान रूपी प्रकाश को उजागर करता है। ये पाँचों-प्राण हमारी देह को निर्देशित करते हैं, तो सद्गुरु उस इष्ट की इन पाँच-महाशक्तियों, पाँचों-प्राणों का दिग्दर्शन भी अपने शिष्य को हवन-अग्नि में करवाता है। जब हम हवन में श्रद्धापूर्वक आहूतियाँ डालते हैं, तो हमारे भीतर ये प्राण जाग्रत हो जाते हैं। इनमें से व्यान-प्राण की मैं विस्तृत व्याख्या करूँगा।

जब मानव-देह में व्यान-प्राण प्रदीप्त होता है, तो मानव की चार प्रकार की ईश्वरीय दिव्य-बुद्धियाँ प्रकट हो जाती हैं। एक तो **'आइ क्यू'** में बंधी हमारी मानवीय बुद्धि है, जो चाहे कितनी भी प्रखर क्यों न हो, अन्ततः सीमित होती है। वह हमें भौतिकता व सांसारिकता में उलझा कर रोगों, दोषों, कष्टों, पीड़ाओं व सब प्रकार के दुःखों में जीवन व्यतीत करने पर बाध्य कर देती

है। व्यान-प्राण के उद्दीपन द्वारा बुद्धि में विवेक उत्पन्न होता है, कि यहाँ ऐसी सत्ता अवश्य है, जो पूरे महाब्रह्माण्ड को चला रही है। व्यान-प्राण से आपकी चार प्रकार की दिव्य-बुद्धियाँ जाग्रत हो जाती हैं—**विवेक, मेधा, प्रज्ञा और ऋतम्भरा**। ये बुद्धियाँ केवल भारतीय संस्कृति के पोषकों में ही पायी जाती हैं, इसलिए इन शब्दों का अंग्रेजी में कोई अनुवाद नहीं मिलता। **ऋतम्भरा** वह बुद्धि है, जिससे आप ईश्वरीय रहस्यों को पकड़ते हैं। इस मानवीय **'आई क्यू'** वाली बुद्धि से आप ईश्वरीय रहस्यों का आभास नहीं कर सकते—कि हनुमान जी पर्वताकार कैसे हो गए और उन्होंने पूरा पर्वत कैसे उखाड़ लिया—आप इस बुद्धि से तर्क-कुतर्क करेंगे तो बुद्धि और नष्ट हो जायेगी। सद्गुरु की कोई बात या ईश्वरीय रहस्य पल्ले न पड़े, तो कभी भूल से भी उसकी आलोचना नहीं करना, नहीं तो सम्यक दृष्टि और निर्णय करने की शक्ति समाप्त हो जाएगी और बुद्धि भ्रष्ट हो जाएगी। यदि आप उसे ग्रहण न भी कर पाएँ, तो भी प्रणाम कर दीजिए।

आपने गुरु द्रोणाचार्य का नाम सुना होगा। उनके एक ही सुपुत्र हैं, अश्वत्थामा। उसने जब भगवान श्रीकृष्ण के सुदर्शन-चक्र का कमाल देखा, तो उन्होंने पिताश्री से कहा कि आपने इस सुदर्शन-चक्र की शिक्षा तो हमें दी ही नहीं। द्रोणाचार्य ने कहा—पुत्र अश्वत्थामा! आप द्वारका जाइए और श्रीकृष्ण जी से, जो मूलतः तो ग्वाला ही है, उसे कुछ लोभ-लालच देकर सुदर्शन-चक्र का रहस्य ले लीजिए। अश्वत्थामा द्वारका पहुँचे तो श्रीकृष्ण ने गुरुपुत्र होने के नाते उनका बहुत स्वागत-सत्कार किया। एक दिन भगवान के साथ उनके बगीचे में घूमते हुए अश्वत्थामा ने भगवान श्रीकृष्ण को बहुत से प्रलोभन दिए। उन्हें अस्त्र-शस्त्र विद्या के गूढ़ रहस्य देने का लोभ दिया परन्तु भगवान श्रीकृष्ण ने कहा, कि अभी हम कुछ व्यस्त भी हैं और हमारी युद्ध करने की भी अभी कोई योजना नहीं है, जब मुझे आवश्यकता होगी, तो मैं हस्तिनापुर आकर आपकी कृपा अवश्य लूँगा। अब अश्वत्थामा ने सुदर्शन-चक्र देखने की इच्छा प्रकट की, तो भगवान श्रीकृष्ण उन्हें उस कक्ष में ले गए, जहाँ सुदर्शन-चक्र की पूजा होती थी। वे ललचाई निगाहों से

सुदर्शन-चक्र को देखने लगे। भगवान उनके हृदय की स्थिति को समझ रहे हैं, पर वे अश्वत्थामा के मुख से ही बुलवाना चाहते थे। अतः अश्वत्थामा ने कह ही दिया, कि आप हमें जाते समय कुछ भेंट भी तो देना चाहेंगे। हमारी इच्छा है कि आप हमें यह सुदर्शन-चक्र ही भेंट में दे दीजिए। भगवान श्रीकृष्ण ने सहज ही कहा कि आप इसे अभी ले लीजिए। अश्वत्थामा बहुत शूरवीर व महारथी थे। वे सुदर्शन-चक्र को उठाने लगे और अपनी पूरी शक्ति व सामर्थ्य लगाने पर भी वे उसे ज़रा सा हिला भी नहीं पाए। जब वे सुदर्शन-चक्र को उठाने के लिए संघर्ष कर रहे थे, तो भगवान श्रीकृष्ण ने उनसे कहा—अश्वत्थामा जी! मैं एक बात तो आपको बताना भूल ही गया, कि यह सुदर्शन-चक्र तर्जनी उंगली के नाखून पर उठाकर चलाया जाता है। अश्वत्थामा हाँफ गए थे, कि यह तो मुझसे हिलता भी नहीं है! वे अत्यन्त लज्जित हुए और वहाँ से विदा हो गए। आज भी वह अश्वत्थामा देहसहित अधोगति में जी रहा है।

जब तक व्यान-प्राण जाग्रत नहीं होगा, आप ईश्वर के इन रहस्यों को नहीं पकड़ सकते। जब तक आपको ईश्वरीय सत्ता की अनुभूति नहीं होगी, उनमें श्रद्धा नहीं होगी, आप ईश्वरीय रहस्यों को नहीं जान सकते। उसके लिए आपको **ऋतम्भरा** चाहिए, जो आपको हवन में व्यान-प्राण के लिए श्रद्धापूर्वक आहूतियाँ देने से ही उद्दीप्त करने पर प्राप्त हो सकती है। व्यान-प्राण जाग्रत होने पर आप में मेधा जाग्रत हो जाती है। **मेधा** द्वारा आप शास्त्रों, पुराणों, वेदों, उपनिषदों व श्रुतियों को आत्मसात् कर सकते हैं। इस मानव बुद्धि से आप इन ग्रन्थों को नहीं समझ सकते, यह बुद्धि बहुत तुच्छ है। एक अन्य दिव्य बुद्धि है **'प्रज्ञा'**, जो आपको **'शॉक-प्रूफ'** बनाती है। जीवन में अनेक प्रकार के उतार-चढ़ाव आते हैं, संघर्ष आते हैं तो महापुरुष उसमें विचलित नहीं होते। उनकी प्रज्ञा उनको स्थिर रखती है—**'उदित सूर्य जेहि भाँति अथवत् ताहि भाँति।'** यह स्थिरता आपकी प्रज्ञा-बुद्धि से आती है। इस प्रकार पाँचों प्राण शक्तियाँ आपके **सौन्दर्य, ज्ञान, ख्याति, ऐश्वर्य, शक्ति व वैराग** के अभ्युदय में सहायक होती हैं और हवन-अग्नि में सद्गुरु पाँचों-प्राणों का व्यावहारिक दिग्दर्शन करवा देता है।

ईश्वर ने पँच-महाभूतों से सम्पूर्ण सृष्टि का निर्माण किया है। पृथ्वी, जल, वायु, आकाश एवं अग्नि। हवन-अग्नि में हम पाँचों-महाभूतों को आहूतियाँ अर्पित करते हैं—यह आणविक शक्तियाँ हैं। हवन-अग्नि वस्तुतः पंच-प्राणों का पुंज ईश्वरीय निराकार स्वरूप है। **अग्नि** इसका एक तत्त्व है, हवन का **धूना वायु** तत्त्व है, हवन कुण्ड से उठते विभिन्न **नाद आकाश** तत्त्व के द्योतक हैं, उठती हुई **वाष्प जल** तत्त्व है और अन्ततः शेष **भस्मी पृथ्वी** तत्त्व है। इस प्रकार हवन-अग्नि में पंच-महाभूतों का साक्षात् दिग्दर्शन होता है। अब यहाँ एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है, कि हवन-अग्नि और एक साधारण-अग्नि में क्या अन्तर है? किसी भी प्रकार से अग्नि प्रज्ज्वलित कर, कैम्प फायर आदि के रूप में भी अग्नि में ये विभूतियाँ दिग्दर्शित की जा सकती हैं। उसमें तेज होगा, प्रकाश होगा, सौन्दर्य होगा, धूना नहीं तो धुआँ होगा और अन्ततः भस्मी भी शेष होगी। तो हवन की अग्नि का विशेष महात्म्य क्या है? वस्तुतः हवन-अग्नि का वैशिष्ट्य उसकी **मन्त्र-शक्ति** है। वह मन्त्रों की शक्ति किस प्रकार लपटों में, धूने में, भस्मी में प्रकट होती है, इसका वर्णन मैं विद्युत-तार में प्रवाहित विद्युत-धारा और उसके द्वारा कार्य कर रहे विभिन्न उपकरणों के उदाहरण द्वारा करूँगा।

एक ताँबे की तार है, उसमें बिजली बहती है, जिसे देखा नहीं जा सकता। ताँबे की तार दिखाई देती है, परन्तु उसमें प्रवाहित विद्युत अदृश्य है। उस तार को जब हम एयरकन्डीशनर से सम्पृक्त करते हैं, तो ए. सी. हमें ठण्डी हवा देता है, हीटर से जोड़ते हैं तो गर्म हवा मिलती है, बल्ब के साथ जुड़ने पर वह प्रकाश देती है। ए. सी. की ठण्डक, हीटर की गर्मी और बल्ब का प्रकाश दृश्यमान है, अनुभव होता है, लेकिन वह विद्युत-धारा अदृश्य है। देशकाल, परिस्थिति के अनुसार पहले हमें आवश्यकता अनुभव होती है, कि गरमी का मौसम है तो कोई वस्तु या उपकरण ऐसा चाहिए, जो ठण्डी हवा दे। यदि आवश्यकता नहीं होती, तो आप घर में क्यों ए. सी. लगाते? तो पहली बात है **आवश्यकता** और दूसरी है **उपलब्धि**। क्या ए. सी. उपलब्ध है? यहाँ मिलता है। तो **आवश्यकता, उपलब्धि** के बाद तीसरी बात है

सामर्थ्य। क्या आपकी हैसियत है, वह उपकरण लेने की? एक अज्ञात शक्ति ताँबे की तार में बहती है जो अदृश्य है, उसे ए. सी. में लगाया, क्योंकि **एक तो उसकी आवश्यकता थी, दूसरे उसकी उपलब्धि भी थी और तीसरे उसे खरीदने की सामर्थ्य भी थी।** इसी प्रकार सर्दी में आवश्यकता, उपलब्धि और सामर्थ्य होने पर आपने हीटर लगा लिया और जो उसको चला रही है, वह अदृश्य जीवित विद्युत-तार है। आपको ए. सी. की ठण्डक, हीटर की गर्मी और बल्ब का प्रकाश व पंखे की हवा महसूस होती है, लेकिन वह मूल कारण विद्युत-धारा नज़र नहीं आती। वह है परम पिता परमात्मा, परमेश्वर, अनादि देवाधिदेव महादेव जिसमें शक्ति समाहित है। शिव, शक्ति के बिना हो ही नहीं सकता। **'शिव'** से छोटी **'इ'** की मात्रा हटा लीजिए, तो शेष बचा **'शव'।** शिव, शक्ति के बिना कभी नहीं रहता और वह अदृश्य है। **'निराकार रूपं शिवोऽहम् शिवोऽहम्',** वह शिव ही स्वयं ब्रह्मा, विष्णु, महेश बनता है। अब छः ईश्वरीय विभूतियों को याद रखिए, जो सद्गुरु हवन-अग्नि के निराकार रूप में अपने सद्शिष्य को दिग्दर्शित करवाता है। जहाँ भी ईश्वरीय अंश है, वहाँ छः विभूतियों का होना अनिवार्य है। सृष्टि की रचना के लिए उसने बनाया ब्रह्मा जो निर्माणकर्त्ता है। सृष्टि का निर्माणकर्त्ता ज्ञानी होना चाहिए और निर्माण करने के लिए शक्ति भी चाहिए। तो ब्रह्मा को शक्ति दी–**सरस्वती** और उसका मूल गुण-ज्ञान उन्हें दे दिया। विष्णु को पालन करना था, पालन करने के लिए ऐश्वर्य चाहिए, तो उसको शक्ति दी–**लक्ष्मी,** जिसके साथ उसे ईश्वरीय विभूतियों में से मुख्यतः सौन्दर्य और ऐश्वर्य दे दिया। संहार करने के लिए चाहिए महेश, जो वैरागी हो, उसको दे दी भस्मी और उसे शक्ति दी–**माँ जगदम्बा पार्वती।**

शंकर को सिद्ध करना हो तो शंकर की माया माँ पार्वती को सिद्ध करना परमावश्यक है। ज्ञान वैराग्य का साक्षात् प्रकटीकरण महेश है, जो संहार का प्रतीक है। शक्ति सबमें है, इसका अर्थ यह नहीं है, कि उसमें शेष विभूतियाँ नहीं हैं। ब्रह्मा के साथ सरस्वती, विष्णु के साथ लक्ष्मी और शंकर के साथ माँ जगदम्बा अपने 108 स्वरूपों में रहती हैं। देवाधिदेव महादेव इस

प्रकार त्रिदेव के रूप में सृष्टि का निर्माण, पालन और संहार करते हैं। इस प्रकार हमारी भारतीय संस्कृति में उस एक ईश्वर की असंख्य विधाएँ हैं और माँ जगदम्बा 108 स्वरूपों में हैं—नैना देवी, चामुण्डा देवी, ज्वाला रानी, वैष्णो रानी, पार्वती आदि-आदि। गणेश विघ्नहर्त्ता हैं। तो ये विभिन्न उपकरण हैं, जैसेकि वह विद्युत प्रवाहित तार जब ए. सी. में जुड़ी तो ठण्डी हवा मिली, जब हीटर से जुड़ी तो हीटर के उपकरण ने उसे गर्म हवा बना दिया और वही बिजली प्रवाहित तार जब बल्ब के साथ सम्पृक्त हुई तो उसने प्रकाश दिया। उस अदृश्य विद्युत प्रवाहित तार का प्रकटीकरण विभिन्न रूपों में, विभिन्न उपकरणों के कारण हुआ। ईश्वरीय शक्ति देवाधिदेव महादेव शिव-शक्ति का संगम एक ही है। जब आपको **'आवश्यकता, उपलब्धि और सामर्थ्य'** वही तीन चीज़ें हों तो वह निराकार शिव अपनी विभिन्न विधाओं रूपी उपकरणों के माध्यम से विभिन्न रूपों में प्रकट होता है। आपके घर में जब कोई बड़ा विघ्न आ गया है, तो आवश्यकता होती है विघ्नहर्त्ता की। **ईश्वर रूपी विद्युत प्रवाहित तार को विघ्नहर्त्ता गणेश रूपी उपकरण से लगाइए, श्रद्धा से।** उसकी एक कार्यप्रणाली है, सिस्टम है, जब हम हवन करते हैं, तो उस ईश्वरीय शक्ति के साकार रूप को प्रणाम करते हैं। ये सब देवी-देवता उसी की शक्तियाँ हैं, जिनके उपकरण और तौर-तरीके अलग-अलग हैं :—

''वक्रतुण्ड महाकाय सूर्यकोटि समप्रभ,
निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा।''

हे गणेश जी महाराज! मैं आपके साकार रूप को प्रणाम करता हूँ। उसके बाद उसी हवन-अग्नि को, उन्हीं लपटों की प्रचण्डता को, उसके प्रकाश को, सौन्दर्य को, उसकी ख्याति, उसके वैराग और ऐश्वर्य को उस विशेष उपकरण से प्रवाहित करते हैं। ***'ॐ गं गणपतये नमः स्वाहा।'*** ये गणेश जी का सूक्ष्म-मण्डल है। पहले हमने उनके साकार स्थूल रूप को प्रणाम किया, क्योंकि आपको विघ्न हरने की आवश्यकता है, तो आपने गणेश जी का आह्वान किया, जो आपके अपने इष्ट का ही स्वरूप है। लेकिन

इष्ट ने गणेश बनकर आपके विघ्नों को हरना है। इसी प्रकार चामुण्डा देवी– ***'ऊँ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चै नमः।'*** उसी देवाधिदेव महादेव रूपी तार को आपने चामुण्डा रूपी उपकरण से जोड़ दिया।

पहली बात है कि आपकी आवश्यकता क्या है? फिर उसकी उपलब्धि के लिए आप उस विशेष शक्ति को पूजित करने के लिए विभिन्न द्रव्य एकत्रित करते हैं। आपमें सामर्थ्य और विशेष रूप से श्रद्धा होनी चाहिए। उसमें आप श्रद्धा से, अश्रुओं से उसका आह्वान करिए, ये ही आपकी सामर्थ्य है। **आप महाशक्तियों के सामने जितने असमर्थ व अशक्त हो जाएँगे, आपमें उतनी ही सामर्थ्य आ जाएगी।** कभी भी देव-दरबार में, सद्गुरु के पास, इष्ट के सामने औपचारिकताएँ लेकर नहीं जाना, कि मैं अमुक-अमुक हूँ, मेरी विशेष पूछ होनी चाहिए, ऐसे वहाँ से कुछ नहीं मिलेगा। कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड नायक, करोड़ों ब्रह्माण्डों का निर्माण, पालन एवं संहार जिसका मात्र भृकुटि विलास है, ऐसे महासशक्त के दरबार में आप खाली और असमर्थ होकर जाइए। आप जितने असमर्थ होकर जाएँगे, उतने ही आप महासमर्थ हो जाएँगे।

हवन करते समय आँखों में अश्रु लिए हुए पदार्थ अर्पित करें। कोई अन्य सामग्री नहीं है, तो आप एक-एक दाना अक्षत् का ही चढ़ाते जाइए। फूल-पत्र चढ़ा दीजिए, पर साथ में आहूतियाँ देते हुए आपका भाव क्या है, यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। आप माँ जगदम्बा पर आहूतियाँ डाल रहे हैं, तो मान लीजिए कि आप माँ के ध्यान में बैठे हैं और आपको आकाशवाणी होती है कि हे पुत्र! मैं तेरे सम्मुख अग्नि-रूप में प्रकट हो रही हूँ, तो उस अग्नि के सम्मुख आपका क्या भाव होगा? तो हवन-अग्नि में आपका वही भाव हो कि मेरी इष्ट माँ जगदम्बा मेरे सम्मुख अग्नि-रूप में साक्षात् अवतरित हैं। शंकर को आहूतियाँ डालें, नवग्रह को डालें, पंच-महाभूतों को डालें तो आप मात्र औपचारिकता मत करिए, जल्दी मत करिए, अपना भाव बनाइए और श्रद्धापूर्वक आहूतियाँ दीजिए, उस महाग्नि में अपना भाव प्रकट कीजिए। उस भाव से आपके पास जो भी वस्तुएँ उपलब्ध हैं, अपनी सामर्थ्यानुसार

चढ़ाइए, जिसके लिए आपको महा-असमर्थ होना पड़ेगा, कि ''हे प्रभु! मैं तो कुछ भी नहीं हूँ। मैं तुम्हें क्या अर्पण कर सकता हूँ:–

''क्या पेश करूँ तुझको, क्या चीज़ हमारी है
ये दिल भी तुम्हारा है ये जान भी तुम्हारी है।''

मैं तुम्हारी कृपा से ही तुम्हारे सम्मुख बैठा हूँ। प्रभु ! तुमने मुझे यहाँ बिठाया है अपने पास, यह आपकी असीम अनुकम्पा है। मैं असमर्थ हूँ, निर्बल, अशक्त हूँ, बल-बुद्धि विद्याहीन हूँ, धनहीन हूँ, सम्पदाहीन हूँ। प्रभु ! तुम कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड-नायक हो, मेरी हैसियत ही क्या है?'' महा असमर्थ होकर बैठ जाइए। आपकी प्रत्येक आहूति आपको उस देवी-देवता रूपी उपकरण के साथ जोड़ देगी और आहूतियाँ डालते-डालते आपका कार्य सिद्ध हो जाएगा। इस महासृष्टि के निर्माण के लिए जो डिज़ाइन बनते हैं, वे निराकार में संकल्प के उठने से ही बनते हैं। यदि आप ऐश्वर्यपूर्ण और अति गुणात्मक जीवन व्यतीत करना चाहते हैं और उस यज्ञ-हवन-अग्नि के सम्मुख बैठकर उसके निराकार स्वरूप को श्रद्धापूर्वक आहूतियाँ डालते हैं तो आपके निराकार मन में जो भी संकल्प आएगा, वो तुरन्त रूप धारण करके आपके सम्मुख प्रकट हो जाएगा। यदि आप धनाढ्य बनना चाहते हैं, तो आप अपने मानस में वह डिज़ाइन बनाकर उस यज्ञ-अग्नि से वह नक्शा पास करवाइए। ईश्वरीय कृत्यों में आपको मात्र नक्शा पास करवाना होता है, उसमें समय की भी बन्दिश नहीं होती, कि इतना समय लगेगा। आप सारी सृष्टि पलक झपकते ही बना सकते हैं। **ईश्वरीय कृत्यों में कर्म नहीं होते, संकल्प होते हैं।** महापुरुष जब वरदान या श्राप देते हैं, तो उनकी कार्यवाही में कोई समय नहीं लगता। यहाँ नक्शा बनाना और उसे पास करवा कर हस्ताक्षर करवाना होता है, जो निराकार में होता है और साकार में आपके सामने प्रकट हो जाता है। कोई दौड़-धूप करने की आवश्यकता नहीं होती।

जहाँ हवन-अग्नि श्रद्धापूर्वक जलती है, ईश्वर का निराकार में प्रकटीकरण होता है, वहाँ सन्तों का आवागमन स्वतः ही प्रारम्भ हो जाता है।

आपका जीवन सब तरह से बदलने लगता है। आम गृहस्थों से आप अलग व विशेष हो जाते हैं। आपके सम्बन्ध बदलने लगते हैं। कई ऊत-पटांग सम्बन्धी आपको छोड़ देते हैं और आपके सम्बन्ध स्वजनों और स्वरूपजनों से हो जाते हैं। कोई आपसे ईर्ष्या, द्वेष नहीं रखता। आपके पास मिलने वाले आकर बहुत प्रसन्न होते हैं। आपकी खुशी में खुश होते हैं और आपके दुःख में ग़मगीन हो जाते हैं, तहे-दिल से। जैसे ही आपके घर में हवन शुरू होता है, तो आपके सम्बन्धों में स्वजन बढ़ने शुरू हो जाते हैं, जो आपके लिए प्रार्थना करते हैं। सांसारिक सम्बन्धों में मात्र सम्बन्ध होते हैं, अपनत्व हो या न हो। आध्यात्मिक सम्बन्धों में अपनत्व पहले होता है और उस सम्बन्ध को कोई भी नाम दे दो, चाहे न दो। जैसे ही आप घर में ईश्वर के निराकार की छः विभूतियों, पंच-प्राणों, पंच-महाभूतों और हमारे समस्त उन देवी-देवताओं रूपी उपकरणों, शक्तियों का मन्त्रों तथा भाव एवं श्रद्धा के साथ आह्वान करते हैं, आहूतियाँ देते हैं, तो वे ईश्वरीय शक्तियाँ आपके कार्य सिद्ध करती हैं। मानव-देह में तैंतीस करोड़ देवताओं का वास है, जिनमें मुख्य तैंतीस हैं, जिनकी एक-एक करोड़ विधाएँ हैं। इस प्रकार हमारी देह को संचालित, पालित व संहारित करने के लिए तैंतीस करोड़ उपकरण हैं। देह तो आपने ले ली, देह पर अनधिकृत कब्ज़ा भी कर लिया, अरे जो वे तैंतीस मुख्य देवता इसको संचालित एवं पालित कर रहे हैं, उनके प्रति आप क्या कर रहे हैं? यदि आप उनके प्रति श्रद्धा नहीं रखते, तो आपके वही देवता आपसे रुष्ट हो जाते हैं और आपकी देह ही आपकी सबसे बड़ी सिरदर्दी बन जाती है।

प्रभु ने आपको देह दी है, जो आपकी धरोहर है, सम्पदा है, वही आपके लिए देनदारी बन जाती है। जब आप यज्ञ, हवन, तप, जप आदि से विमुख होकर देह पर अनधिकृत कब्ज़ा कर लेते हैं, तो ये तैंतीस मुख्य देवी-देवता अपनी कार्यवाही करते हैं। कभी किसी भयंकर बीमारी के माध्यम से या फिर कभी कोर्ट-कचहरियों की पेशियों के माध्यम से, ये दैवीय संस्थान चुपचाप सजाएँ देते रहते हैं। आपने देह पर अनधिकृत कब्ज़ा किया है न, तो सबसे पहले देह के इन देवताओं को मानना पड़ेगा। सबसे बड़ा सर्वोपरि है,

आपका इष्ट और इष्ट की ये तैंतीस मुख्य शक्तियाँ या उपकरण हैं, जो स्वयं में इष्ट जितनी ही शक्तियों से युक्त हैं। जिनकी असख्य विधाएँ हैं और जो छः विभूतियों से विभूषित हैं। इन्हें यथा-सामर्थ्य, यथा-आवश्यकता और यथा-उपलब्धि पूजन, चिन्तन, मनन, श्रवण और सब प्रकार से नित्य प्रणाम करना आवश्यक है, वरना आपकी देह के साथ आपका सम्बन्ध खराब हो जाएगा। आपका समय आपका नहीं रहेगा, आपका धन आपका नहीं होगा। कमाएँगे आप और खाएगा कोई और। सन्तान, धन-सम्पदा कुछ भी आपका नहीं होगा। देह पर जब आप कब्ज़ा कर लेते हैं, तो देह आपके लिए जिम्मेदारी बन जाती है और देह पर आधारित समस्त जगत भी आपकी जिम्मेवारी बन जाता है। जब आप देह को ईश्वर-समर्पित करते हैं, तो देह आपके लिए सम्पदा और धरोहर बनती है और **देह पर आधारित सारा जगत भी आपके लिए हो जाता है।**

'बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय।'

(1 जून, 2003)

देहाध्यास

आज इष्ट-प्रेरणा एवं आप सबकी श्रद्धा व जिज्ञासावश आपके सम्मुख **'देहाध्यास'** शीर्षक विषय विस्तार से रखूँगा। इष्ट-कृपा से इसका श्रवण, मनन, चिन्तन आपको अत्यधिक लाभान्वित करेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। देहाध्यास यानि **'मैं देह हूँ',** इस सहज स्वाभाविक भूल के कारण ही यह मानव जो उस सच्चिदानंद ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट रचना एवं साक्षात् प्रतिनिधि था, अनेक रोगों, कष्टों, दुःखों आदि में फंस गया, जिसका वर्णन मैं अपने अनेक प्रवचनों में कर चुका हूँ। जब हम होश में होते हैं, तो देह हमारे साथ होती है, कोई और हो या न हो। अतः इस देह के साथ आत्मसात् होने की जो भूल हुई वह सहज, स्वाभाविक एवं प्राकृतिक थी। वह बहुत बड़ी भूल नहीं थी, लेकिन इसकी सज़ा हमें बहुत भुगतनी पड़ी। सबसे बड़ी अदालत उस खुदा की है, उस दिव्य अदालत से हमें सज़ा सुना दी जाती है **कि इस मूर्ख को, जो होशोहवास में बेहोशी की बातें कर रहा है, जो-जो प्राप्तियाँ उसे थीं और जो इसने तथाकथित कर्मठता से प्राप्त कीं, उन सबके आनंदपूर्वक भोग का अधिकार छीन लिया जाये।** उस देहाध्यास रूपी स्वाभाविक भूल में हम क्यों फंसे, इसकी इतनी बड़ी सज़ा हमें क्यों मिली और सद्गुरु इससे बाहर कैसे निकालता है? आज मैं इसका विस्तृत विश्लेषण करूँगा।

ईश्वर ने दैहिक एवं बौद्धिक शक्ति के साथ, मात्र मानव को ही असीम मानसिक शक्ति दी है, जो स्वयं में अदृश्य है और जिसका स्त्रोत भी अदृश्य है, जो बाखुद सच्चिदानंद ईश्वर है। इस मानसिक धरातल से प्रत्येक मानव

को ईश्वर तक पहुँचने का अधिकार है। अदृश्य परन्तु असीम ईश्वरीय शक्ति से युक्त यह मन, इस पूर्णतः स्वचलित व वातानुकूलित मानव-देह में ईश्वर का साक्षात् प्रतिनिधि है। वह मन मानव के क्षण-क्षण की प्रत्येक गतिविधि का लेखा-जोखा रखता है, कि कहीं यह देह का दुरुपयोग तो नहीं कर रहा। यदि कर रहा है, तो इसे चेतावनी दो और यदि उसे भी अनदेखा कर दे, तो सज़ाएँ दो। उसके अनुसार **'ईश्वरीय अदालत'** में महाकालेश्वर की एक हज़ार आठ धाराओं के अन्तर्गत आपका फैसला होता है। अतः इस मानसिक शक्ति का पूरा नियन्त्रण ईश्वर के हाथ में है।

जब आप देहाध्यास में उतरते हैं, कि मैं देह हूँ, इस अहं के साथ ही तुरन्त आपका वह दिव्य ईश्वरीय मानस आच्छादित हो जाता है। आपके इस अहं से वह उसी तरह ढक जाता है, जैसेकि बादल आ जाने से सूर्य छिप जाता है और वह ईश्वरीय मन मानवीय-मन बन जाता है। वह जन्मजात ईश्वरीय-मन था। बच्चे मन के सच्चे इसलिए होते हैं, क्योंकि उनमें छल, कपट व अहं नहीं होता। कोई बच्चा पैदा होते ही अपने माँ-बाप को नहीं पहचानता। माँ-बाप बच्चे को मान्यता गर्भाधान के साथ ही दे देते हैं, परन्तु बच्चे को अपने माता-पिता को पहचानने में डेढ़ या दो साल लग जाते हैं। तब यदि वह यह कहे, कि मुझे अपने माता-पिता को बनाने में डेढ़ या दो साल लगे, तो वह जन्मजात मूर्ख घोषित कर दिया जायेगा। किसी लड़के का विवाह अगर पच्चीस वर्ष की आयु में हुआ है, तो क्या वह यह वक्तव्य दे सकता है, कि मुझे पत्नी बनाने में पच्चीस वर्ष लगे? कितनी बेतुकी बात होगी, पत्नी उसे बनी बनाई मिली। **मैं बार-बार विभिन्न आयामों से इन तथ्यों को आपके सम्मुख इसलिए रखता हूँ, कि आप आश्वस्त हो जाएं कि जीवन का संयोजन स्वतः अति सुन्दर बना बनाया है। जीवन की प्रत्येक प्राप्ति व प्रत्येक घटना स्वतः प्रारब्ध के अन्तर्गत होती है, लेकिन हम समझते हैं कि उन्हें प्रयत्न करके हम प्राप्त करते हैं या कर लेंगे।** आपके भ्रम के उन्मूलन के लिए एक छोटी सी कहानी सुना रहा हूँ, जो सत्य घटना है।

अमृतसर के पास तरन तारन नामक गाँव में हुक्के का शौकीन एक सिद्ध फकीर रहता था। अमृतसर ओर आस-पास के बहुत से सेठ व आम लोग उस संत के पास जाकर कुछ न कुछ भेंट चढ़ाते थे। वह वैरागी फकीर शाम तक जितना चढ़ावा आता था, अपनी कुटिया के बाहर बने एक मंच पर हाथ पीछे करके सिर के ऊपर से फेंक देता था। उसके पीछे मांगने वाले खड़े रहते थे, जिसके नसीब में जो होता, वह ले जाता था। लोगों को ऐसे सन्तों के विषय में कई बार भ्रम हो जाता है, कि इनके पास बहुत धन चढ़ता होगा तभी तो यह इतना बांट देता है। इसी भ्रम में उसके घर एक दिन डाकू आ गए, कि निकालो जो कुछ भी है। वह फकीर बोला, कि मैं ही निकल जाता हूँ, आप जो चाहे ले लो। यह कह कर वह उसी मंच पर बाहर हुक्का लेकर बैठ गया। डाकुओं ने कुटिया की छान-बीन की, तो उन्हें तीन-चार रुपये ही मिले और वे पैर पटक कर जाने लगे। उनका सरदार बड़ा पराक्रमी, तेजस्वी व हृष्ट-पुष्ट था। उसे देखकर फकीर ने कहा, अरे! तेरे मस्तक पर लिखा है, कि तू सरदारी करने के लिए ही पैदा हुआ है, तू क्या घटिया काम करता है? तू जहाँ रहेगा नेता ही बनेगा। अतः तू ऐसे काम मत किया कर। संत की बात उस डाकू सरदार के दिल-दिमाग में कौंधती रही। कुछ वर्षों बाद उसने वह डाकुओं का गिरोह छोड़ दिया और पटियाला में एक महन्तों के अखाड़े में जाकर सेवा करने लगा। सारे संतों-महंतों की खूब सेवा करके उसने सबका हृदय जीत लिया। कालान्तर में उस अखाड़े के मुख्य महन्त का देहावसान हो गया और मुख्य महन्त के पद के लिए उसी को चुना गया। जब वह मुख्य महन्त घोषित हो गया, तो उसने पंजाब के सारे फकीरों को भण्डारे पर बुलाया, उसमें वह तरन तारन वाला फकीर भी आया। भण्डारे के बाद वह सभी फकीरों को एक-एक करके दान-दक्षिणा देने लगा, उसी बीच उस तरन तारन वाले फकीर की बारी भी आ गई। अब अखाड़े के महन्तों के सरदार ने उस फकीर को पहचान लिया। वह उसके चरणों में पड़ गया, कि मैं वही डाकुओं का सरदार हूँ, आपने कहा था, कि तू जहाँ रहेगा सरदारी करेगा, तो मैं यहाँ महन्तों के इस अखाड़े में आ गया

और यहाँ महन्तों का भी सरदार ही बन गया हूँ। तो यह बात मैं आज के नेताओं को भी सुना रहा हूँ, कि छल-कपट करके कोई नेता नहीं बन सकता। जिसने नेता बनना है, वे उस शौर्य व पौरुष को लेकर पैदा होते हैं, चाहे उनको वह पद मिले या न मिले, वे शासन ही करते हैं। इसलिए शासन करने के लिए कभी गैरकानूनी तरीके मत अपनाइए। ईश्वर ने वह रुतबा आपको दिया होता है, जो आपके प्रारब्ध में अंकित होता है।

प्रारब्ध के अन्तर्गत आपका जीवन अनवरत आनन्दमय स्वतः चलता है, **लेकिन जैसे ही हमारी इस तथाकथित बुद्धि को होश आई, तो हम इतने बेहोश हो गए कि हमने अपनी देह, परिवार, समाज व पूरी दुनिया को चलाने का ठेका ही ले लिया।** हम धन-सम्पदा, पद, प्रतिष्ठा, नाम, यश आदि की प्राप्ति के लिए छल-कपट करने लगे और भागने लगे। **उसी समय हमारा अति सुन्दर ईश्वरीय मन मलिनता से आच्छादित होकर मानवीय बन गया।** हमने स्वयं को बहुत ही छोटा बना लिया, 'बुद्धि' मात्र 'आई क्यू' तक सीमित रह गई। वह ईश्वरीय मन जिसकी शक्ति व सामर्थ्य असीम सागर जैसी थी, उसे हमने संकुचित करके बूंद सरीखा मानवीय मन बना दिया। **ईश्वरीय-मन स्थिर, शान्त, सशक्त एवं समर्थवान होता है और मानवीय-मन अस्थिर, अशक्त, असमर्थ और अशान्त होता है।** ऐसा होने पर यह मायिक शक्ति **'बुद्धि'** उच्छृंखल होकर अपना हक जमाने लगती है, क्योंकि बुद्धि को नियन्त्रित करने के लिए मानव को विवेक, मेधा, प्रज्ञा व ऋतम्भरा की आवश्यकता होती है। इन दिव्य बुद्धियों का वर्णन मैंने **'हवन'** शीर्षक प्रवचन में किया है, ये दिव्य बुद्धियां ही मानव को ईश्वर के साथ जोड़ती हैं।

जब जन्म-जन्मान्तरों तक हम जीवन में प्राप्तियों के पीछे भागते-भागते आसक्तियाँ छोड़कर मरते रहे, तो किसी जन्म में किसी महापुरुष के संग से किसी-किसी की विवेक बुद्धि जाग्रत हो जाती है। यह समस्त संसार क्या है, मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, मुझे कहाँ जाना है, मैं क्यों जी रहा हूँ, मैं जीवन के लिए जी रहा हूँ, तो मुझमें और पशुओं में क्या अन्तर है? ईश्वर ने इतना

बड़ा प्राणी-जगत बनाया है और उन सबके जीवन का यदि वह प्रबन्ध करता है, तो क्या उसने मेरे जीवन का प्रबन्ध नहीं किया होगा! मुझे ईश्वर ने इतनी बुद्धि क्या इसलिए दी है, कि मैं इसका प्रयोग उसके लिए करूँ, कि जिसके लिए पशु भी नहीं करते। **जिसको ईश्वर ने बनाया है उसका पालन-पोषण ईश्वर ही करते हैं, यह विवेक-बुद्धि द्वारा ही मानव समझ सकता है, अन्यथा नहीं।** जब ये प्रश्न इसे बेचैन कर देते हैं और उसके जीवन का मात्र एक ही लक्ष्य होता है, कि इन प्रश्नों के उत्तर जानना, तो वह जिज्ञासु बन जाता है। जिज्ञासु का अंग्रेजी अनुवाद नहीं है, क्योंकि उन देशों में कोई जिज्ञासु नहीं होता। कौन हूँ मैं? तुम कौन हो? इस जिज्ञासा के साथ अब श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है, श्रद्धा का भी कोई अंग्रेजी अनुवाद नहीं है। **'श्रद्धा'** में दो शब्द हैं—**सद्+धा**—सत्य को धारण करने की सामर्थ्य को **श्रद्धा** कहते हैं और सत्य को जानने की इच्छा **'जिज्ञासा'** है। जब यह किसी संत के पास जाता है, तो उसके लिए दो औपचारिकताएँ हैं—परम जिज्ञासा और परम श्रद्धा। जैसे कोई सच्चे हीरों की दुकान पर जाए तो उसकी जेब भारी होनी चाहिए, यदि कोई घसियारा हीरों की दुकान पर जायेगा तो हीरे का व्यापारी उसे हीरे कहाँ दिखायेगा! अतः सद्‌गुरु के दरबार में पहुँचने के लिए भी आपको जिज्ञासा व श्रद्धा रूपी धन से भरी जेब चाहिए। **एक दैवीय अधिनियम और बता दूँ, कि जब आपमें किसी भी तरह से और सब तरह से मात्र सत्य को जानने की प्रबल जिज्ञासा पैदा हो जाती है, आपमें सद्शिष्य उत्पन्न हो जाता है, तो 'सद्‌गुरु' वह निराकार सत्ता, साकार देह लेकर उस सद्जिज्ञासु के सम्मुख प्रकट हो जाता है।** बशर्ते उसमें सत्य को धारण करने की सामर्थ्य भी हो, क्योंकि सत्य को पाने के लिए आपको महा असमर्थ होना पड़ता है, खाक बनना पड़ता है। क्योंकि चौदह भुवनों के स्वामी सद्‌गुरु ने आपको इन कसौटियों पर खरे उतरने पर ही कुछ देना है। दिल-दिमाग खाली करके, आँखों में अश्रु लिए हुए **'त्राहि-माम्-त्राहि-माम्'** करते हुए जाइए, कि प्रभु! मैं जन्मों-जन्मान्तरों से भटका हुआ हूँ, मुझे रास्ता दिखाओ। सद्‌गुरु के पास खाली हाथ नहीं

जाना, क्योंकि जहाँ प्रेम होगा वहाँ कुछ भेंट अवश्य होगी, आप एक पुष्प ले जाइए और उनके चरणों में चढ़ा दीजिए। गुरु का भाव देखिए, वहाँ पर कुछ आपको सवाल-जवाब करने की आवश्यकता नहीं है। सद्‌गुरु त्रिकालदर्शी होता है, वह जान जाता है, कि यह क्यों आया है, कुछ पूछे तो बात करिए, नहीं तो मौन रहिए। **सद्‌गुरु में इतनी शक्ति है, कि वह मौन भाषा में आपकी समस्त जिज्ञासा पूरी कर सकता है।** सद्‌गुरु को कभी बांधिए मत, कि प्रभु ! मैं तीन दिन बाद फिर आऊँगा, आप केवल उनसे प्रार्थना करिए, कि प्रभु ! मुझे थोड़ा समय और दीजिए।

सद्‌गुरु कभी रास्ता नहीं बताता, मंज़िल बताता है। वह कहता है—**'उठ-जाग'** वह **'जाग-उठ'** नहीं कहता। आमतौर पर व्यावहारिक दृष्टि से हम पहले सोये हुए को जगाते हैं, फिर उठाते हैं। यह भी रहस्य है। क्योंकि हम जो तथाकथित उठे हुए होश-हवास में हैं, वास्तव में बेहोश ही हैं। **सद्‌गुरु उसे उठाता है फिर जगाता है, कि 'उठ जाग' तू वहीं है। तुम खुदा की औलाद हो, मंज़िल पर ही हो, जिस पर तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है।** सद्‌गुरु में यह सामर्थ्य होती है, कि वह उसी वक्त उसे मंज़िल दिखा देता है, कि तुम वहीं हो। सद्‌गुरु कभी ज्ञान नहीं देता, वह सद्‌शिष्य के भीतर के ज्ञान को जाग्रत कर देता है, क्योंकि आप सब ज्ञान-स्वरूप हैं। जिस इष्ट को आप नाम-रूप में साकार ईश्वर मान रहे थे, सद्‌गुरु हवन-अग्नि के माध्यम से उसके निराकार का बोध करवाता है। ईश्वर की जो साकार में छः विभूतियाँ हैं, सद्‌गुरु उन सबका दिग्दर्शन हवन-अग्नि के माध्यम से निराकार में भी करवा देता है। हवन-अग्नि की लालिमा लिए नृत्य करती लपटें उसका **सौन्दर्य**, उनकी प्रखरता व प्रचण्डता उसकी **शक्ति,** उनका प्रकाश उसका **ज्ञान**, उसमें पड़ने वाले विभिन्न द्रव्य आदि उसका **ऐश्वर्य**, उसमें उठने वाला धूना उसकी **ख्याति** तथा अन्ततः शेष बचने वाली भस्मी उसका **त्याग अथवा वैराग** है।

सद्‌गुरु, सद्‌शिष्य को हवन-अग्नि के सम्मुख यह रहस्य बताता है, कि तुमसे भूल देहाध्यास में नहीं हुई, बल्कि भूल ये हुई, कि तुम्हें पूर्णतः

देहाध्यास भी नहीं हुआ, वह भी अधूरा ही हुआ। देह की भी हमने केवल **पाँच-विभूतियों** में अध्यास किया। **हम अपने सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य तथा ख्याति से ही स्वयं को पहचानते रहे और इन्हीं शक्तियों को प्राप्त करने की चेष्टा करते हुए भागते रहे। लेकिन अति महत्त्वपूर्ण विभूति, भस्मी या वैराग्य को हम उपेक्षित व अनदेखा कर गए।** क्योंकि देह की भस्मी मरने के बाद ही नहीं बनती, सद्‌गुरु हवन-अग्नि को दिखाता है, कि देख! जिस समय अग्नि प्रज्ज्वलित करने की प्रक्रिया आरम्भ होती है, खाक या भस्मी उसी समय बननी आरम्भ हो जाती है। जब प्रचण्ड लपटें उठती हैं तो हम भूल जाते हैं, कि लपटों में जितनी प्रचण्डता, लालिमा व तेज है, उतनी ही शक्ति व तेज़ी से नीचे राख भी बन रही है। हम अपने धन-ऐश्वर्य, अपने पद, अपने विभिन्न बल, अपनी ख्याति व अपने ज्ञान की शक्तियों की प्रचण्डता में यह भूल जाते हैं, कि राख भी बन रही है, जो एकदम से नहीं बनती, अपितु वह इन समस्त शक्तियों के साथ क्रमशः बनती रहती है। जितनी तेज़ी से प्रकाश फैलता है, उतनी तेज़ी से राख बनती है, जितना धूना उठता है उतनी राख बनती है, जितने ऐश्वर्यमय पदार्थ डाले जाते हैं, उतनी राख बनती है। अपनी इस राख को मृत्यु के बाद जब देखोगे, तो तुम नहीं होगे, कोई तुम्हारी देह को मिट्‌टी में गाढ़ेगा, तो मिट्‌टी बनेगी, जलाएगा तो राख होगी। उस समय वह खाक व राख जड़ होगी, क्योंकि तब आप नहीं होंगे। **लपटें रहेंगी—उठेगीं और समाप्त हो जाएँगी, उनका लालिमामय सौन्दर्य खत्म हो जाएगा, उनका ज्ञान रूपी प्रकाश समाप्त हो जाएगा, उनकी दाहक शक्ति व तेज समाप्त हो जाएगा, ये ऐश्वर्यमय पदार्थ तथा ख्याति रूपी धूना भी समाप्त हो जाएगा, लेकिन भस्मी आदि से अन्त तक रहेगी।**

सद्‌शिष्य को सद्‌गुरु अवगत कराता है, कि इस भस्मी से ही लपटें बनी थीं—विभिन्न समिधाओं तथा विभिन्न पदार्थों से जो हवन-अग्नि में अर्पित किए जाते हैं, उनसे ही लपटें उठती हैं और यह सब मिट्‌टी से ही पैदा हुए हैं। **उनका मूल तत्त्व मिट्‌टी है। मिट्‌टी मिट्‌टी में मिल जाती है।** अतः

यह लपटें उस मूल तत्त्व भस्मी से प्रकट हुई हैं। **यह लपटें या सौन्दर्य,** यह प्रकाश या ज्ञान, यह विभिन्न पदार्थ या ऐश्वर्य, यह तेज या शक्ति, यह धूना या ख्याति, भस्मी अथवा मिट्टी से ही पैदा हुआ है। सद्गुरु बताता है, **कि तूने अपने मूल तत्त्व को तो पहचाना ही नहीं। जब तेरा सौन्दर्य दीप्त हो रहा था, तेरी शक्ति दहक रही थी, तेरा ज्ञान भभक रहा था, तेरा ऐश्वर्य चमक रहा था, तेरी ख्याति महक रही थी, तो तू अहं में पागल हो गया था। तेरी बुद्धि जड़ हो गई और तुमने अपनी भस्मी का मूल छोड़ दिया था।** क्योंकि अहं तभी होता है, जब आप में शक्ति को सम्भालने की शक्ति नहीं होती। यदि आपमें कभी अपने सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य या ख्याति का अहंकार हो जाए, तो मान लीजिए, कि आपमें उन शक्तियों को सम्भालने की शक्ति नहीं है। ये आपकी शक्तियाँ ही आपको खा जाती हैं, जैसेकि छः शास्त्रों व चारों वेदों के ज्ञाता रावण में इतनी अपार शक्ति थी, कि समस्त ग्रह-नक्षत्र व देवी-देवता उसके वश में थे। उसने अपने अहं की मूर्खता में महालक्ष्मी सीता को चुरा लिया, जो उसके सर्वनाश का कारण बनीं। अहं हमारी बुद्धि को जड़ व ईश्वर-विमुख उसी समय करता है, जब हम प्राप्त-शक्तियों को सम्भाल नहीं पाते। क्योंकि, हम अपनी उस खाक से स्वयं को नहीं पहचानते, जिससे समस्त विभूतियाँ प्रकट होती हैं। मृत्यु के बाद बनी वह भस्मी जड़ होगी। **भारतीय संस्कृति में मृत्यु के बाद भस्मी को गंगा जी में अर्पित किया जाता है, क्योंकि यह गंगा मैया परदेशी हैं, स्वर्ग से आईं हैं।** इस पृथ्वी-लोक में जो मानव, जीवन काल में अपनी भस्मी को नहीं देखते, उनकी जड़ भस्मी के माध्यम से उन्हें स्वर्ग में प्रवेश करने का अधिकार देने की क्षमता गंगा मैया में है।

जीते जी जिस दिन हम अपनी भस्मी, जिससे कि हमारा सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य व ख्याति आदि समस्त विभूतियों को प्रकट करने का हेतु **उस चेतन भस्मी से स्वयं को पहचानेंगे और उसे आत्मसात कर लेंगे, तो हमें इन विभूतियों के पीछे भागने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी, ये विभूतियाँ स्वयं हमारे चरणों में आ जाएँगी। आपको शिव के दर्शन**

शिवत्व का ज्ञान हो जाएगा, कि शिव विश्वनाथ क्यों हैं ! जो दिगम्बर धूने पर बैठा रहता है और मां जगदम्बा 108 स्वरूपों में सतत् उनकी सेवा में रत रहती हैं। जिस पर उस शिव की कृपा-दृष्टि हो जाती है वह शहंशाह बन जाता है, क्योंकि उसने महाशेष भस्मी को धारण किया हुआ है। जितनी ये पाँच विभूतियाँ हैं, वे आज हैं कल नहीं भी हो सकतीं, आपका सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, ख्याति आनी-जानी हैं। आज आपकी ख्याति चहुँ ओर फैली है, आपके नाम की दुंदुभि बज रही है। कल हो सकता है, आपकी बदनामी हो जाये। इसी प्रकार ज्ञान, सौन्दर्य, बल एवं ऐश्वर्य आदि भी नश्वर व क्षणभंगुर हैं। अतः सद्गुरु अपने सद्शिष्य को एक नग्न सत्य से अवगत कराता है, कि तुमने देहाध्यास में उस मूल तत्त्व को छोड़ दिया, **अब तू भस्मी से स्वयं को पहचान।** व्यावहारिक दृष्टि से आपको यह कहने की आवश्यकता नहीं है, कि आप भस्मी हैं। आप अपना नाम, पद आदि बताइए, लेकिन आपको तहे-दिल से यह ज्ञान हो, कि आप मात्र खाक हैं और वह आपका मूल तत्त्व है। जीते जी यदि आप उससे स्वयं को आत्मसात् कर लेंगे तो आपमें शिवत्व जाग्रत हो जाएगा और आप भी विश्वनाथ हो जाएँगे।

सद्शिष्य को सद्गुरु के श्रीमुख से सुनकर जब यह ज्ञान हो जाता है, कि मैं तो अपनी भस्मी को छोड़ चुका था, तो वह अपनी भस्मी अथवा वैराग के साथ आत्मसात् हो जाता है। तब उसे देहाध्यास रहता ही नहीं और उसे **भस्माध्यास** हो जाता है। **उस वक्त आपका जो ईश्वरीय मन आवृत हो गया था और मानवीय-मन बन गया था, वह अनावृत होकर फिर से ईश्वरीय-मन में ही समाहित हो जाता है और ईश्वरीय-मन बनकर अपना स्वरूप पुनः प्राप्त कर लेता है।** आपका अहं समाप्त हो जाता है और आपको सुख में, दुःख में, प्राप्तियों में, शक्तियों में कोई अभिमान नहीं रहता, क्योंकि अभिमान भस्मी को अनदेखा करने के कारण ही हुआ था। आपमें असीम शक्ति आ जाती है। इन कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों की शक्ति व सम्पदा को धारण करने की सामर्थ्य आ जाती है। **सांसारिक वस्तुओं में जितना राग था, वह वैराग में से होता हुआ ईश्वर के चरणों के अनुराग में**

परिवर्तित हो जाता है। सांसारिक आसक्ति, भक्ति में तथा वासनाएँ, उपासना में बदल जाती हैं। आप कुछ और हो जाते हैं, क्योंकि आपके मन का समर्पण हो जाता है। सद्‌गुरु के सान्निध्य में, उसके शब्दों में, उसके मौन में, उसकी दृष्टि में व उसके स्पर्श में इतनी शक्ति होती है, कि वह सद्शिष्य के परम ज्ञान को जाग्रत कर देता है और उसे मोक्ष के द्वार तक ले जाता है। **वह जिज्ञासु से मुमुक्षु बन जाता है।** आपको मोक्ष का अधिकार मिल जाता है। आपको जब भस्माध्यास हो जाता है, तो आपमें इतनी शक्ति आ जाती है, कि आप ईश्वर से आँख से आँख मिलाकर बात कर सकें। **आपकी राख, आपकी उस चेतन भस्मी को खुदा से वार्तालाप करने का हकूक मिल जाता है।** जब आप भस्मी को अन्तर्निहित कर लेंगे, दिल-दिमाग में आपको सौन्दर्य, ज्ञान, बल, ऐश्वर्य व ख्याति का तिल भर भी महात्म्य नहीं रहेगा, तब आप अपने इष्ट से कह सकेंगे, कि मैं तुमसे इश्क करता हूं। मुझे तुमसे बल, बुद्धि, विद्या, सामर्थ्य, शक्ति, ऐश्वर्य, ख्याति कुछ नहीं चाहिए, **मैं मात्र तुम्हें चाहता हूँ।** उस वक्त वह पारब्रह्म परमेश्वर, वह सच्चिदानंद, वह परमात्मा आपको अपना दर्शन दे देता है, आपको आत्मज्ञान दे देता है। अन्तिम ज्ञान आपको स्वयं परमात्मा करवाता है :—

''सो जानई जिस देहु जनाई,
जानत तुम्हीं तुम ही होई जाई।''

अन्तिम ज्ञान आपको ईश्वर तभी देगा, जब आप अपनी भस्मी से आत्मसात् हो जाएँगे, तो **उस समय देहाध्यास, भस्माध्यास के माध्यम से इष्टाध्यास में परिवर्तित हो जाएगा।** उस वक्त स्थिति यह होती है, कि आपको सर्वत्र अपना इष्ट ही नज़र आने लगता है और आप कह उठते हैं :—

''मैंने यार को जा बजा देखा,
कहीं बन्दा कहीं खुदा देखा
कहीं ज़ाहिर, कहीं छुपा देखा,
ज़र्रे-ज़र्रे में तेरे हुस्न का सरापा देखा।''

सत्य भी है :—

''इक ज्योति तों सब जग उपज्या, क्या चंगे क्या मंदे।''

उस महाशेष को जिस दिन आप धारण कर लेंगे, आप अपने इष्ट के बहुत नज़दीक पहुँच जाएँगे और यही जीवन का लक्ष्य है। अतः सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, ख्याति की चकाचौंध में अपने जीवन को बर्बाद मत करिए। अपने मूल तत्त्व भस्मी को आत्मसात् करिए तो आपमें मेधा, प्रज्ञा, विवेक व ऋतम्भरा जाग्रत हो जाएँगी, आप बूंद से सागर बन जाएँगे, आपके कदमों में इतनी शक्ति आ जाएगी, कि जिधर आप चलेंगे करोड़ों लोग उधर चलना प्रारम्भ कर देंगे :—

''चल पड़े जिधर दो पग डग में
चल पड़े कोटि पग उसी ओर
जिसके सिर पर निज धरा हाथ
उसके सिर रक्षक कोटि हाथ
जिस पर निज मस्तक झुका दिया
झुक गए उसी ओर कोटि माथ।''

महापुरुष अकेले नहीं होते। उनकी शारीरिक शक्ति उनकी बाजुओं से नहीं जानिए, उनमें वह शक्ति होती है, कि जिधर उनके कदम बढ़ते हैं, करोड़ों मानव बिना कहे उस ओर चलते हैं और जिसके सिर पर वे हाथ रखते हैं, करोड़ों हाथ उस सिर पर रक्षा करने के लिए तैयार हो जाते हैं। जहाँ वे सिर झुकाते हैं, करोड़ों मस्तक वहाँ झुक जाते हैं। यह तब होता है, जब **मानव मानस नहीं, ईश्वरीय मानस दैदीप्यमान** होता है, उद्दीप्त होता है और हमारा **देहाध्यास इष्टाध्यास** में परिवर्तित हो जाता है। आप भी सहस्त्र बाहू, सहस्त्र पग हो जाते हैं और आप में और खुदा में कोई अन्तर नहीं रह जाता। यह गुरुपूर्णिमा का प्रसाद मैंने अपने सद्गुरु की कृपा से आज आपको वितरित किया है।

'बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय।'

(6 जुलाई, 2003)

मन और बुद्धि

आज इष्ट-प्रेरणा एवं आप सब जिज्ञासुओं के अनुरोध से एक अत्यन्त गहन विषय आपके सम्मुख प्रस्तुत करूँगा, विषय है–**'मन और बुद्धि'।** मानव को ईश्वर ने तीन शक्तियों से सुसज्जित किया है–**शारीरिक या दैहिक, बौद्धिक और मानसिक।** इनमें से दैहिक शक्ति बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि ऐसे असंख्य पशु हैं जिनकी दैहिक शक्ति मानव से कई गुणा अधिक होती है। हिंसक अथवा अहिंसक पशुओं को मानव अपनी बौद्धिक शक्ति से वश में करके, अपने अधीन कर लेता है और उनसे विभिन्न कार्य लेता है। यद्यपि बौद्धिक शक्ति मूलतः ईश्वरीय ही है, लेकिन हम मानव अहंवश जब स्वयं कर्त्ता बनकर संसार के ठेकेदार बन जाते हैं, तो इसके ईश्वरत्व से हाथ धो बैठते हैं। तीसरी, जो मानसिक महाशक्ति है, वह ईश्वर ने मात्र मानव को ही दी है। शारीरिक शक्ति का स्त्रोत मांसपेशियाँ हैं और बौद्धिक शक्ति का मूल हमारा मस्तिष्क है, जो देखा जा सकता है। लेकिन मानसिक शक्ति स्वयं में अदृश्य है और इसका स्त्रोत भी जो स्वयं सच्चिदानंद ईश्वर है, दिखाई नहीं देता। यदि हम मानव-देह की संरचना का आध्यात्मिक और वैज्ञानिक विश्लेषण करें, तो ऐसा लगता है, जैसे वो परम पिता परमात्मा स्वयं मानव-देह धारण करके पृथ्वी पर खेलने के लिए उतरा हो।

उस सच्चिदानंद ने **एक मानव के मन को अपने सम्पूर्ण आनन्द से परिपूरित कर, अपनी सम्पूर्ण चेतनता उसकी बुद्धि में भर कर और अपने समस्त सत्य से उसके कर्मों को दैदीप्यमान करके धरा पर भेजा**

है। आज इष्ट-कृपा से प्रथम बार यह ईश्वरीय रहस्य आपके सम्मुख प्रस्तुत कर रहा हूँ। **सम्पूर्ण ईश्वरीय आनन्द से परिपूरित मन ही ईश्वरीय भक्ति का स्त्रोत है, उसकी चेतनता से आप्लावित बुद्धि ईश्वरीय ज्ञान की मूल है तथा ईश्वरीय सत्य ही मानव के कृत्यों के रूप में कार्यान्वित होते हैं।** तो ईश्वर ने जिस मानव को निर्मित किया था, **वह भक्तियोग, ज्ञानयोग और कर्मयोग की त्रिवेणी का संगम था एवं स्वयं में मानव-देह तीर्थ प्रयागराज थी।** लेकिन जैसे ही हमारी बुद्धि का तथाकथित विकास हुआ, दुर्भाग्यवश व सत्संग के अभाववश हमने ईश्वर-प्रदत्त इस बौद्धिक शक्ति की क्षमताओं को 'आई-क्यू' (I.Q.) आदि मानव-निर्मित पैमानों से नापना शुरू कर दिया। उन तथाकथित क्षमताओं की सीमाओं में ही अपना कार्यक्षेत्र चुनना तथा कैरियर बनाना आरम्भ कर दिया। यह मूर्खता ईश्वर से सहन नहीं हुई और परिणामस्वरूप बहुत बड़ी-बड़ी घटनाएँ घट गईं।

पहली घटना यह घटी कि जो मन सम्पूर्ण ईश्वरीय आनन्द से ओत-प्रोत था, वह आच्छादित व आवृत हो गया। मानव का आनन्द लुप्त-प्रायः हो गया। वह स्थिर, शान्त, सशक्त ईश्वरीय मन आच्छाादित होकर अस्थिर, अशान्त व अशक्त मानवीय मन बन गया। जिस परम आनन्दमय ईश्वरीय मन से मानव को ईश्वर से सीधे सम्पर्क करने का अधिकार मिला हुआ था, वह हक हमने खो दिया। दूसरी घटना यह हुई, कि ईश्वरीय-बुद्धि की चार विधाएँ—**प्रज्ञा, मेधा, विवेक एवं ऋतम्भरा** लुप्त हो गईं। बुद्धि मात्र **'आई-क्यू'** तक ही सीमित रह गई। 'आई-क्यू' में सीमित बुद्धि मानव को मात्र ईश्वर की वाह-वाह करने के लिए दी गई थी। उससे इसने जीवन को चलाने का ठेका ले लिया तो वह आई-क्यू वाली सीमित बुद्धि भी इसके स्वयं के काम नहीं आई। इस प्रकार ईश्वरीय मन ने अपना ईश्वरत्व खो दिया और बुद्धि की चारों दिव्य विधाएँ लुप्त हो गईं तथा इसी के प्रभाव-स्वरूप जो अथाह दैहिक शक्तियाँ थीं, वे भी अति सीमित व संकुचित हो गईं। हमारे भीतर असंख्य व असीम शक्तियाँ हैं जो सुषुप्त रहती हैं, जिसके जिम्मेदार हम स्वयं हैं, क्योंकि हम जानना नहीं चाहते कि

मानव-जीवन प्रभु ने क्यों दिया है।

आज का विषय **'मन और बुद्धि'** पर है। **'कर्म'** पर आज तक अनेक आयामों से विभिन्न बहुमुखी विवेचनाएँ हुई हैं। **कर्म वस्तुतः व्यक्ति के मन और बुद्धि के पारस्परिक सम्बन्धों का बाह्य प्रकटीकरण है।** आज मैं इष्ट-कृपा से प्रथम बार **'चरित्र'** की परिभाषा आपके सम्मुख प्रस्तुत करूँगा।

''किसी मानव की देह द्वारा किया गया कोई भी कृत्य, उसके द्वारा दिया गया वक्तव्य, उसकी वंशानुगत अथवा प्राप्त की हुई प्रतिभाओं जैसे संगीत, नृत्य, चित्रकला, स्थापत्य कला, साहित्य-कला आदि किसी भी कला के माध्यम से किया गया प्रदर्शन, उसकी मन और बुद्धि के पारस्परिक सम्बन्धों का बाह्य प्रकटीकरण है, जो उसका कर्म है। इनकी पृष्ठभूमि में उसकी नीयत ही उसका चरित्र है, जिसका निर्णायक वह स्वयं ही है। इस समस्त आयोजन को कोई अन्य व्यक्ति जिस नीयत से प्रतिग्रहण करता है, वह उस व्यक्ति का चरित्र है, अर्थात् जिसने उस कृत्य को देखा-परखा तथा उसकी प्रशंसा अथवा आलोचना करके जिस रूप में टीका-टिप्पणी की—यह उस व्यक्ति का चरित्र है।'' अपने चरित्र का सबसे उत्तम निर्णायक व्यक्ति स्वयं ही है।

किसी परिवार का जीवन-स्तर उसके घर में रखे मूल्यवान सामान, गाड़ियों, खूबसूरत बंगलों आदि से मत जाँचिए, बल्कि उसमें वास करने वालों की जीवन-शैली से परखिए। यदि वह सद्‌गृहस्थ है तो उस परिवार की जीवन-शैली पूर्णतः पति-पत्नी के पारस्परिक सामंजस्य पर निर्भर होगी। मानव-देह में है—**'मन और बुद्धि'** और परिवार में है— **'पति-पत्नी'**—उनके पारस्परिक सम्बन्धों का बाह्य प्रकटीकरण उनकी जीवन-शैली है। यही उनके जीवन-स्तर की वास्तविक कसौटी है तथा उस परिवार का चरित्र है।

'मन और बुद्धि' का पारस्परिक सम्बन्ध एक अलग आयोजऩ है और उनका समन्वय अथवा सामंजस्य सर्वथा पृथक आयाम है। महत्त्वपूर्ण यह है कि मन-बुद्धि में पारस्परिक **'समन्वय'** है या **'क्लैश'** है। परिवार में पति-पत्नी में **'क्लैश'** ही पारिवारिक **क्लेश** का कारण होता है। यह तब

होता है जब मन व बुद्धि में परस्पर विरोध हो जाता है। मानव-मन और मानव बुद्धि में परस्पर समन्वय तथा सामंजस्य कैसे हो? इसके लिए एक ही सूत्र है, वह है—**'समर्पण'।** मैंने अपने **'अद्य-दिवसम्'** शीर्षक प्रवचन में नित्य सुबह उठकर देव-दरबार में अपनी देह, मन व बुद्धि के समर्पण की चर्चा सविस्तार की थी। रोज सुबह उठकर प्रभु से रोते हुए प्रार्थना करें, **''कि प्रभु! यह देह, ये शक्तियाँ, मन-बुद्धि मेरी नहीं हैं, मुझे आपने दी हैं। इनका सदुपयोग करना मैं नहीं जानता। इसलिए इन्हें मैं आपकी कृपा से, आपकी इच्छा से व आपकी शक्ति से, तहे-दिल, मन व रूह से आपके चरणों में समर्पित करता हूँ। जब-जब मैंने इनका प्रयोग किया है, मैं फँसा हूँ, इसलिए मुझे अपनी गोद में बिठा लीजिए और आप जैसा चाहते हैं, मेरा जीवन चलाइए।''** उसी समय प्रभु आपको बुद्धि की चारों दिव्य विधाओं से सुसज्जित कर देंगे और आपका मन ईश्वरीय मन बन जाएगा। उस दिन के सारे कार्यक्रम प्रभु ही बनाएँगे, आपको कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है।

ईश्वरीय मन में अथाह व असीम शक्ति है। माँ के गर्भ में नौ महीने सात दिन में तैयार यह देह बनी बनाई मिलती है। वह सारी संरचना हमारी बुद्धि से नहीं होती। कोई तो मन है जो इसका डिज़ाइन बना रहा है। वह ईश्वरीय-मन न केवल आपकी देह की संरचना करता है, बल्कि आपके माता-पिता, दोस्तों-दुश्मनों, घर-परिवार, धन-सम्पदा, शिक्षा, पद, नौकरी, व्यवसाय, विवाह-शादी, सन्तान, मृत्यु, क्रिया-कर्म आदि आपके समस्त सूक्ष्म-मण्डल की भी रचना करता है। हम मात्र अपनी स्थूल-देह से स्वयं को पहचानते हैं। ईश्वर ने मात्र आपकी यह स्थूल-देह ही नहीं बनाई है, बल्कि आपकी देह के साथ आपके समस्त सूक्ष्म-जगत का निर्माता भी वही है, जो आपकी कारण-देह है। जब हम बुद्धि के अहं से अपने परम दिव्य ईश्वरीय-मन को आच्छादित कर देते हैं, तो हमारे समस्त सूक्ष्म-मण्डल का अधिकार हमसे छिन जाता है, क्योंकि **आनन्दपूर्वक भोग का अधिकार आपको ईश्वरीय-मन ही देगा।** आपकी बुद्धि आपको केवल प्राप्ति का

अधिकार दे सकती है। ईश्वर-चिन्तन, मनन व कृपा द्वारा यदि आपका ईश्वरीय-मन जाग्रत हो जाता है, तो उसमें इतना अधिकार होता है कि आपको प्राप्ति की आवश्यकता ही नहीं रहती। वस्तुएँ स्वयं आपके चरणों में आ जाती हैं।

हमारे मनीषियों ने ईश्वर-चिन्तन, मनन, भजन, प्राणायाम, जप, तप, स्वाध्याय, दान, पुण्य आदि पर बल दिया है, जिससे आपको समस्त ईश्वरीय विभूतियों को आनन्दपूर्वक भोगने का अधिकार मिल जाता है। राजा, योगी दोनों का अधिकार अपार व असीम होता है, उनमें अथाह शक्ति होती है। इसीलिए योगी को **'स्वामी'** कहा जाता है। **वस्तुएँ प्राप्त करना आपके सामर्थ्य का द्योतक है, लेकिन जब आपमें उन प्राप्तियों को त्यागने की शक्ति आ जाएगी तो आपको स्वामित्व मिल जाएगा।** हमारे सन्तों-मनीषियों ने इसका एक ही उपाय बताया है—**'पुरुषार्थ—पुरुष+ अर्थ'। मेरे पुरुष यानि मेरी चेतन सत्ता का अर्थ क्या है?** मैं बार-बार क्यों पैदा हो रहा हूँ, मुझे बार-बार यह मानव-देह क्यों मिल रही है? **जब यह जानने की इच्छा उत्पन्न होगी तो यह साधारण इच्छा नहीं है। क्योंकि एकमात्र परम सत्य उस ईश्वर के बारे में जानने की इच्छा मात्र ईश्वर-कृपा से ही उत्पन्न होती है।** आपकी उस इच्छा पर आपके इष्ट की स्वीकृति व अनुमोदन आवश्यक है, नहीं तो वह इच्छा स्वयं में कोई अहमियत नहीं रखती। अस्थाई रूप से वह इच्छा किसी में भी पैदा हो जाती है। जैसेकि शमशान में जाने पर थोड़ी देर के लिए प्रत्येक व्यक्ति के मन में वैराग उत्पन्न हो ही जाता है। तो यदि ईश्वर के बारे में या ईश्वर को जानने की इच्छा आप में उत्पन्न हुई है, तो आप उस इच्छा को पुनः-पुनः अपने इष्ट के सम्मुख रखिए, कि प्रभु! यह इच्छा पूर्ण करो। तो एक समय आपको मालूम हो जाएगा, कि वह इच्छा आपकी नहीं बल्कि ईश्वर की थी।

ईश्वर को जानने की इच्छा मात्र ईश्वर-इच्छा से ही उत्पन्न होती है। आप जब ईश्वर को जानने की अपनी इच्छा का इष्ट के चरणों में समर्पण कर देंगे, तो वह इच्छा **'जिज्ञासा'** बन जायेगी। उस जिज्ञासा को ईश्वर जब

भली-भाँति परख लेते हैं कि यह क्षणिक तो नहीं है, तो आपको **श्रद्धा यानि सत्य को धारण करने की क्षमता** से परिपूरित कर देते हैं। उसका प्रमाण यह है कि **वहाँ ईश्वर-कृपा से एक घटना घटित होती है, कि आपको संत मिल जाता है।** दैवीय अधिनियम के तहत संत को प्रकट होना पड़ता है। ईश्वर उस जिज्ञासु को श्रद्धा से परिपूरित कर संत के पास भेज देते हैं। क्योंकि वह ईश्वर के रहस्य को जानना चाहता है। इसलिए वह संत सब प्रकार से और किसी भी प्रकार से उसे **उसके साकार से उसके निराकार में ले जाता है। वह उसे समाधिस्थ करता है, उससे यज्ञ-हवन करवाता है।** सद्‌गुरु साकार ईश्वर की छः विभूतियों का दिग्दर्शन यज्ञ-अग्नि के निराकार में करवाता है। उसे चेतन भस्मी रूपी परम सत्य से अवगत कराता हुआ कहता है, कि वह अब तक अपनी जिन पाँच विभूतियों—**सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य व ख्याति** के पीछे लालायित होकर भाग रहा था, उन विभूतियों के मूल, अपनी चेतन भस्मी को आत्मसात् करे, ताकि उसको उसके स्वयं के निराकार की अनुभूति हो जाये। तभी वह ईश्वर के ईश्वरत्व व उस निराकार सत्ता की अनुभूति का अधिकारी होगा। जब वह श्रद्धा से परिपूरित जिज्ञासु इष्ट-कृपा से अपने निराकार की अनुभूति करने में सफल हो जाता है, तो पुनः उसका मानवीय मन ईश्वरीय मन में परिवर्तित हो जाता है और उसकी बुद्धि मेधा, विवेक, प्रज्ञा तथा ऋतम्भरा दिव्य-विधाओं से युक्त हो ईश्वरीय बुद्धि बन जाती है। **यह मन-बुद्धि का समन्वय व सामंजस्य उसे ईश्वर के अन्तिम सत्य को धारण करने की क्षमता व सामर्थ्य देता है। लेकिन उस समय वह जिज्ञासु नहीं रहता, वह मुमुक्षु बन जाता है।** फिर स्वयं इष्ट ही उसे अपने परम रहस्यों से अवगत कराता है :—

''सोइ जानइ जेहि देहु जनाई,
जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।''

'बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय'

(20 जुलाई 2003)

देहाधिकार

आज इष्ट-आदेश एवं आप सब जिज्ञासुओं की परम-प्रेरणा से आपके सम्मुख एक नितान्त नवीन एवं दुर्लभ विषय रखूँगा। मैं इस व्यास-पीठ से कई बार और बार-बार **'देहाध्यास', 'देहाधिपत्य' व 'देहाध्ययन'** के विषय में वर्णन करता रहा हूँ, आज प्रभु-कृपा से **'देहाधिकार'** के विषय में वर्णन करूँगा।

साकार व निराकार दोनों में छः परम दिव्य विभूतियों से विभूषित, उस परमपिता, सच्चिदानंद परमात्मा ने केवल मानव मात्र को ही अपनी समस्त विभूतियों से सुसज्जित करके, अपनी आध्यात्मिक व मानसिक शक्ति भी प्रदान की है। उस कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड-नायक तथा सम्पूर्ण महाब्रह्माण्डों के निर्माता, पालनकर्त्ता और संहारकर्त्ता ने मूलतः एकमात्र मानव की संरचना इतनी कुशलता से की है, कि अपना सम्पूर्ण आनन्द उसके मन में, अपनी सम्पूर्ण चेतनता उसकी बुद्धि में और अपना सम्पूर्ण सत्य उसके सद्कर्मों में उतारा है। बशर्ते मानव-मन ईश्वरीय-मन हो तथा उसकी बुद्धि—**प्रज्ञा, विवेक, ऋतम्भरा व मेधा से युक्त हो।** ऐसे महामानव के मन और बुद्धि के समन्वय से जो भी कृत्य होंगे वे सद्कृत्य ही होंगे, चाहे वे कैसे भी हों। ईश्वरीय आनन्द से ओतप्रोत मन **'भक्तियोग',** उसकी चेतनता से अनुप्राणित बुद्धि **'ज्ञानयोग'** और ईश्वरीय सत्य से दैदीप्यमान कृत्य **'कर्मयोग'** की त्रिवेणी का संगम यह मानव-देह तीर्थराज **'प्रयाग'** है व स्वयं में पूजनीय है। सारांश में प्रभु ने मूलतः प्रत्येक मानव को सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, ख्याति व त्याग रूप अपनी छः परम दिव्य विभूतियों से

विभूषित करके, दैहिक, बौद्धिक व मानसिक तीन शक्तियों से सुसज्जित करके, **'भक्तियोग, ज्ञानयोग व कर्मयोग'** की पावन **'त्रिवेणी'** से आप्लावित करके तथा अपने सत्य, चेतन व आनन्द का अविरल व अकाट्य संगम बनाकर निर्मित किया है, कहीं कोई कमी नहीं छोड़ी है। अतः जो ईश्वर है, वही मानव है। परन्तु बुद्धि के तथाकथित विकास के साथ ही मानव में मात्र **'आई क्यू'** वाली एक **अहं बुद्धि** प्रकट हो गई। इसके वशीभूत होकर यह मानव इतना आत्म-केन्द्रित हो गया, कि स्वयं को मात्र अपनी स्थूल-देह से पहचानने लगा, ईश्वर-प्रदत्त इस चमत्कारिक परम पावन देह पर अनधिकृत कब्ज़ा करके, प्रभु-कृपा से प्राप्त समस्त शक्तियों को अपना व अपने परिवार का पालन-पोषण करने में ही झोंकने लगा। इसी के साथ मानव ईश्वरीय सत्, चेतन व आनन्द तीनों से वंचित होकर प्राप्तियों के पीछे भागता और असंतुष्ट रहता हुआ, आसक्तियों को छोड़कर पुनः-पुनः जन्म-जन्मान्तरों में भटकने लगा।

प्रभु ने मानव को तीन देह दी थीं—**स्थूल, सूक्ष्म और कारण।** जिस नाम-रूप की देह से हम स्वयं को पहचानते हैं, वह स्थूल-देह तो सागर में बूंद की तरह से है। बुद्धि के अहंवश हम स्वयं को भूल गए और हमने अपने उत्कृष्ट, विलक्षण व गरिमामय विशाल अस्तित्व को संकुचित करके मात्र अपनी स्थूल-देह में सीमित कर दिया। जबकि प्रभु ने हमारा विस्तृत सूक्ष्म-मण्डल भी हमें दिया है, जो हमारी स्थूल-देह के नाम-रूप की पहचान पर आधारित है। तीसरी है, हमारी **'कारण-देह'** जो स्वयं ईश्वर है और हमारी स्थूल व उस पर आधारित समस्त सूक्ष्म-देह का **निर्माता, पालनकर्त्ता व संहारकर्त्ता है।** इस प्रकार हमारी **स्थूल, सूक्ष्म** और **कारण** तीन देह हैं। हमने **'आई क्यू'** वाली अहं बुद्धिवश मात्र स्थूल-देह पर अनधिकृत कब्ज़ा कर लिया। हमारे **'कारण'** जिस ईश्वर ने हमारी स्थूल व सूक्ष्म-देह का निर्माण किया था, उसे भूलकर हमने स्वयं कारण उत्पन्न करना प्रारम्भ कर दिया। इस सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड का महाकारण ईश्वर ही है। जब हमने अपनी बुद्धि के अहंवश अकारण ही अपने कृत्यों का स्वयं को कारण मान

लिया, तो ईश्वर से विमुख होकर कर्त्ता भी हम स्वयं बने और कर्म से पहले की वृत्ति भी हमारी थी। जिसके तहत कर्म किया गया, लेकिन उस कर्म के द्वारा जो कुछ भी हमने प्राप्त किया या खोया, उसके बाद की वृत्ति पर हमारा कुछ भी वश न था। वह वृत्ति ईश्वर ने निर्धारित की, जो बीज बनकर हमारे मानव-मन में उगी और उसी से जड़-चेतन की ग्रन्थि के रूप में हमारा **प्रारब्ध** बना। उस प्रारब्धवश हमने जो कुछ भी प्राप्त किया, उससे हम असंतुष्ट ही रहे क्योंकि उसमें जड़ता थी। यदि उसमें जड़ता न होती, तो हमें हर प्राप्ति और हर खोने का आनन्द ही आता। इस विषय का विस्तृत वर्णन मैंने **'कारणं-कारणानाम्'** शीर्षक प्रवचन में किया है।

बुद्धि के विकसित होते ही हम शान्त व चुप नहीं बैठ सकते। जब भी हम किसी से मिलते हैं तो यही चर्चा चलती है, कि आप क्या करते हैं? अरे! कुछ करना आवश्यक है क्या? कि अच्छा, आप बेकार हैं! हम किसी के इस वक्तव्य का बुरा भी नहीं मानते। पूछो, कि आप क्या करते हैं और अब तक क्या कर लिया? सबसे पूछते हैं कि लड़का जवान हो गया है क्या करता है? अरे! भई लड़का साँस ले रहा है, प्रकृति का आनन्द ले रहा है उसे लेने दो, आप करो। पर किसी को खाली देखना हमें अच्छा नहीं लगता। हम कुछ न कुछ करना चाहते हैं परन्तु अधिकतर हम वे कार्य करते रहते हैं, जिनके करने की कोई आवश्यकता नहीं थी और जो स्वतः ही होने थे। जैसेकि पैदा होते ही आपको आपकी स्थूल-देह सहित माँ-बाप, भाई-बहन, घर-परिवार, देश-समाज, धर्म-जाति सब स्वतः बने बनाए मिले, आपको कुछ करना नहीं पड़ा।

आप कभी अपनी **'आई क्यू'** वाली बुद्धि से ही विचार करिए, कि आपको पैदा करने से बहुत पहले ईश्वर ने आपके माँ-बाप को बनाकर उनका कैरियर बनाया। उचित समय पर उन्हें मिलवाया, वह ग्रह-नक्षत्र व महीना बनाया, जिसमें आपका गर्भाधान हुआ। वह देश-काल व समय बनाया, जिसमें आपको पैदा होना था। शिक्षित नर्सों व डाक्टरों से युक्त वह नर्सिंग होम बनवाया, जिसमें आपकी डिलीवरी हुई। महत्त्वपूर्ण यह है, कि

वह सब आपके लिए ईश्वर ने पहले से ही बनाया हुआ था। पृथ्वी, जल, वायु, आकाश व अग्नि से निर्मित यह ब्रह्माण्ड प्रभु ने आपके लिए ही बनाया था। आत्म-केन्द्रित होकर आप विचार करिए, कि आपको इस धरा पर अवतरित करने के लिए प्रभु ने क्या-क्या प्रबन्ध किए। आपने जहाँ शिक्षा प्राप्त करनी थी, वह शिक्षण-संस्थान प्रभु ने वर्षों पहले से आपके लिए बना कर रखा था। आप यदि पैदा हुए हैं, तो मरेंगे भी। कोई व्यक्ति अपने लिए शमशान स्वयं नहीं बनाता। आपको जिसने कंधा देना है, अग्नि देनी है, आपकी भस्मी को गंगा या यमुना में प्रवाहित करना है, सब कुछ प्रभु ने आपके लिए तैयार करके रखा है। आप अपनी उत्कृष्ट बुद्धि से विचार तो करिए, कि प्रभु ने फिर आपको दैहिक, बौद्धिक व मानसिक शक्तियों से युक्त, अपनी छः परम दिव्य विभूतियों से विभूषित, सत्य, चेतन व आनन्द से परिपूरित यह देह क्यों दी है?

ईश्वर ने इस मानव-देह को अपने प्रत्यक्ष प्रतिनिधि पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश रूपी पंच-महाभूतों से निर्मित किया है। पाँच विशेष रसों से नियन्त्रित, पंच-प्राणों द्वारा संचालित और पंच-तन्त्रों से युक्त यह मानव-देह स्वयं में पूजनीय है। इसमें पृथ्वी के सब तत्त्व, धातुएँ-अधातुएँ, आकाश व सौर-मण्डल के समस्त ग्रह-नक्षत्र, जल के समस्त तत्त्व और वायु की समस्त गैसें विद्यमान हैं। ऐसी विलक्षण व उत्कृष्ट चमत्कारिक मानव-देह का प्रयोग जब हम देह के लिए ही करते हैं, तो उसे जानकर हमें ग्लानि होनी चाहिए। जिस प्रकार कोई किसी को बी. एम. डब्ल्यू., मर्सिडीज़ या रॉल्स-राय गाड़ी भेंट करे और उससे वह ईंट-गारा ढोने लगे। यही नहीं, उस गाड़ी के कल-पुर्ज़ों व विशेष कार्य-प्रणालियों की आलोचना भी करने लगे तथा उसकी सुन्दरता को विकृत घोषित कर दे। जैसाकि हम देह का प्रयोग रोज़ी-रोटी और पेट भरने के लिए करते हैं और देह को साथ-साथ तिरस्कृत भी करते हैं कि यह काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहं आदि विकारों से ग्रसित है, ईर्ष्या, द्वेष, वैर आदि भावों से दूषित है। यह मानव-देह व उसके बनाने वाले दोनों का अपमान है। विचार करिए, यदि

कोई पेन्टर अपनी क्षमताओं के अनुसार उत्कृष्टतम रचना बनाता है, तो उसमें वह गन्दे छींटे क्यों डालेगा! उसी प्रकार **ईश्वर ने इतनी उत्कृष्टतम रचना 'मानव-देह' अपनी सारी कुशलता और कारीगरी से बनायी, तो वह इसमें अवगुण और विकार क्यों भरेगा!** प्रभु इसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि विकारों से विकृत क्यों करेंगे?

आध्यात्मिक जीवन जीना चाहते हैं, तो आप ये तुच्छ विचार और नकारात्मक-भाव छोड़ दीजिए। आप सब ईश्वरतुल्य हैं। अपनी विचार-धारा आज बदल दीजिए, क्योंकि यह देह युगों-युगों से इस अपमान को सह रही है। आपकी साँस रुक जाएगी यह सुनकर कि कितने समय से यह देह इस अपमान को सह रही है। 17 लाख 28 हज़ार वर्ष का सतयुग है, 12 लाख 96 हज़ार वर्ष का त्रेता है, 8 लाख 64 हज़ार वर्ष का द्वापर है और 4 लाख 32 हज़ार वर्ष का कलिकाल है। यह भारतीय गणना है। **सुन लीजिए श्रद्धा से, कभी न कभी ये बीज उगेंगे, क्योंकि व्यास-गद्दी से निःसृत शब्द 'ब्रह्म' होते हैं, यहाँ से कही गई कोई भी बात व्यर्थ नहीं जाती।** कुल मिलाकर 43 लाख 20 हज़ार वर्ष हुए, इस चतुर्युगी को यदि एक हज़ार से गुणा करें, तो बनता है **'एक कल्प'** जो ब्रह्मा जी का एक दिन है और उतनी ही बड़ी ब्रह्मा जी की एक रात्रि है, जिसे प्रलय कहा है, जिसमें ब्रह्मा जी विश्राम करते हैं। ऐसे 100 दिनों की ब्रह्मा जी की आयु है। **जितनी ब्रह्मा जी की आयु है, उतनी ही हमारी आयु है।** तो हम भी वहीं से चले हैं, बार-बार हम जन्मते-मरते हुए युग-युगान्तरों के इस काल-चक्र में भटकते रहते हैं और हर जन्म में इस देह का अपमान करते हैं। ईश्वर को भूल जाइए, पहले अपनी देह को जानिए :–

''जिस्म और रूह का रिश्ता भी क्या रिश्ता है,
उम्र भर साथ रहे मगर तआरुफ न हुआ।''

पहले अपनी देह पर अधिकार करिए। इससे अपनी पहचान करिए। ऊँची छलाँग मत मारिए, उस परम सत्य ईश्वर से पहले अपनी देह और उस पर आधारित जगत को जानिए। स्वयं के साथ बैठने की आदत डालिए।

जिस असत्य को सत्य समझ कर आप भाग रहे हैं, उसका सत्य ही आपको सत्य-स्वरूप का ज्ञान करायेगा। आज मानव की भटकन का एकमात्र कारण यही है, कि हम अपनी देह का सामना नहीं कर सकते। कोई समाजसेवी बनकर भाग रहा है, कोई देश का नेता बनकर भाग रहा है और वे कर क्या रहे हैं? आप सब जानते हैं। लोग जल्दी-जल्दी घर बदलते हैं, नौकरी व व्यवसाय बदलते हैं, पति व पत्नी बदलते हैं, लेकिन अपनी देह नहीं बदल सकते। आज यह व्यास-गद्दी आपको बताएगी, कि आप अपनी सम्पूर्ण देह पर अधिकार कैसे करें? विचार करिए, आपका प्रत्येक वर्तमान किसी न किसी भविष्य के लिए है। अपना, अपने बच्चों का या सगे-सम्बन्धियों का, समाज का, देश या विश्व का। आपकी प्रत्येक गतिविधि मात्र किसी न किसी तुच्छ भविष्य के लिए होती है। यदि ईश्वर-कृपा से वह निर्धारित लक्ष्य या भविष्य प्राप्त हो भी जाए, तो उसके बाद कोई दूसरा भविष्य खड़ा हो जाता है। इस प्रकार जीवन समाप्त हो जाता है और कोई न कोई भविष्य अधूरा रह जाता है, जिसे कहा है–**'आसक्ति'। वह आसक्ति पुनर्जन्म में ले जाती है, जहाँ सब कुछ शून्य से प्रारम्भ करना पड़ता है।** युग-युगान्तरों यही क्रम चलता आ रहा है। लेकिन यहाँ एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है, कि आध्यात्मिक जगत में यह सत्य नहीं है। आपका जप, तप, ध्यान, पूजा, उपासना, साधना, समाधि, प्राणायाम व स्वाध्याय आदि पुरुषार्थ कर्मों के फलस्वरूप हुई प्राप्तियाँ अगले जन्म में न केवल वहीं से प्रारम्भ होंगी, बल्कि आपको संशोधित और परिवर्धित होकर मिलेंगी। **अतः जीवन भौतिक निरन्तरता नहीं है, आध्यात्मिक निरन्तरता है।**

प्रत्येक मानव का एक निश्चित परिलक्षित भविष्य है, वह है **'खाक, भस्मी'**, मृत्यु नहीं। क्योंकि **मृतक-देह का भी एक भविष्य होता है, कि उसे गाड़ा जाता है या जलाया जाता है। गाड़ेंगे तो मिट्टी बनती है और जलाएँगे तो खाक बनेगी, दोनों एक ही बात है।** मानव-जीवन का यह सारा खेल डेढ़-दो किलो विशुद्ध भस्मी का खेल है। **यदि आप इस भस्मी के भस्मत्व को सिद्ध कर लेंगे, तो आपको भगवान शंकर के शिवत्व का**

ज्ञान हो जायेगा। ईश्वर ने प्रत्येक मानव के साथ एक सुन्दरता रखी है, कि प्रत्येक मानव-देह का एक निश्चित परिलक्षित भविष्य होता है **'भस्मी', 'राख' या 'मिट्टी'। हमारे छोटे-छोटे भविष्य पूरे हों न हों, लेकिन खाक अवश्य बनेगी। वह एक ऐसा निश्चित भविष्य है जहाँ पर भविष्य समाप्त हो जाता है।** हमारी देह का एक भौतिक अन्तिम सत्य है **'भस्मी'।** जब हमारी देह भस्मित होगी तब हम नहीं होंगे, इसलिए उस भस्मी को जड़ कहा है। उस भविष्य को प्रभु ने इतना छिपा हुआ क्यों रखा? उसकी तो प्रत्येक विधा आनन्दमय है। अरे! उस भविष्य को कभी अपने किसी भी वर्तमान में उतार कर देखिए। यदि कोई पूछे, कि यह कैसे करें? हम अपने अन्य भविष्य और निर्धारित लक्ष्यों के भी तो दिवास्वप्न देखते हैं। **दस** रुपये की लाटरी का टिकट लेकर हर व्यक्ति करोड़पति बनने की कल्पना करने लगता है और बिना लाटरी निकले ही आनन्द लेने लगता है। हमें ईश्वर ने बड़ी-बड़ी कल्पनाएँ करने की विशेष प्रतिभा दी है। अरे! लाटरी तो किसी एक की ही निकलनी है परन्तु यह भविष्य तो प्रत्येक के सम्मुख अवश्य आएगा। तो उसे अपने वर्तमान में आत्मसात् करिए।

आपका वर्तमान परिकल्पनाओं पर आधारित है, कि 'यह हो जाएगा', 'वहाँ जाएँगे', 'लाटरी निकलेगी'। **'गा, गे, गी'** में आप अपने वर्तमान का भी आनन्द नहीं ले पाते और भागते रहते हैं। कभी आप अपने किसी चेतन वर्तमान के सम्मुख अपनी इस भस्मी रूप भविष्य को खड़ा कर दीजिए तो दोनों की टक्कर हो जाएगी, क्योंकि वर्तमान तो भाग रहा है। हमारी देह भस्मी जब बनेगी तब हम नहीं होंगे, इसलिए वह भस्मी जड़ है। इस प्रकार जड़ व चेतन की टक्कर में जीवन का सत्य उद्घाटित हो जाएगा। क्योंकि हमारी भस्मी का कोई भविष्य नहीं है। किसी भस्मी से बात करिए कि आप यहाँ बेकार क्यों पड़ी हैं, क्या आप चुनाव जीतेंगी, आज आप अपने कार्यालय क्यों नहीं गईं? तो ऐसा लगेगा, कि भस्मी आपका मज़ाक उड़ा रही है, क्योंकि वह स्वयं में कर्मातीत, कर्त्तव्यातीत, धर्मातीत, कालातीत, देशातीत, लिंगातीत, त्रिगुणातीत, सम्बन्धातीत है। भस्मी का न कोई देश है,

न कोई लिंग, न कोई धर्म है न कोई कर्म, लेकिन आपका है। आप देश-काल से बँधे हैं, कर्मों, धर्मों, कर्त्तव्यों से बँधे हैं, लेकिन आपकी अपनी भस्मी इन सबसे परे है। **आपको गर्व होना चाहिये, कि आपकी देह का एक भौतिक अंश ऐसा है, जो न पापी है न पुण्यी है, उसका न रंग है न रूप है, न आकार है, न देश है, न काल है, न कर्म है, न धर्म है, न कर्त्तव्य है, न नाम है, न अच्छाई है, न बुराई है। आपकी भस्मी में देखिए कितने गुण हैं।**

हम जब विश्राम करना चाहते हैं, तो सोते हैं। तब अपने नाम-रूप से परे चले जाते हैं और परम विश्राम की स्थिति को प्राप्त होते हैं। सोए हुए व्यक्ति का स्वयं में कोई नाम-रूप नहीं होता। निद्रा से उठ कर हम कहते हैं, कि मैंने नींद का बहुत आनन्द लिया। पर जिस वक्त वह आनन्द आ रहा था उस वक्त आप सो रहे थे, आपको अपनी अनुभूति ही नहीं थी। उस आनन्द के हैंगओवर मात्र से आप यह कहने पर बाध्य हो जाते हैं कि मैंने नींद का आनन्द लिया। अरे ! कभी उस भस्मी में उतरिए, वह आपकी भस्मी है जो स्थिर है, जिसके आगे सब शून्य हो जाता है। उस अपने निश्चित भविष्य को जब अपने भागते हुए अस्थिर वर्तमान के सामने खड़ा करेंगे, तो दोनों की टक्कर हो जाएगी। जिनके फलस्वरूप कई प्रतिक्रियाएँ होती हैं एवं रासायनिक प्रतिक्रियाओं की तरह कई नए पदार्थ बनते हैं व महाशक्ति प्रगट होती है। इसी प्रकार आपके अखंड, स्थिर भस्मी रूप भविष्य और आपके अस्थिर वर्तमान की टक्कर से प्रतिक्रिया होती है। **जड़ भस्मी + चेतन वर्तमान = चेतन भस्मी + जड़ वर्तमान।** वह जड़ भस्मी, चेतन हो जाती है, क्योंकि वर्तमान की चेतनता को आत्मसात् कर लेती है और आपका वर्तमान ठगा सा रह जाता है, कि मेरी सारी कहानी यहीं समाप्त हो जाएगी। उस जड़ भस्मी रूपी भविष्य को देखकर आपका वर्तमान कम्पायमान हो जाता है, कि मैं क्यों भाग रहा हूँ। **अतः वर्तमान जड़ हो जाता है और भस्मी चेतन हो जाती है।** प्रत्येक क्रिया-प्रतिक्रिया में कुछ न कुछ और भी प्रस्फुटित होता है, परिवर्द्धित होता है। जैसेकि व्यावहारिक जगत में जब किन्हीं दो गाड़ियों की टक्कर होती है अथवा दो व्यक्ति परस्पर टकराते हैं,

तो टक्कर के फलस्वरूप दोनों का और गाड़ियों का जो हाल हुआ, वह हुआ, पर उसके साथ क्रोध भी आता है। प्रत्येक क्रिया-प्रतिक्रिया में कुछ न कुछ बढ़कर परिवर्द्धित होकर अवश्य सामने आता है।

हमारी देह की भी ईश्वर की ही तरह छः विभूतियाँ हमने बताईं थीं—सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, ख्याति व वैराग। **जड़ भस्मी व चेतन वर्तमान की टक्कर में जब क्रिया-प्रतिक्रिया होती है, तब एक तो वर्तमान ठहर जाता है और भस्मी चेतन हो जाती है और उसके साथ वहाँ से प्रकट होता है आपका सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य और ख्याति।** जिनके लिए आपका वर्तमान भाग रहा था, वे पाँचों विभूतियाँ इस प्रतिक्रिया से प्रस्फुटित और परिवर्द्धित होती हैं। वर्तमान जड़ एवं स्तब्ध इसलिए हो जाता है, क्योंकि अपनी भस्मी में उतरने का निरन्तर अभ्यास करते-करते आपको ज्ञान हो जाता है, कि मैं जिन पाँच विभूतियों के पीछे आजीवन भागता रहा था वे पाँचों मेरे भीतर थीं, मेरी धरोहर थीं। उस अवस्था में आकर आपको अपनी देह पर अधिकार हो जाता है। प्रभु ने मुझे इतनी उत्कृष्ट और विलक्षण देह क्यों दी है? यह जाने बिना हम देह का दुरुपयोग करते हैं और इससे तुच्छ कार्य करते हैं। उन वस्तुओं के लिए भागते हैं जो हमारी धरोहर हैं, हमारी अपनी हैं, हमारे पास हैं, इसीलिए हमारी देह का हमारे साथ सम्बन्ध खराब हो जाता है। जब तक आप अपनी भस्मी से आत्मसात् नहीं होंगे, तब तक आपको अपनी देह पर अधिकार नहीं हो सकता।

आपकी देह में अवगुण कोई नहीं है। **आप सभी पूर्ण हैं। ईश्वर की साक्षात् सन्तान हैं। आप परम सौन्दर्यवान, परम ज्ञानवान, परम सशक्त, परम ऐश्वर्यवान, परम ख्यातिवान हैं और परम वैराग्यवान अथवा त्यागवान हैं।** हमको इसका जन्मजात ज्ञान था, कि हमारी देह इन छः ईश्वरीय विभूतियों से ठसाठस भरी है, लेकिन अज्ञानवश हमने एक तो वैराग रूपी भस्मी को भूलकर केवल पाँच विभूतियों में देहाध्यास कर लिया। हम भूल गये, कि ये विभूतियाँ हमारे भीतर ही हैं तथा उन्हीं की प्राप्ति के लिये हमने भागना आरम्भ कर दिया। हम अपने उस मूल तत्त्व को, जो

हमारे जीवन-काल के अन्त में बनता है, उसे अनदेखा कर देते हैं। **वास्तविकता यह है कि जीवन भस्मी से प्रारम्भ होता है, जीवन के मध्य में भी भस्मी है और जीवन का अन्त भी भस्मी में होता है।** इसका क्रियान्वन किस प्रकार होता है, मैंने अपने **'हवन'** शीर्षक प्रवचन में इसका विस्तार से वर्णन किया है। देह का देहत्व सिद्ध करने के लिए और देह पर अधिकार करने के लिए भस्मी से आत्मसात् होना परम आवश्यक है।

अब क्या देह का देहत्व सिद्ध करना इतना सरल है ! सद्‌गुरु के कहने पर जीव अपनी देह के इस मूल तत्त्व से अवगत तो हो जाता है, पर इसे सिद्ध करना स्वयं में साधना है, जब तक देह आपको स्वीकार न कर ले। अरे ! देह तो हमें आजीवन अपना नहीं पाती और हम देह से देह के लिए ही भागते रहते हैं। कभी विचार करिए, तो आपको स्वयं पर शर्म आने लगेगी। **देह वास्तव में हमें इसलिए मिली थी, कि हम जान लें, कि ईश्वर ने हमें यह देह क्यों दी।** जब उस जड़ भस्मी और चेतन वर्तमान की परस्पर प्रतिक्रिया होती है, तो आपकी पाँच विभूतियाँ आपसे प्रकट होने लगती हैं। आप यह अनुभव करने लगते हैं, कि आप दिन-प्रतिदिन अधिक से अधिक सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य व ख्याति से सम्पन्न होने लगे हैं। जब इन विभूतियों से आपका मानस ओत-प्रोत होता है, तो वही सब आपके बाह्य जगत में भी प्रकट हो जाता है। **यह ऐश्वर्य, धन, सम्पदा, ख्याति कमाने से नहीं आती, आपके मानस से बाहर प्रकट होती है।** आपका भीतरी सौन्दर्य ही बाहर प्रकट होता है। नहीं तो आप मौसम को भी कोसते रहते हैं, भगवान को भी। आप जिसको मिलते हैं उसकी आलोचना करने लगते हैं। इसका अर्थ है, कि आपके भीतर से मानस निस्तेज हो गया है। ख्याति महापुरुषों के चरण चूमती है, उनसे प्रसरित होती है। ज्ञान उनका स्वरूप हो जाता है। ये वेद, पुराण, श्रुतियाँ उनके चारण-भाट बनकर सम्मुख खड़े रहते हैं। ज्ञान अगर पढ़ने से आता तो सभी ज्ञानी हो जाते।

'जो ब्रह्माण्डे सो पिण्डे' यह वेदान्त का अन्तिम दर्शन है। हम अपने भीतरी स्वरूप को ही बाहर देखते हैं। **बस, आप केवल देह पर अधिकार**

कर लीजिए। उस भस्मी तत्त्व को आत्मसात् करके उस जड़ भस्मी को अपने हर वर्तमान के साथ जोड़ दीजिए। अरे! कहाँ भाग रहे हो आप? **तुम्हारा अन्त बस यह डेढ़-दो किलो राख की पोटली है।** एक बार उससे आमना-सामना तो कीजिए, आपका मृत्यु का भय समाप्त हो जाएगा। जब भस्मीरूप में अपने उस अन्तिम भविष्य को आप प्रतिदिन अपने सम्मुख रखेंगे, तो यह आपके लिए मृत्यु के विरुद्ध एक मानसिक टीकाकरण है। मानव के लिए सबसे बड़ा भय मृत्यु का भय है, जो कभी नहीं होती। **न किसी का जन्म होता है न किसी की मृत्यु। ये दोनों ही हमारी कल्पनाएँ हैं। इन रहस्यों का अनावरण तब होगा, जब हम अपनी उस भस्मी से जुड़ जाएँगे।** क्या किसी ने अपना जन्म होते देखा है? इसी तरह किसी ने अपनी मृत्यु भी नहीं देखी। अरे! जन्म-मृत्यु तो छोड़िए किसी ने स्वयं को सोये हुए भी नहीं देखा। अगर सोये हुए स्वयं को देखा हो, तो इसका अर्थ है कि उसे नींद नहीं आई।

आज तक हम देह को काल से बँधा मानते रहे हैं। **जबकि जन्म एक अकाल-काल में प्रतिक्रिया है।** समय दो प्रकार का है। एक **कालबद्ध**, दूसरा **अकाल** यानि काल से अतीत। उदाहरणतः हम रात को ग्यारह बजे सोये और चार बजे उठे तो इन पाँच घण्टों का समय अकाल-काल था। उठने के बाद हम घड़ी देखते हैं और जान पाते हैं, कि मैं कितने घण्टे सोया। सोए हुए कोई घड़ी नहीं देखता। आपके तथाकथित काल में बंधे जीवन का वह अकाल समय था, क्योंकि उस समय आप अपने नाम-रूप से परे थे। **जितना काल-चक्र है वह आपके अपने नाम-रूप की पहचान में ही है, जबकि जीवन अकाल है।** मानव-जीवन की प्रत्येक घटना अकाल है। बच्चे के जन्म होने पर हम पण्डितों से मुहूर्त की गणना करवाते हैं, लेकिन बच्चा मुहूर्त निकाल कर पैदा नहीं होता। ईश्वर ने किसी को मुहूर्त निकलवाकर पैदा नहीं किया। हम किसी के जन्म से पहले या मृत्यु से पहले जन्म, या मृत्यु का मुहूर्त नहीं निकलवाते। जीवन की जो भी घटना होती है वह अकाल-समय में होती है और उसे काल में हम स्वयं बाँधते हैं, अपनी

'आई क्यू' वाली बुद्धि से। कोई भी घटना आपकी बुद्धि द्वारा निर्धारित नहीं होती। जो घटना बुद्धि द्वारा निर्धारित होगी वह हो या न हो, यदि हो भी जाए और उसके फलस्वरूप आप यदि कुछ प्राप्त कर भी लें, वह प्राप्ति आपको बेचैन कर देगी। इसलिए जीवन हवा की गति की तरह स्वतः चलने दीजिए। जीवन आपकी बपौती नहीं है। **जब आप अपनी भस्मी को आत्मसात् कर, अपनी देह पर अधिकार करेंगे तो यह देह स्वयं आपको अपने रहस्य बताएगी।**

आपकी देह से सम्बन्धित प्रत्येक घटना जन्म, मृत्यु, विवाह, शादी, सन्तानोत्पत्ति, नौकरी, पद, प्रतिष्ठा आदि सभी अकाल-काल में होती हैं। हम मूर्खतावश, अज्ञानवश, मायावश, संस्कारोंवश, सत्संग के अभाववश और पाश्चात्यानुगमनवश उसे अपनी बुद्धि के भौतिक-काल में बाँध देते हैं। इसलिए आपने जन्म और मृत्यु के दो किनारों में जीवन को बाँध दिया, जोकि मात्र आपकी कल्पना है। जबकि हमने ब्रह्मा जी की आयु के विषय में बताते हुए कहा था, कि आपकी आयु भी ब्रह्मा जी की आयु जितनी ही है। यदि आप इन जन्म-मृत्यु के काल्पनिक छोरों को हटा दें, तो आपको आपकी देह स्वयं इस अकाल-काल का रहस्य बताएगी। जैसे आप पाँच घण्टे अकाल-काल में सुषुप्ति में रहते हैं। आप किसी से कहो कि जागे हुए वह एक घण्टा एक स्थान पर निश्चल लेटा रहे, तो यह मुश्किल होगा और वो एक घण्टे में पच्चीस करवटें लेगा।

जहाँ पर आप उस जड़ भस्मी को चेतन वर्तमान के सम्मुख रखेंगे तो जीवन की धाराएँ बदल जाएँगी। वर्तमान वहाँ जड़ हो जाएगा। जो तुच्छ भविष्य के पीछे भाग रहा था, वह स्तब्ध-निश्चल हो जाएगा। वे पाँच विभूतियाँ जिनके पीछे आप भाग रहे थे, आपसे क्रमशः प्रकट होनी शुरू हो जाएँगी और आपके जीवन की धारा जीवन के लिए न होकर **'जीवन काहे के लिए है'** की दिशा में परिवर्तित हो जाएगी। वर्तमान की जड़ता से तात्पर्य यह नहीं है कि आप आलसी और निष्क्रिय हो जाते हैं, बल्कि अपने उस अन्तिम भविष्य **भस्मी** से आत्मसात् हो जाने के बाद भी आप वही करते हैं

जो आप पहले कर रहे थे, लेकिन आपके समस्त कृत्यों का लक्ष्य परिवर्तित हो जायेगा। आप अपनी व्यर्थ की भाग-दौड़ की निरर्थकता व नकारात्मकता के प्रति आश्वस्त हो जायेंगे। आप अध्यापक हैं तो आप पढ़ाने जायेंगे, आप व्यापारी हैं तो आप दुकान पर जायेंगे, सैनिक हैं तो युद्ध में लड़ने जायेंगे, लेकिन आपका लक्ष्य जो मात्र इन्द्रिय-सुख व इनके लिए सुख-साधनों को एकत्रित करने तक था, वह आनन्द के लिये हो जायेगा। विचार करिए, कि **आपकी समस्त भाग-दौड़ मात्र देह के सुखों के लिए देह से, देह तक और देह ही के साथ होती है, लेकिन फिर आप सब कुछ आनन्द में, आनन्द से और आनन्द के लिए करेंगे।** आपका पाना, खोना, रोना, हँसना, बोलना, सुनना, आना, जाना और मौन रहना—यानि आपका हर पल, हर क्षण आनन्द के लिये, आनन्द में ही होगा। **यह सब देह से ही होगा, लेकिन देह तक नहीं होगा क्योंकि आनन्द देहातीत है।** जहाँ आप आनन्द विभोर हो जाते है, वहाँ देह नहीं रहती। तब आपके पाँचों विकार ही नहीं, बल्कि देह के समस्त तथाकथित विकार दिव्य-उत्प्रेरक बन जाएँगे। आप स्वयं प्रभु से प्रार्थना करेंगे कि **''हे प्रभु! मुझे महाकामी बना दो, कि मुझे तेरे सिवा किसी की कामना ही न रहे। मुझे महा लोभी बना दो, कि एक क्षण का समय भी मुझे मिले, तो मैं तेरा नाम ही जपता रहूँ। मुझे महाक्रोधी बना दो, कि तेरे और मेरे मध्य कोई न आ सके। मुझे महामोही बना दो, कि तेरे बिना न मैं जी सकूँ और न तेरा दीदार किए बिना मर सकूँ। मुझे इतना अहंकारी बना दो, कि मैं और सिर्फ मैं ही तुम्हारी इकलौती सन्तान हूँ:—**

''आप ही मोरे नयनवा पलक ढाँप तोहे लूँ,
ना मैं देखूँ और को ना तोहे देखन दूँ।'

और यदि मेरी आँख खुल जाए तो मेरी जिस पर दृष्टि पड़े वह या तू हो या मैं हूँ। मेरे और तेरे सिवा और कोई संसार में है ही नहीं।'' वह भस्मीभूत योगी सर्वत्र जल में, थल में, आकाश में, स्थूल में, सूक्ष्म में, प्राणियों में, जीव-जन्तुओं में अपने इष्ट को ही देखता है। वह इतना नशई हो जाता है कि दिन-रात इष्ट के नाम के नशे में डूबा रहता है और इतना बड़ा जुआरी

हो जाता है, कि इष्ट को पाने के लिए अपने जीवन तक का दाँव लगा देता है, उसे पता ही नहीं चलता कि जीवन कहाँ शुरू हुआ और कहाँ समाप्त हुआ।

काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहं आदि विकार तब तक थे जब तक आपको अपनी देह पर अधिकार नहीं था। यही नहीं देह पर अधिकार के बिना आपकी बुद्धि भी आपके लिए विकार बन जाती है, आपका मन आपका शत्रु बन जाता है। आज तक महापुरुष उपदेश देते रहे हैं, कि काम को वश में करो, क्रोध मत करो, लोभ पाप का मूल है, अहं त्याग दो आदि। उनसे पूछो कैसे वश में करें और क्यों वश में करें? सब सुन लेते हैं, कि काम, क्रोध नरक के द्वार हैं, मन को नियन्त्रित करना चाहिये। कैसे? मैं एक कहानी सुनाता हूँ—किसी परिवार का एक बहुत आत्मीय सम्बन्धी गुज़र गया। वे गुरु के पास रोते हुए गए, कि महाराज बहुत विक्षेप हो गया है। गुरुजी ने उनको बहुत सान्त्वना दी, रामायण, गीता और श्रीमद्भागवत के कुछ श्लोक सुनाए और कहा कि यह तो संसार है, यहाँ आना-जाना लगा ही रहता है। यह सब सुना कर कुछ देर के लिए उनको शान्त कर दिया। अगले दिन गुरु जी का प्रवचन था। वह परिवार उनका बड़ा भक्त था तथा सबसे अग्रिम पंक्ति में बैठे उन्हें सुन रहा था। उसी पंक्ति में एक वृद्ध भी बैठा था, जिसकी सफेद दाढ़ी गुरु जी की बातों के अनुमोदन में सिर हिलाने पर हिलती थी। थोड़ी देर बाद बिना किसी प्रसंग के गुरु जी रोने लगे, तो इस परिवार ने उनके रोने का कारण जानने के लिए गुरु जी से प्रश्न किया, कि कहीं उन्हें कोई शारीरिक पीड़ा तो नहीं हो रही! तो गुरु जी ने बताया, कि भैया! जो यह वृद्ध व्यक्ति बैठे हैं इनके सिर हिलाने पर जब इनकी दाढ़ी हिलती है, तो मेरा दाढ़ी वाला बकरा मुझे याद आ जाता है, जो कल ही मरा है। अब वह परिवार आश्चर्य में पड़ गया, कि उस दिन तो ये हमें संसार की नश्वरता व असारता पर बहुत बड़ा उपदेश दे रहे थे और आज बकरे की याद में स्वयं रो रहे हैं। कारण पूछा तो गुरु जी ने कहा, कि वह तुम्हारा आदमी मरा था, पर बकरा तो मेरा था।

यह अहंकार और ममकार, 'अहंता और ममता'—(कि बकरा मेरा

था) के उन्मूलन के लिए देह का देहत्व सिद्ध होना आवश्यक है, जिसके लिए वैराग रूपी भस्मी से आत्मसात् होना पड़ता है। ऐसा करना चाहिए, ऐसा नहीं करना चाहिए। यह उपदेश मात्र इसी प्रकार के हैं, जैसेकि किसी का कद लम्बा हो, तो कहें कि इसका कद छोटा होना चाहिए, किसी का रंग काला हो, तो कहें कि गोरा होना चाहिये। अरे! कैसे हो जाएगा? हरेक देह का प्रभु ने एक ढाँचा बनाया है। एक संतुलित रूपरेखा बनायी है। आप देह पर अधिकार करके उस ढाँचे को समझिये, कि यह ढाँचा मुझे क्यों मिला?

हम सब किसी न किसी मार्ग से ईश्वर की ओर बढ़ रहे हैं। निस्संदेह जो भी किसी महापुरुष द्वारा बताया गया मार्ग है, आपके संस्कारों व अन्तःप्रेरणा द्वारा प्रकट मार्ग है अथवा आपके पूर्वजों तथा गुरुओं द्वारा इंगित मार्ग है, वह आपको ईश्वर की ओर ही ले जाता है, **परन्तु कोई भी मार्ग ईश्वर तक नहीं ले जा सकता।** वह ऐसी मंज़िल है जहाँ तक कोई मार्ग नहीं पहुँचता। आप पूछेंगे, कि फिर मार्ग का अर्थ क्या हुआ? मैं आत्मानुभूति से आज इस परम सत्य का उद्घाटन कर रहा हूँ–**''उस किसी भी एक मार्ग पर चलते, चलते, चलते....जब जीव थक के, चूर होकर, चक्कर खाकर, मूर्छित होकर ढह जाता है और थोड़ा होश में आने पर रो पड़ता है कि त्राहि माम्! त्राहि माम्! मैं तुम तक नहीं पहुँच सकता। अब आना हो, तो तुम मेरे पास आ जाओ! यदि तुम मुझे चलने की शक्ति भी दोगे, तो भी मैं नहीं चलूँगा।**'' जब समस्त पुरुषार्थ-कर्मों का अहंकार चूर-चूर हो जाये और आप तहे-दिल, तहे-रूह से भूल ही जाएँ, कि आपने कोई जप, तप, साधना, उपासना, प्राणायाम, यज्ञ, हवन, मनन, स्वाध्याय किया भी था, तब मंजिल चल के वहीं आ जाती है। आपके आर्तनाद व भस्मीभूत स्वरूप से द्रवित आपका इष्ट आगे बढ़कर आपको गले लगा लेता है और उसके दर्शन करके आप और भी बेहोश व मूर्छित से हो जाते है:–

''क्या-क्या बताऊँ मैं तेरे मिलने से क्या मिला,
मुद्दत मिली, मुराद मिली, मुद्दा मिला,
सब कुछ मुझे मिला जो तेरा नक्शे पां मिला।''

उपासक बहुत सपने बुनता है, कि प्रभु से मिल कर यह कहूँगा, यह पूछूँगा पर इष्ट के सामने आने पर स्थिति यह हो जाती है, कि :—

''हर रोज़ इरादा करता हूँ
हर बात मैं उनसे कह दूंगा,
कमबख्त जुबाँ खुलती ही नहीं,
जब कातिल सामने आता है।''

रोमांचित और अभिभूत उपासक मौन हो जाता है। इसे कहा है **'मार्ग की पुष्टि।'** मैंने महापुरुषों द्वारा बताये गये एक **'पुष्टि-मार्ग'** के विषय में सुना था, पर किसी भी मार्ग की पुष्टि यही है, जब आप उस मार्ग पर चलते-चलते चलते-चलते....ढह जाते हैं। यही है पुरुषार्थ की सिद्धि और मार्ग की पुष्टि। **तप की पराकाष्ठा यही है, कि तप बेकार लगने लगता है।** जिस प्रकार बाती घी से जलती है और घी दूध से निकलता है, लेकिन दूध से बाती नहीं जलती और एक बार दूध से घी बनने पर पुनः घी को दूध में नहीं बदला जा सकता। इसी प्रकार तप से, जप से या किसी भी मार्ग पर चलते रहने से आप में एक अपरिवर्तनीय व स्थिर बदलाव आ जाता है और उस बदलाव के बाद आप उस जप, तप को भूल जाते हैं। उस मंजिल के मिलने के बाद आप उस मार्ग को भूल जाते हैं। जब तक आप मार्ग पर चलते रहेंगे तो करोड़ों जन्मों तक मार्ग में ही रहेंगे और **जब चलते-चलते-चलते ....थक के, चूर होकर, चक्कर खाकर, मूर्छित होकर ढह जायेंगे** तो मार्ग गायब हो जायेगा और मात्र वह इष्ट ही आपके सम्मुख रहेगा। वास्तविक मार्ग इस मंज़िल के बाद शुरू होते हैं। यह पाँचों मोक्ष (सायुज्य, सारूप्य, सामीप्य, सालोक्य व कैवल्य) मंज़िल से शुरू होते हैं, जब आपको आपका यार मिल जाता है।

मैंने अपने **'अद्य दिवसम्'** शीर्षक प्रवचन में विस्तार से वर्णन किया है, कि प्रभु ने आपको जो कुछ बनाया है, आप उसमें संतुष्ट रहें। आप जो भी हैं, बस प्रभु से जुड़े रहिए। हाथ जोड़कर तहे-दिल से यह स्वीकार कर लेना है, कि मैं जो कुछ भी हूँ, **उसके कारण आप ही हैं।** आप चोर हैं, तो प्रभु आपको

माखनचोर बना देंगे, प्रभु रूपान्तर कर देंगे। जिस हालत में हैं आप, जो भी हैं आप। किसी के आगे फरियाद मत करिए, कि मैं पापी हूँ, कामी हूँ, क्रोधी हूँ, आप अपने इष्ट के दर पर पड़े रहिए :—

''पड़ा रहने दो अपने दर पर मुझको क्यों उठाते हो,
मेरी किस्मत संवरती है तुम्हारा क्या बिगड़ता है ?''

यह दसवीं भक्ति है। आप जो भी हैं, आपको गर्व होना चाहिए, कि संसार के नाटक में आपको जो भी भूमिका मिली है, आप उसका अति उत्तम निर्वाह कर रहे हैं :—

''पण्डित मोमिन पादरियों के फन्दों को जो काट चुका
कर सकती है आज स्वागत उसका मेरी मधुशाला ।''

भूल जाइए, इन ज्योतिषियों, पण्डितों, मौलवियों के चक्कर को छोड़ दीजिए। अपना केस अपने खुदा के सामने स्वयं लड़िए—''अरे! जन्म-जन्मान्तरों में मुझे पापी घोषित किया गया है। यदि तुमने मुझे पापी ही बनाया है, तो मैं स्वीकार करता हूँ। मैं आज तुमसे क्षमा याचना करने के लिए तुम्हारे सम्मुख नहीं खड़ा हुआ हूँ।'' बागी हो जाइए आप और कहिए अपने खुदा से कि—''**मैं पाप करते-करते थकूँगा नहीं, लेकिन तुम मुझे माफ करते-करते थक जाओगे।** इन पण्डितों, पादरियों के रूप में मेरे वकीलों ने तुम्हें भ्रमित कर दिया है, कि तुम मुझे क्या सज़ा दो इसलिए आज मैं स्वयं तुम्हें अपने लिए सज़ा सुनाता हूँ :—

''तू बर्क गिरा, मैं जल जाऊँ,
तेरा हूँ, तुझमें मिल जाऊँ,
मैं करूँ ख़ता और तू बक्शे
ये रोज़ का झगड़ा कौन करे।''

लेकिन ऐ मेरे खुदा! संसारी अदालतें भी सज़ाए मौत देने से पहले अन्तिम इच्छा पूछती हैं। अतः तू भी मेरी आखिरी इच्छा सुन :—

''तू सामने आ, मैं सजदा करूँ,
फिर लुत्फ है सजदा करने का,

तू और कहीं, मैं और कहीं,
तेरे नाम का सजदा कौन करे!''

आज मैं तुझे रूबरू सजदा करना चाहता हूँ। यही मेरी अन्तिम इच्छा है। जब प्रभु के सामने आप स्वयं दिल खोलकर अपना केस लड़ेंगे, तो ईश्वर आपके करोड़ों जन्मों के पाप तुरन्त नष्ट इसलिए कर देंगे, क्योंकि आपने कोई पाप किया ही नहीं होता, आप व्यर्थ ही पापों का बोझा ढो रहे थे। जब आप अपनी भस्मी से आत्मसात् हो जाएँगे, तो **आपको ज्ञान हो जाएगा कि आप न पापी हैं न पुण्यी हैं, क्योंकि भस्मी तो पाप-पुण्य से परे होती है।** आपको दिव्य-देह प्राप्त हो जाएगी और आपका दिव्य-व्यक्तित्व जाग्रत हो जाएगा। आपके समस्त विषय-विकार व विषय-भोग जिसे न जाने किस-किस ने कोसा है, वे सब आपके पूजा प्रकरण बन जाएँगे, आपकी हर गतिविधि आपकी प्रदक्षिणा बन जाएगी। आपकी वाणी से निकले शब्द ब्रह्म होंगे, आपकी सुषुप्ति ही आपकी समाधि होगी। आपका एक-एक श्वास, एक-एक पल पूजनीय हो जाएगा, चाहे आप कुछ भी हों, कोई भी हों, कहीं भी हों, लोग आपसे सम्पर्क कर के स्वयं को खुशनसीब महसूस करेंगे :—

''वो कितने खुशनसीब होते हैं, आप जिनके करीब होते हैं।''

आपके सान्निध्य मात्र से लोग हर्षित, उल्लसित व आनन्दित हो जाएँगे, आपकी दिव्य-देह जाग्रत हो जाएगी, जो आपमें सुषुप्त पड़ी हुई थी। आप स्वयं को हीन मत समझिए। यदि आप स्वयं को हीन, तुच्छ, कामी समझेंगे तो आप पृथ्वी पर सबसे बड़े पापी होंगे। **मेरे विचार में सबसे बड़ा पाप यही है, कि स्वयं को हीन या विकृत समझना।** आपकी देह परमोत्कृष्ट है, सर्वसम्पन्न है, हर्ष उल्लास, अभय, अरोग्यता, भक्ति, शक्ति, मस्ती, साहस, उत्साह से युक्त है। पूर्ण ईश्वरीय कृपा, आनन्द, चेतनता व सत्य से युक्त यह देह उसी प्रकार पूजनीय है, जिस प्रकार कि आपका इष्ट पूजनीय है, बशर्ते आप इसकी भस्मी को आत्मसात् कर लें। आप कर्मों, कर्मों के फलों से मुक्त हो जाएँगे। हम पुण्यों-पापों का बोझ जन्म-जन्मान्तरों से गधे की तरह ढोते चले आ रहे हैं। एक बहुत बड़ी भूल यह हुई, कि हमने अपनी देह को पहचाना नहीं।

देह के मूल तत्त्व, **'चेतन भस्मी'** से आप अवगत हो जाएँ, यह भी बहुत बड़ी बात है, लेकिन उसको सिद्ध करने के लिए आपको गुरु का गुरुत्व सिद्ध करना पड़ेगा। यह न सोचिए, कि कल से हम नित्य अपने महाशेष, देह के मूल तत्त्व भस्मी पर एकाग्र करेंगे और पाप-पुण्य से रहित हो जाएँगे तथा पाँचों दिव्य-विभूतियाँ हममें से प्रकट होनी शुरू हो जायेंगी। **यह प्रकरण कर्म-साध्य नहीं कृपा-साध्य है। इसके लिए सद्गुरु की महती कृपा चाहिए।**

प्रश्न उठता है, कि यह कृपा क्या है और कैसे होती है? आज हम आपको कृपा की परिभाषा देंगे। हम सभी अपने-अपने सद्गुरु के निर्देशानुसार ईश्वर के ध्यान में बैठते हैं, धूप-बत्ती करते हैं, जोत जलाते हैं, यह दूसरी बात है कि ध्यान नहीं लग पाता। लेकिन किसी भी तरह से ईमानदारी से, बेईमानी से, भाव से, कुभाव से, औपचारिकता से हम बैठते अवश्य हैं, हाज़िरी अवश्य लगाते हैं। इस प्रकार तथाकथित ध्यान व पूजा-पाठ सभी करते हैं। हम ईश्वर में मन लगाना चाहते हैं, लेकिन मन नहीं लगता, क्योंकि मन पहले से ही कई जगह लगा रहता है। लोग मुझसे बार-बार पूछते हैं 'ईश्वर में मन कैसे लगायें, प्रभु में ध्यान कैसे लगेगा?' मैं यही कहता हूँ, कि जैसे नोटों में ध्यान लगता है, व्यापार में ध्यान लगता है, अपने घर-परिवार में ध्यान लगता है। यदि ईश्वर में ध्यान नहीं लगता, तो आप ईमानदारी से यह कहकर उठ जाइए, कि ''प्रभु मेरा ध्यान तुम में नहीं लग पाता। पहले मैं तुम्हारा दर्शन करना चाहता था, वह हक तो मैं खो ही चुका हूँ, कुछ न कुछ तो ज्ञात अथवा अज्ञात तुम्हारे कारण होंगे, जितनी देर भी मैं तुम्हारे पास बैठा हूँ खाली वैसे ही बैठा हूँ, तो अब मैं तुम्हारे ध्यान का हक भी खो चुका हूँ। इस बात को सबसे अच्छा तुम ही जानते हो, क्योंकि इस पूरे महाब्रह्माण्ड में मेरा कुछ है, तो वह मात्र तुम ही हो। इतनी बरबादी हो चुकी है मेरी, कि मैं अपने सच्चिदानंद स्वरूप, जोकि तुम हो, उसका साक्षात्कार करने का अधिकारी तो रहा ही नहीं, अब मैं उसे याद भी नहीं कर सकता, उसमें मेरा मन ही नहीं लगता। इसलिए यह जो मेरी भारी बरबादी हुई है, कृपा करके मुझे उसका ग़म तो दे दो।'' इस प्रकार यदि आप

निरन्तर ईश्वर के दरबार में हाज़िरी भरते हैं और चाहे वैसे के वैसे ही उठ जाते हैं, तो भी निराश होने की कोई बात नहीं। वह परम पिता परमेश्वर जान लेगा, कि आपकी समस्या क्या है। ईश्वर अपने हिसाब से आपके भाव समझ जायेगा। जब आप कुछ देर बैठकर स्पष्ट रूप से, ईमानदारी से कह देते हैं, कि मेरा ध्यान तुम में नहीं लग पाता, तो प्रभु देख लेते हैं, कि यह मेरे पास बैठता तो अवश्य है, लेकिन सांसारिक कार्योंवश, प्रारब्धवश, मोहमायावश एकाग्र नहीं कर पाता। जब निरन्तर आपका यह कार्यक्रम चलता है, तो आपके भोले-भाव से प्रभावित हुए **प्रभु की इतनी कृपा होती है, कि वे आपके मन को ही चुरा लेते हैं।**

आपका वह इष्ट, आपका सद्‌गुरु बिना आपकी जानकारी के आपके मन को चुरा लेता है। उसके बाद वे स्वयं आपको अपने पास बिठाएँगे और जो कुछ करवाना है, वे स्वयं करवायेंगे, क्योंकि आपका मन अब उनका हो जाता है। **ईश्वर आपके जीवन के संचालन का उत्तरदायित्व स्वयं ले लेते हैं। इस प्रकरण को कहा है–कृपा।** फिर इसके बाद स्वतः आपका मन भी लगने लग जाता है। आप सुबह दस बजे सो कर उठते थे, आपका इष्ट अब आपको सुबह तीन-चार बजे उठा देता है, क्योंकि अब सद्‌गुरु और इष्ट का ध्यान आपमें लगा रहता है। तब आपको ईश्वर में मन नहीं लगाना पड़ता, ईश्वर आपमें मन लगा लेता है। लेकिन तहे-दिल, तहे-रूह और ईमानदारी से यह कहकर उठना है, कि –''तुम मुझे अपने दरबार में बुलाते हो तो आ जाता हूँ, पर मेरा मन तुम में लग ही नहीं पाता। मैं वैसे का वैसा ही उठ जाता हूँ। तुम मुझे भटका देते हो, मैं भटक जाता हूँ, मैं क्या करूँ? **तुम समर्थवान हो मैं असमर्थ हूँ। जब तक तुम नहीं चाहोगे, मैं तुममें ध्यान कैसे लगा सकता हूँ? पर इसका मुझे ग़म तो दे दो।''** अरे! वह आपका स्वरूप है, उसके साथ ईमानदारी से रहना है, उससे कुछ भी छिपा नहीं है। फिर आपका ध्यान ही नहीं लगने लगेगा और भी बहुत कुछ होने लगेगा, जिसका आपको पता भी नहीं चलेगा। **इसको कहा है–ईश्वरीय-कृपा, सद्‌गुरु-कृपा।**

जब आप भस्मीभूत होकर, स्वयं को मात्र मुट्ठी भर खाक समझकर उस चौदह भुवनों के सम्राट, समर्थ सद्गुरु के दरबार में जाएँगे, जिसके चरणों में सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य व ख्याति पाँचों विभूतियाँ लोटती रहती हैं और गुरु जब आश्वस्त हो जाएगा, कि मेरा यह सद्शिष्य मात्र उस परम सत्य को ही पाना चाहता है। तब **सद्गुरु की कृपा से ही आपको भस्मी की सिद्धि होगी**, जिसके सिद्ध होते ही आपके समस्त विकार दिव्य-उत्प्रेरक हो जाएँगे। वे पहले से ही दिव्य-उत्प्रेरक थे, लेकिन आपने उन्हें विकृत समझा हुआ था। आपकी शारीरिक, बौद्धिक व मानसिक तीनों शक्तियाँ दिव्य हो जाएँगी। आपका मन भक्ति से ओत-प्रोत हो जाएगा—**'भक्तियोग'**, आपकी बुद्धि **ज्ञान** से परिपूरित हो जाएगी—**'ज्ञान-योग'** और आपकी मन एवं बुद्धि के सामंजस्य का प्रकटीकरण आपके सद्कर्मों के रूप में होगा—**'कर्म-योग'।** इस प्रकार आप **भक्ति-योग, ज्ञान-योग व कर्म-योग की परम पावन त्रिवेणी बन जाएँगे।** आपकी **'आई क्यू**' वाली बुद्धि मात्र ईश्वरीय कृत्यों की वाह-वाह करने के लिए सुरक्षित रहेगी।

जितनी भी वैज्ञानिक उन्नति हुई है, वह मात्र आपकी **'आई क्यू'** वाली बुद्धि का बाह्य प्रकटीकरण है। क्या किसी अन्य देश में वेद, पुराण, शास्त्र, उपनिषद् लिखे गये हैं? क्या कहीं रामायण और गीता लिखी गई हैं या श्रीगुरु ग्रन्थ साहिब लिखा गया है? क्यों नहीं लिखा गया? क्योंकि वहाँ प्रज्ञा, ऋतम्भरा, विवेक व मेधा नहीं है, जो मात्र हमारी धरोहर है। जिनको आप विकसित देश कहते हैं, उनको विकसित समझना ही शर्म की बात है। अरे! जिस बुद्धि से उन्होंने वैज्ञानिक विकास किया है, उस बुद्धि से मात्र हमने ईश्वर की वाह-वाह की है। **ईश्वर यदि साकार रूप में अवतार लेता है, तो वह मात्र भारत में ही लेता है, क्योंकि हमारे पास एक बड़ी धरोहर है—मेधा, प्रज्ञा, विवेक और ऋतम्भरा। यदि कोई विशुद्ध जिज्ञासु मानव पूरे विश्व में है, तो वह केवल भारतीय ही है।**

हमारे देश जैसा विकसित देश आज तक न कोई है, न था और न ही कोई होगा। भारत ही जगद्गुरु है। यह गुरु और गुरुत्व हमारी

ही धरोहर है। हमारे ऋषि, मनीषियों ने हमें अक्षुण्ण धरोहर दी है। पाश्चात्यानुगमन त्याग कर उन ऋषियों, मनीषियों को नमन करिए, नहीं तो घोर अन्धकार में ही जीवन व्यतीत हो जाएगा और उसी अन्धकार में ही पुनर्जन्म होगा। हमारी वसुन्धरा, इसके सातों तलों में तथा इसकी फिज़ाओं में ज्ञान, सौन्दर्य, ख्याति, ऐश्वर्य, शक्ति है तथा साथ ही है **'शंकर का वैराग्य'।** जिस दिन आप उस महाशेष भस्मी को सद्‌गुरु की कृपा से आत्मसात् कर लेंगे, उस दिन आपको अपनी देह पर अधिकार हो जाएगा, जो युगों-युगान्तरों से आज तक नहीं था। **यह कर्म-साध्य नहीं कृपा-साध्य है। हमारी सद्‌गुरु-सद्‌शिष्य परम्परा में महासार्थकता निहित थी, उसे पुनः उजागर करिए। सद्‌गुरु की कृपा से ही आपको अपनी देह पर अधिकार होगा और आपकी देह उस परम कारण सच्चिदानंद-स्वरूप की अनुभूति व आत्म-साक्षात्कार का साधन बन जाएगी, यही जीवन का व देह-प्राप्ति का लक्ष्य भी है।**

'बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(3 , 24 अगस्त व 7 सितम्बर , 2003)

लक्ष्मी एवं भस्मी

आज भारत के इस प्राचीन परम्परागत दीपावली महोत्सव के शुभारम्भ पर इष्टाज्ञा एवं आप सब सद्जिज्ञासुओं की प्रेरणा से एक बहुत ही कौतूहलपूर्ण विषय प्रस्तुत करूँगा। इस परम सत्य विषय का नाम है– **'लक्ष्मी एवं भस्मी'।** ऐसा लगता है, जैसे दोनों सगी बहनें हों। सच्चिदानंद परमपिता परमात्मा आनन्दमय क्रीड़ाओं को करने तथा उत्सव व महोत्सव मनाने के लिए स्वयं मानव-देह के रूप में धरा पर अवतरित होते हैं। वे साकार एवं निराकार दोनों रूपों में छः विभूतियों से विभूषित रहते हैं और उन्हीं छः परम दिव्य विभूतियों को निष्पक्ष रूप से प्रत्येक मानव-देह में उन्होंने ठसाठस भरा हुआ है। आप सभी व्यक्तिगत तौर पर परम सौन्दर्यवान, ज्ञानवान, शक्तिवान, ऐश्वर्यवान, ख्यातिवान एवं त्यागवान हैं, परन्तु उस अनुपम खिलाड़ी ने यहाँ थोड़ी सी क्रीड़ामय चतुरता कर दी। ईश्वर ने प्रथम पाँच विभूतियों को तो देह में प्रकट कर दिया, लेकिन जो छटी महाविभूति थी–**वैराग अथवा त्याग,** जिसका देह में प्रतिनिधित्व **राख अथवा भस्मी** द्वारा होता है, उसे जीवन-काल में छिपा दिया। यह महाविभूति प्रकट तब होती है, जब जीवन-लीला समाप्त हो जाती है। मायावश, अज्ञानवश, सत्संग के अभाववश हम मानव अपने उस सुनिश्चित व परिलक्षित भविष्य को जीवन-काल में जानबूझ कर अनदेखा व उपेक्षित कर देते हैं तथा आजीवन शेष समस्त विभूतियों पर अधिकार करने का निरर्थक प्रयत्न करते हुए तड़पते रहते हैं।

हमें भली-भाँति ज्ञात है, कि जो धन, ज्ञान, शक्ति, सौन्दर्य व ख्याति

हम चाहते हैं और जिससे हम कभी सन्तुष्ट नहीं होते, वह मिले या न मिले पर हमारी भस्मी अवश्य बनेगी तथा कब बनेगी, यह भी हमें ज्ञात नहीं है! इस भस्मी की उपेक्षा के कारण हमारा सम्पूर्ण जीवन जाली नोट की तरह नकली हो जाता है। जाली नोट में दो बातों का भय रहता है, एक तो उससे मिलता कुछ नहीं, दूसरे पुलिस द्वारा पकड़े जाने का डर रहता है। इसी प्रकार जब आप इन पाँचों विभूतियों के मूल आधार, मूल तत्त्व भस्मी को भूल जाते हैं, तो एक तो आपका अर्जित सौन्दर्य, शक्ति, ज्ञान, ऐश्वर्य व ख्याति खोखली होती हैं तथा दूसरे दैवीय न्यायिक संस्थानों द्वारा आप पकड़े जाते हैं और आपकी केस फाइल बनती है, जिसका नाम है–**'प्रारब्ध'**। **यदि हम अपनी भस्मी को वर्तमान में आत्मसात् नहीं करेंगे, तो हमारा धर्म, कर्म, धन, ऐश्वर्य, ज्ञान, ख्याति व शक्ति सब जाली ही होंगे।** आज इस व्यास-गद्दी से मैं इस परम दैवीय रहस्य को उद्घाटित कर रहा हूँ।

वस्तुतः हमारा मूल भस्मी है। जीवन प्रारम्भ भस्मी से होता है, जीवन के मध्य में भी भस्मी है और जीवन का अन्त भी भस्मी ही है। **हमारे जीवन के भूत का अवशेष भस्मी है, हमारे वर्तमान का शेष भस्मी है और हमारा सुनिश्चित परिलक्षित भविष्य भी भस्मी ही है।** यह भस्मी अप्रकट रूप से निरन्तर साथ रहती है, जिसका **'हवन'** शीर्षक प्रवचन में मैंने विस्तार से वर्णन किया है। हवन-अग्नि जब प्रचण्ड रूप से उद्दीप्त होती है, तो उतनी ही तीव्रता से उसके मूल में भस्मी बनती रहती है। इसी प्रकार जब हमारे जीवन की समस्त विभूतियाँ प्रदीप्त होती हैं, जाग्रत होती हैं, तो हम भूल जाते हैं, कि ये भस्मी से प्रकट हो रही हैं, जो उस वक्त न दिखाई देती है और न ही हम उसे देखना चाहते हैं। हमें अपनी विभूतियों का नशा हो जाता है। हमें अपनी ख्याति, ज्ञान, शक्ति व सौन्दर्य एवं ऐश्वर्य का अभिमान हो जाता है। उस अभिमान को शान्त करने का एक ही उपाय है, कि हम अपनी भस्मी को न भूलें। याद रखें कि डेढ़ दो किलो राख का मटका हम किसी भी समय बन सकते हैं।

लक्ष्मी ऐश्वर्य की देवी है। ऐश्वर्य का अंग्रेज़ी अनुवाद हो ही नहीं

सकता। अंग्रेज़ों की Prosperity मात्र समृद्धि है, केवल धन है, जो ऐश्वर्य के सातों अंगों (सुख, सन्तोष, शान्ति, समृद्धि, स्वजन, स्वास्थ्य और सत्संग) में से केवल एक है। लक्ष्मी ऐश्वर्य के इन समस्त सातों अंगों से युक्त होती है और कमाई नहीं जाती, बल्कि स्वतः प्रकट होती है। **हम से भूल यह होती है, कि हम मात्र धन कमाने में अपनी सारी शक्तियों को झोंक देते हैं और मात्र धन का अर्जन करते हैं, लेकिन जब लक्ष्मी प्रकट होती है, तो अपने सातों अंगों सहित प्रकट होती है।** दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर है। जब हम भस्मी तत्त्व को भूल जाते हैं, तो हमारे **'कुछ किए हुए'** का परिणाम होता है–'**धन का अर्जन।'** उस अर्जित धन से हम तथाकथित धनाढ्य तो बन जाते हैं, लेकिन वह धन, लक्ष्मी के शेष **छः अंगों–सुख, सन्तोष, शान्ति, स्वजन, स्वास्थ्य व सत्संग को चाट जाता है** और भय का हेतु बन जाता है, क्योंकि वह जाली होता है। जाली इसलिए क्योंकि आपके कृत्य भी जाली होते हैं और कृत्य जाली इसलिए होते हैं, क्योंकि आपने अपनी भस्मी को उपेक्षित करके वह धन कमाया है। **उस धन को आप कभी भोग नहीं सकते और आनन्द का तो प्रश्न ही नहीं होता।** क्योंकि जब धन हमारे किए हुए कृत्यों द्वारा अर्जित होता है, तो उन कृत्यों को करने की भाग-दौड़ में हमारे आनन्द की ऊर्जा मन्द पड़ जाती है तथा कोई सुख भी हम नहीं ले सकते। हमारे सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति व ख्याति के लिए भी यही सूत्र है, **भस्मी को भूल कर आपके किए गए कृत्यों द्वारा अर्जित सभी विभूतियाँ आपके लिए घातक बन जाती हैं।** भस्मी को भूलने व अर्जित शक्तियों एवं विभूतियों को सम्भालने की शक्ति न होने के कारण आप अभिमानी हो जाते हैं। यदि भस्मी से आत्मसात् हुए रहेंगे, तो करोड़ों ब्रह्माण्डों की सम्पूर्ण सम्पदा आने पर भी आपमें अभिमान नहीं आएगा, भगवान शंकर की तरह। यह शिवत्व का रहस्य आपके सम्मुख रख रहा हूँ, लक्ष्मी के आगमन के महोसत्व में दीप-मालाएँ जलाइए लेकिन आपके हृदय का दीपक भी जलना चाहिए, जो मन्द पड़ गया है, बुझा हुआ नहीं है, क्योंकि आप भारतवासी हैं।

ऐश्वर्य की देवी लक्ष्मी जब प्रकट होती है, तो अपने सातों अंगों के साथ

प्रकट होती है। इन सातों अंगों और लक्ष्मी के 108 रूपों का वर्णन मैंने **'लक्ष्मी दर्शन'** शीर्षक प्रवचन में किया है। आज मैं यह तथ्य उजागर करना चाहता हूँ, कि लक्ष्मी के प्रकट होने की आप प्रतीक्षा करते हुए हाथ पर हाथ रखकर निठल्ले नहीं बैठे रहते। आप कर्म करते हैं, लेकिन आपके वे कर्म जाली नहीं होते, क्योंकि आप अपने वर्तमान में भस्मी को आत्मसात् किए रहते हैं। **पहले वे कृत्य आपके द्वारा 'किए हुए' थे, अब आपके द्वारा 'हुए-हुए' से होते हैं।** कोई अदृश्य शक्ति आपको किसी स्थान पर ले जाती है, किसी व्यक्ति से मिला देती है और आपको ऐसा प्रतीत होता है, कि जीवन के लिए कोई सुनहरी अवसर मिल गया। आप बैठे बिठाए धनवान हो जाते हैं। वे कृत्य आपके द्वारा किए हुए नहीं होते, आपको ऐसा लगता है कि मैंने तो ऐसा सोचा ही नहीं था। मैं व्यावहारिक जीवन की प्रत्यक्ष अनुभूतियों को आपके सम्मुख रख रहा हूँ। आप कृत्य करते हैं लेकिन उन कृत्यों का कोई भी दबाव या तनाव आप पर नहीं होता। तभी लक्ष्मी अपने सातों अंगों के साथ प्रकट होती है और आप ऐश्वर्यवान हो जाते हैं।

हम जब किसी के नज़दीक होते हैं या किसी से दूर होते हैं, तो हमारे बीच एक common factor अवश्य होता है। आप सब यहाँ एकत्र हुए हैं, तो एक common factor है, कि आप डा० शिव कुमार को सुनने आए हैं। जिस समय यह common factor समाप्त हो जाएगा, आप सब अपने-अपने घर चले जाएँगे। भौतिक जगत में यह common factor परिवर्तित होता रहता है और आपका जगत भी परिवर्तित होता रहता है। जब common factor समाप्त हो जाता है, तो हम बिखर जाते हैं। **हमारा जो भी मिलना-बिछुड़ना है, वह किसी न किसी common factor पर ही निर्भर करता है। 'भस्मी'** एक स्थिर common factor है, हम सबका। शेष पाँच विभूतियाँ जैसे सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य व ख्याति में हमारा किसी से भी कुछ भी common हो ही नहीं सकता, सब अलग-अलग होता है। **ईश्वर ने आप सबमें बस एक ही common factor दिया है और वह है—आपकी भस्मी या खाक।** आपके धर्म, कर्म, रूप, रंग, पद, पोस्ट, धन, सम्पदा सब कुछ

अलग-अलग हैं, लेकिन एक अत्यन्त स्थिर common factor ईश्वर ने जो दिया है, वह है—**'खाक।'** जब आप इस common factor का नित्याध्यासन करेंगे, इसे अपने वर्तमान में आत्मसात् कर लेंगे, तो आपको विश्व में कोई भी बेगाना नज़र नहीं आएगा, आपके लिए कोई भी पराया नहीं होगा। कम से कम कोई व्यक्ति आपका अहित तो नहीं चाहेगा। यदि आपके लिए कोई, कुछ अहित सोचेगा, तो उसकी आत्मा में स्वतः ही एक उद्वेग पैदा हो जाएगा और उसमें अपराध-भावना भर जाएगी। अगर आप विश्व में सम्यक्-दृष्टि रखना चाहते हैं, अनेकता में एकता चाहते हैं, तो यह मात्र बातों से नहीं होगी। बड़े-बड़े नेता, धर्मगुरु भाषण देकर चले जाते हैं, सुनते-सुनते हम तंग आ जाते हैं, कि एकता कैसे हो? अरे! एक वस्तु को पकड़ लीजिए, जो common है। जब तक आप उस पर अधिकार नहीं करेंगे, आप किसी के साथ एक हो ही नहीं सकते। जब आप भस्मी पर अधिकार कर लेंगे तो इसका अर्थ यह है, कि आपने सम्पूर्ण विश्व के एक महातत्त्व पर अधिकार कर लिया है, परन्तु **यह अधिकार सद्‌गुरु व इष्ट-कृपा से ही होगा। इसके लिए श्रद्धा चाहिए, सत्य को धारण करने की शक्ति चाहिए, तभी आप कृपा-पात्र होंगे।**

भस्मी को आत्मसात् करके, जिस समय आप उस पर अधिकार कर लेंगे, उसका चिन्तन, मनन व नित्याध्यासन करेंगे, भगवान शंकर का ध्यान करेंगे, जो भस्मीभूत हैं, तो सारे विश्व का सौन्दर्य, सारे विश्व का ज्ञान व ऐश्वर्य तथा सारे विश्व की शक्ति व ख्याति आपको अपनी ही लगेगी। आप जिसके साथ भी सम्बन्ध रखेंगे, वह आपका स्वजन या स्वरूपजन ही होगा। आपको कभी ईर्ष्या-द्वेष नहीं होगा, यदि है, तो इसका अर्थ यही है, कि आपने मूल आधार भस्मी को छोड़ दिया है। किसी की भी आलोचना करने से पहले आप स्वयं को परखिए। आपको निरन्तर अपनी भस्मी के साथ समाहित रहना पड़ेगा क्योंकि भस्मी ही ऐसा तत्त्व है कि समस्त शक्तियाँ होने पर भी आपमें अभिमान जाग्रत नहीं होगा। आप धनवान, ख्यातिवान, सशक्त, ज्ञानवान, ऐश्वर्यवान व सुन्दर लोगों को देखकर प्रसन्न होंगे, क्योंकि आप

सबके साथ आत्मसात् हो जाएँगे, आपका सबके साथ समन्वय हो जाएगा। **आप एक में अनेक और अनेकों में एक आप ही होंगे, आपको ऐसा प्रतीत होगा मानो सारा विश्व आपसे प्रकट हुआ है।** यही अन्तिम सत्य है। गुरु नानक देव महाराज ने कहा— **''जो ब्रह्माण्डे सो पिण्डे।''** अर्थात् जो सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड में आप देख रहे हैं, वह आप स्वयं ही हैं। यदि आप इस सत्य की अनुभूति करना चाहते हैं, तो आपको अपनी भस्मी से आत्मसात् होना ही पड़ेगा और इस भस्माध्यास के बाद आपके जीवन में लक्ष्मी अपने सातों अंगों के साथ प्रकट होगी, जिसका आप आनन्द से भोग करेंगे।

भगवान शंकर को विश्वनाथ क्यों कहा है? उनके तन पर तो वस्त्र भी नहीं हैं, लेकिन वे भस्मांग शिव इतने ऐश्वर्यवान हैं, कि जिस किसी पर उनकी दृष्टि पड़ती है, उसे वे शहंशाह बना सकते हैं। वस्तुतः यही है—'**लक्ष्मी का दर्शन**'। महापुरुषों के पास अपना कुछ नहीं होता :—

''चाह गई, चिन्ता मिटी,
मनुआ बेपरवाह,
जिसको कुछ नहीं चाहिए,
वो शाहों के शाह।''

यह शिवत्व व शंकरत्व का सूत्र है। **इसलिए भगवान शंकर लक्ष्मी के स्वामी हैं और भगवान विष्णु लक्ष्मीपति हैं।** भगवान शंकर ने तो महाशेष भस्मी को ओढ़ लिया है और भगवान विष्णु महाशेष की शैया पर विराजमान रहते हैं। उनकी दृष्टि हमेशा सहस्त्र फन वाले शेष पर ही रहती है और वे अपनी चरण-सेवा में रत लक्ष्मी की ओर देखते भी नहीं, इसीलिए वे लक्ष्मीपति हैं।

किसी भी वस्तु का स्वामित्व हमें तभी मिलता है, जब हममें उसे त्यागने की क्षमता आ जाती है। यह स्वामित्व जन्म-जन्मान्तरों तक हमारे मानस पर अंकित रहता है। हम भारतवासी जन्म से ही यह स्वामित्व साथ लेकर आते हैं। विदेशों की अट्टालिकाएँ, सुन्दर सड़कें व ताम-झाम देखकर भ्रमित मत होना। **आज भी यदि विश्व में कोई देश ऐश्वर्यवान है, तो वह भारत ही है।**

आप भारतवासी ही स्वामी हैं, क्योंकि त्याग ही स्वामित्व का द्योतक है। वह त्याग किस सीमा तक भारतवासियों के मानस पर अंकित है, इसका कोई अनुमान भी नहीं लगा सकता।

भगवान की भारत पर विशेष कृपा है। इसलिए भगवान भी जब अवतार लेते हैं, तो भारत में ही लेते हैं। युग-युगान्तरों में वेद, शास्त्र, श्रुतियाँ, पुराण, वेदान्त, उपनिषद्, गुरु-ग्रन्थ साहिब, गीता आदि की जब भी रचना होती है, तो वह मात्र भारत में ही होती है। वह प्रतिभा मात्र आपमें ही है, क्योंकि आप लक्ष्मीपति और लक्ष्मी के स्वामी की सन्तानें हैं। आप यहाँ ऐश्वर्यमय भोग के लिए ही आए हैं, बशर्ते आप अपनी भस्मी, अपने परम सत्य, अपने इष्ट, उस परमात्मा से जुड़े रहें। आपका सम्पूर्ण जीवन ही महा-महोत्सव हो, ऐसा हमारा आशीर्वाद है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(12 अक्टूबर, 2003)

प्रारब्ध-भोग

आज परम इष्ट-प्रेरणा से और आप सब जिज्ञासुओं की सर्वोत्तम जिज्ञासावश आपके सम्मुख अति जीवनोपयोगी विषय प्रस्तुत करूँगा, विषय का नाम है—**'प्रारब्ध-भोग'।** प्रारब्ध पर मैं 23 और 30 सितम्बर, 2001 को बहुत विस्तृत प्रवचन दे चुका हूँ। उस प्रारब्ध को प्राप्त करके जो विभिन्न प्रकार का जीवन हम जीते हैं, हमारे जीवन की वे रूपरेखाएँ एवं गतिविधियाँ क्या उस भाग्य के अनुसार ही होती हैं? क्या एक ही भाग्य को हम विभिन्न प्रकार से भोग सकते हैं? विषय बहुत जटिल है। भाग्यवश हुई प्राप्तियों को हम विभिन्न प्रकार से अति आनन्दमय कैसे भोग सकते हैं? क्या हम भाग्य को समाप्त कर सकते हैं? ये बड़े भिन्न-भिन्न अति जटिल प्रश्न हैं, जिनका ज्ञान विशेषकर हम भारतीयों को होना परम आवश्यक है। प्रारब्ध या भाग्य का अंग्रेजी अनुवाद Destiny नहीं है। Destiny से क्या अभिप्राय है, हम नहीं कह सकते, क्योंकि प्रारब्ध की संरचना की उस यूरोपियन समाज को कभी कोई धारणा हो ही नहीं सकती।

कदाचित् आपको याद हो; मैंने बताया था कि **प्रारब्ध ईश्वर द्वारा हस्ताक्षरित भरी-भराई अदृश्य, परन्तु निश्चित एक कैसेट है जो मानव-शिशु के गर्भाधान से लेकर उसकी अस्थि-विसर्जन तक सम्पूर्ण जीवन का निर्धारण, संचालन, निर्देशन व समापन करते हुए आगामी जन्म व जीवन की आधारशिला रखती है। यह अदृश्य कैसेट वास्तव में जड़-चेतन की ग्रन्थि है।** आप मुझसे सहमत होंगे, कि एक जड़, मृतक-देह का कोई भाग्य नहीं होता और मृत्यु के समय चेतन सत्ता, वह ईश्वरीय अंश

निकल जाता है, उस चेतन सत्ता का भाग्य बन नहीं सकता। आपने कभी नहीं सुना होगा, कि ईश्वर को कोई नफा या नुकसान हो गया है, ईश्वर घायल या रोगी हो गया, उस पर शुक्र या शनि की कोई दशा चल रही है। ऐसा कभी नहीं होता, वह सच्चिदानंद है, वह परमानन्द है। इस जीवन्त मानव-देह में दोनों चीज़ें हैं—**जड़ता एवं चेतनता**। जड़ता का भाग्य बनता नहीं है, चेतन का भाग्य हो नहीं सकता। लेकिन भाग्य है, **यह भाग्य है—'जड़ और चेतन की ग्रन्थि' का, जोकि अदृश्य है।**

मानव-शिशु जैसे ही होश सम्भालता है, वैसे ही संस्कारों वश व प्रारब्धवश एक अहं की जागृति होती है, कि 'मुझे कुछ करना है, मुझे कुछ बनना है।' तब वहाँ से अहं द्वारा किए गये कृत्यों की श्रंखला प्रारम्भ होती है। **मूलतः मानव का मन ईश्वरीय है—जो सशक्त है, स्थिर है एवं शान्त है,** लेकिन जैसे ही बुद्धि में अहं की उच्छृंखलता जाग्रत होती है और कुछ करने की, कुछ बनने की तरंगें उठने लगती हैं, तो उसके मन का रूपान्तरण हो जाता है। **वह मानवीय मन बन जाता है, जो अशक्त, अस्थिर एवं अशान्त है। साथ ही उसकी बुद्धि मात्र आई-क्यू वाली बुद्धि रह जाती है।** यह आई-क्यू वाली बुद्धि जब आवश्यकता से अधिक प्रदीप्त हो जाती है, तो उसमें एक बड़ा भारी नुकसान हो जाता है, कि ईश्वर-प्रदत्त बुद्धियाँ—**प्रज्ञा, विवेक, मेधा एवं ऋतम्भरा** ढक जाती हैं। मानव होश सम्भालते ही वस्तुएँ एकत्रित करने के लिए भाग-दौड़ करनी शुरू कर देता है। जैसे-जैसे बुद्धि विकसित होती है, वह वैज्ञानिक विकास करता है। आकाश में मंगल, चन्द्रमा आदि ग्रहों पर पहुँचने तक का प्रयास करने लगता है। जहाँ-जहाँ यह पहुँच सकता है, पहुँचता है, लेकिन इस पहुँच में यह स्वयं से उतना ही दूर होता जाता है। इसकी देह इससे घृणा करने लगती है। अधिक तेज बुद्धि के लोगों को ईश्वर का ध्यान करने की फुर्सत ही नहीं होती और अत्यधिक तेज़ बुद्धि के लोग तो ईश्वर को मानते ही नहीं हैं। लेकिन ईश्वर उन सब पर भी बड़ा कृपालु रहता है, ईश्वर को न मानने वालों का भी जन्म होता है, मृत्यु होती है, वे भी श्वास लेते हैं, उनको भी ईश्वर सारी सुविधाएँ देते हैं। वे मात्र

एक बात से वंचित रहते हैं, कि वे कभी भी परम सत्य को पा ही नहीं सकते, शेष सब सुविधाएँ ईश्वर द्वारा उन्हें भी दी जाती हैं। वे छल-बल से आवश्यकता से अधिक बहुत कुछ एकत्रित करते हैं और वस्तुतः "Backward Animals" कहे जाते हैं। 'आई-क्यू' वाली बुद्धि ईश्वर ने मानव को इस संसार रूपी महानाट्यशाला की विभिन्न विधाओं की प्रशंसा करने के लिए दी थी, परन्तु मानव देहधारी ये पिछड़े हुए पशु इस बुद्धि से ईश्वरीय कृत्यों की असफल नकल करने लगते हैं। इस प्रकार जहाँ बुद्धि का दुरुपयोग होना शुरू हुआ तो मानव-मन में जड़-चेतन ग्रन्थि बननी शुरू हो गई।

मैंने प्रत्येक कर्म के छः अंग बताये थे—**कारण, कर्त्ता, कर्म से पहले की वृत्ति, कर्म, कर्म के बाद की वृत्ति और कर्मफल**। अध्यात्म एक महाविज्ञान है। इसके शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा नहीं जा सकता। यह बहुत निश्चित व सटीक शब्दावली है। हम जिन कर्मों को करने में स्वयं को अति कर्मठ मानते हैं वे अधिकतर तथाकथित कर्म होते हैं, क्योंकि मानवीय कर्म मात्र एक ही है, वह है—**यह जानना, कि मैं कौन हूँ? कहाँ से आया हूँ? कहाँ जाना है मुझे? मैं पृथ्वी पर यदि स्वयं आया हूँ, तो क्यों आया हूँ? यदि मैं पृथ्वी पर लाया गया हूँ तो क्यों लाया गया हूँ? मुझे लाने वाला कौन है? कहाँ रहता है वह? क्या नाम है उसका? क्या रूप है उसका? वह अरूप है क्या?** आदि-आदि असंख्य जिज्ञासाएँ जब किसी विवेकशील विशुद्ध मानव के हृदय में उठती हैं, तो वह मानव कहलाने योग्य होता है। उस दिशा में वह जो कृत्य करता है, उन्हें ही कर्म कहा जाता है अन्यथा शेष सब तथाकथित कर्म ही हैं। अब यदि हम उनको भी सार्थक कर्म मान लें, तो उनके भी छः अंग होते हैं। किसी भी कर्म का कोई न कोई कारण होता है और उसका एक कर्त्ता होता है तथा कर्म को करने से पहले एक वृत्ति होती है, जो हमारी होती है। **कारण एवं कर्त्ता मानव-बुद्धि का उत्पाद है**, मानव अपनी बुद्धि से कारण बनाता है, कि मुझे ऐसा करना चाहिए, नहीं करूँगा, तो ऐसा हो जाएगा, आदि-आदि। कारण अधिकतर मानव की आई-क्यू वाली

बुद्धि से उत्पन्न होता है और फिर उसकी योजनाएँ बनती हैं किसी भी तरह से और सब तरह से।

इसके बाद कर्म से पहले की वृत्ति होती है, जो उस कर्म की गुणात्मकता की आधार होती है और जिस वृत्ति के तहत वह कर्म होता है, **उस वृत्ति के तहत हम कर्म करते हैं शरीर से।** आप उल्लसित व उत्साहपूर्वक कर्म कर रहे हैं, दु:खी मन से कर रहे हैं अथवा किसी द्वेष-भाव से कर्म कर रहे हैं। **यह कर्म से पहले की वृत्ति आपके मन की होती है।** कभी-कभी आप कर्म को करने से पहले ही डावांडोल हो जाते हैं, कि करूँ या न करूँ या न जाने कहाँ से ये बला मोल ले बैठा आदि-आदि। तो कर्म को करने से पहले की यह वृत्ति आपकी बुद्धि की नहीं होती, आपके मन की होती है; क्योंकि आपका मन अशक्त, अशान्त और अस्थिर मानवीय-मन होता है और उसके तहत आप कर्म करते हैं। यहाँ एक बात विशेष ध्यान देने की है, कि किसी कर्म के कारण हमें जो कुछ प्राप्त होता है अथवा हम जो कुछ खोते हैं, उसे ही हम **कर्मफल** मान बैठते हैं। उदाहरणतः हमने किसी बच्चे को एम. बी. बी. एस. अथवा सी. ए. में प्रवेश दिलवाया। उस डिग्री की प्राप्ति के पीछे कारण होता है, कि मेरा बेटा या बेटी कुछ बन जाएगी, तो ऐसा हो जाएगा। उसे डिग्री प्राप्त हो जाती है, तो उसे ही हम उस कर्म का फल मान लेते हैं। किसी लड़के को एक बहुत सुन्दर लड़की पसन्द आ गई, कि **'यह'** मिल जाए अन्यथा जीवन ही व्यर्थ है और जब उसे वह लड़की मिल जाती है, तो उसे ही वह कर्म का फल मान बैठता है, चाहे बाद में **'कुछ'** भी हो। इस प्रकार कर्म का **कारण और कर्त्ता स्वयं बनना मानवीय-बुद्धि का उत्पाद है, कर्म से पहले की वृत्ति मानवीय मन की होती है और कर्म हम शरीर से करते हैं।** वस्तुतः कर्म करने के बाद कुछ प्राप्त होने अथवा खोने से जो मानसिक स्थिति बनती है, **वही कर्म का फल है।**

हम हर बात का भौतिक पक्ष ही देखते हैं। लड़के या लड़की के विवाह के समय हम केवल **सुन्दरता, डिग्रियाँ, पद, व्यवसाय, आर्थिक स्थिति आदि देखते हैं।** जब हम किसी का भौतिक पक्ष देखकर विवाह निश्चित

करते हैं, तो विवाह का परिणाम भी भौतिक ही रहता है। भौतिक वस्तुएँ कभी भी स्थिर नहीं रहतीं, इसलिए ऐसे विवाह भी कभी स्थिर नहीं रहते। **अरे ! उन परिवारों की आध्यात्मिकता व उनका धार्मिक वज़न देखिए। धन तो आना-जाना है, सुन्दरता आज है कल नहीं, अगर आप स्थिरता चाहते हैं, तो कोई कितना कुलीन व तपस्वी है, यह देखिए, जिससे विवाह-शादी स्थिर रह सके।**

जब किसी कर्म का कारण हमारी बुद्धि निर्धारित करती है और कर्त्ता-भाव व योजना भी हमारी बुद्धि की होती है, तो उस कर्म का फल होता है—कुछ प्राप्त होना या खोना। उससे यदि कुछ प्राप्ति हो गई, तो उस प्राप्ति से हममें और अहं आ जाता है, कि मुझे यह प्राप्ति इसलिए हुई, कि मैंने कर्म अत्यधिक योजनाबद्ध तरीके से सुचारू रूप से किया था और उस कर्म द्वारा यदि हमने कुछ खो दिया, तो हम निराश हो जाते हैं, तनावित हो जाते हैं। आपको क्या पता, कि वह खोना ही आपके सौभाग्य का सूचक हो और वह प्राप्ति आपको दुर्भाग्य के अंधेरों में ले जाए ! परन्तु यह आप न तो जानते हैं और न ही जानना चाहते हैं। जब कर्म का कारण हम ईश्वर को मान लेते हैं, तो कभी भी हम में कर्त्ता-भाव नहीं आता। यद्यपि कर्म हम स्वयं ही करते हैं, लेकिन कर्त्ता भाव से रहित होते हैं, कि **प्रभु करवा रहे हैं। उस कर्म को करने से पहले आपके हृदय में अत्यधिक उल्लास व आनन्द प्रस्फुटित हो जायेगा। आपकी वह कर्म करने से पहले की वृत्ति और कर्म सब ईश्वरीय ही होगा और उसके तहत कुछ पाना या खोना महत्त्वपूर्ण नहीं होगा, क्योंकि उसके बाद आपकी मानसिक स्थिति में मात्र आनन्द ही आनन्द होगा। क्योंकि कार्य शुरू आनन्द में हुआ, उसके मध्य में जो कुछ भी चला आनन्द में चला और अन्त में जो भी पाया वह आनन्द में और जो खोया, वह भी आनन्दमय।** आपको कर्म करने के इन दो विभिन्न रूपों में व धाराओं में अति स्पष्ट होना बहुत आवश्यक है। अपने हर कर्म को करते समय आप आत्म-विश्लेषण करिए, कि इस कर्म का कारण व कर्त्ता मैं स्वयं हूँ या इसका कारण व कर्त्ता ईश्वर है।

अब यहाँ पर एक तकनीकी बात बारीकी से समझनी है, कि **जिस कर्म का कारण व कर्त्ता हमने स्वयं को माना वस्तुतः वे कार्य भी ईश्वर द्वारा ही निर्धारित होते हैं।** लेकिन आई-क्यू की बुद्धि के वशीभूत हुए दुर्भाग्यवश हम स्वयं को कारण मान लेते हैं, जबकि दैवीय अधिनियमानुसार **ईश्वर की इच्छा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता।** आप अपने नियम नहीं बना सकते, आप कुछ नहीं कर सकते। जिन कार्यों के विषय में हम सोचते हैं, कि हमने योजनाएँ बनाईं, हमारी वजह से कुछ हुआ, वस्तुतः वे कार्य भी ईश्वरीय इच्छा से ही होते हैं। यदि आप स्वयं को कर्त्ता न मानते तो वे प्राप्तियाँ स्वतः ही होतीं और हम उनसे सन्तुष्ट होते। लेकिन हम कर्म का कारण एवं कर्त्ता स्वयं बने, तो हमने अपनी जड़ता की मोहर उस कर्म पर लगा दी। सच्चिदानंद की इस सृष्टि में कुछ भी जड़ नहीं है। जड़ता वस्तुतः ईश्वर से विमुखता है, इसलिए उस कर्म से हुई प्राप्ति से हम सन्तुष्ट हो ही नहीं सकते हैं और वे प्राप्तियाँ हममें अवश्य अभिमान भर देती हैं। **आप बस ईश्वर के सम्मुख हो जाइए, तो आप अवश्य ही सौन्दर्यमय, ऐश्वर्यपूर्ण, ज्ञानमय एवं ख्यातिपूर्ण सशक्त जीवन व्यतीत करेंगे।**

प्रारब्ध बनता है **जड़ और चेतन की ग्रन्थि का।** हमारे स्वयं को कर्त्ता मानने से कृत्य नहीं होता, कार्य तभी होता है जब ईश्वर की इच्छा होती है। फिर भी जब हम स्वयं को कारण और कर्त्ता मानकर कर्म करते हैं, तो हम उस कर्म का फल कुछ प्राप्ति अथवा खोने को मान लेते हैं। उसके बाद की हमारी मानसिक स्थिति विदीर्ण, विक्षिप्त और तनावित होती है, क्योंकि हमने कर्म का कारण और कर्त्ता स्वयं को माना है और हम मानने से बाज़ नहीं आते। हमने चेतनता में जड़ता की मोहर लगा दी। जो कार्य स्वतः ईश्वर की इच्छा से होना ही था, उस पर हमने ईश्वर-विमुख होकर, कि यह कार्य मैंने किया है, जड़ता आरोपित कर दी। अतः इस जड़ और चेतन की जो प्रतिक्रिया होती है उससे एक ग्रन्थि बनती है, जो है तो अदृश्य लेकिन असत्य नहीं है। वह हमारे प्रारब्ध का निर्धारण करती है। **अतः प्रारब्ध तब बनता है, जब हमारी**

बुद्धि में जड़ता आ जाती है और हम ईश्वर-विमुख होते हैं।

अब ईश्वर विमुखता में अंकित उस प्रारब्ध का भोग कैसे हो? उस अदृश्य कैसेट का जब display आरम्भ होता है, हमारे सामने वे दृश्य आने शुरू हो जाते हैं, तो हम उनका आनन्द कैसे लें? अब आप आश्वस्त हो गये होंगे, कि यह जड़-चेतन की ग्रन्थि, हमारा सारा प्रारब्ध ईश्वर-विमुखता में बना है। यदि हम इस प्रारब्ध को ईश्वर के सम्मुख होकर देखना प्रारम्भ कर दें अर्थात् जीवन के उस सम्पूर्ण विधान को ईश्वर के सम्मुख होकर देखें, तो ईश्वर के लिए धर्म-संकट उत्पन्न हो जाता है। उस सम्पूर्ण कैसेट का अंकन ईश्वर-विमुखता में हुआ है और आप उसे ईश्वर के सम्मुख होकर देखें, तो ईश्वर को उसमें परिवर्तन करने पड़ते हैं, क्योंकि आप सच्चिदानंद की गोद में बैठकर उसे देख रहे हैं। उसका जाप, ध्यान, चिन्तन व मनन करते हुए उस विधि के विधान को भोग रहे हैं, तो ईश्वर दिव्य अधिनियमानुसार उस प्रारब्ध में पाँच परिवर्तन ले आते हैं।

ईश्वर स्वतन्त्र है पर उच्छृंखल नहीं, वह भी दिव्य नियमों में बँधा है। यदि वह ये परिवर्तन न करे, तो संत उस पर केस कर सकते हैं। कैसे हुआ यह सब, वह आपकी गोद में बैठा था। **पहला,** परिवर्तन यह होता है, कि प्रारब्ध का अंकन चूंकि ईश्वर-विमुखता में हुआ है, तो उससे हुई प्राप्तियों से आप कभी संतुष्ट नहीं होते। जब ईश्वर-सम्मुख होते हैं, तो प्रारब्धवश जो कुछ आपको प्राप्तियाँ हुई हैं, आप उनसे संतुष्ट हो जाते हैं। नहीं तो जीवन-काल में पूरे ब्रह्माण्ड का साम्राज्य भी आपको मिल जाये तो भी आपको संतुष्टि नहीं मिलेगी। फिर आप सोचने लगेंगे, कि मैं चाँद, सूर्य पर भी अपना कब्जा कर लूँ। **दूसरे**, जो प्रारब्धवश आपको अभाव है, प्रभु उसकी पूर्ति इस प्रकार से कर देंगे, कि बड़ी-बड़ी प्राप्तियों वाले भी आपसे ईर्ष्या करने लगेंगे। **तीसरे**, प्रारब्धवश आए जीवन के कठिन समय को प्रभु fast forward कर देते हैं या उसे स्वप्न में दिखा देते हैं। क्योंकि आप ईश्वर की गोद में बैठे हैं, तो जीवन में आये कठिन समय के कारण आपको ख्याति मिलती है, लोग आपको उन विपत्तियों से जूझने के कारण याद करते हैं

और आपसे प्रेरणा लेते हैं। **चौथे**, प्रारब्धवश यदि जीवन के कुछ पहलुओं से आप तंग आ जाते हैं, तो प्रभु उनका रूपान्तरण कर देते हैं और **पाँचवे,** ईश्वर आपके प्रारब्ध की सारी कैसेट ही मिटा देते हैं। प्रभु सोचते हैं, कि इसे दिखाने का लाभ ही क्या है! यह तो मेरी गोद में बैठा हुआ है, तो प्रभु आपको नित नूतन खिलाते हैं, रोज़ नया खेल आपके लिए रचाते हैं। **आपके सम्पूर्ण जीवन को सीधे अपने हाथों में ले लेते हैं और आपके निजी सहायक की तरह आपके साथ लगे रहते हैं। आपके दिन के कार्यक्रम वह महाशक्ति ही तय करती है और आप यह अनुभव करते हैं, कि आप कुछ नहीं कर रहे। कोई शक्ति आपसे कार्य करवाती है और आप मात्र आनन्द लेते हैं। आप न किसी कर्म के कारण बनते हैं न कर्त्ता और न ही निमित्त बनते हैं।** प्रारब्ध की सारी कैसेट का अंकन ईश्वर-विमुखता में हुआ और आपने वह देखी ईश्वर-सम्मुखता में, तो उसमें उपर्युक्त पाँच परिवर्तन आते ही हैं, **परन्तु यह समस्त प्रकरण कृपा-साध्य है।**

प्रारब्ध-भोग का दूसरा आयाम है, कि जब **हम ईश्वर-विमुखता में अंकित हुए प्रारब्ध को पुनः ईश्वर-विमुखता में ही देखते हैं।** अहं में देखते हैं, तो वह अहं सात प्रकार का है। आप स्वयं को स्वयं ही परखिए। रोज़ स्वयं के साथ बैठिए और निर्णय करिए, कि किस प्रकार के अहं में आप जी रहे हैं। आपके अहं के प्रकार से आपको अपने जीवन की धाराओं का स्वतः ज्ञान हो जाएगा, कि आप किस प्रकार का जीवन जी रहे हैं। **शास्त्रकारों ने उस अहं को सतोगुणी, रजोगुणी व तमोगुणी तीन वर्गों में बांटा है। जिनमें चार तमोगुणी अहं है, दो रजोगुणी और एक सात्विक अहं है।**

सबसे निम्नतम श्रेणी का तमोगुणी अहंकार है और उसका पहला प्रकार है, **कि यह प्राप्ति मैंने की है और अपने लिए की है।** उसका प्रतिफल होता है, कि वह प्राप्ति आपके लिए अधूरी रहती है, तड़पाती है और आपके परिवार वालों को भी विक्षिप्त रखती है। मैं एक दृष्टान्त देकर अपनी बात स्पष्ट करूँगा। कोई एक सिद्ध पुरुष थे। उनके जिज्ञासु शिष्य ने अपने गुरु से कहा, कि मुझे जन्म-जन्मान्तरों का कोई भूखा-नंगा दिखाओ, तो महात्मा

एक दिन उसे एक झोंपड़ी के पास ले गए और वहाँ जाकर भिक्षा के लिए पुकारा। झोंपड़ी के बाहर वे दोनों गुरु-शिष्य खड़े हैं और झोंपड़ी के अन्दर से लड़ाई-झगड़े व गाली-गलौच की आवाज़ें आ रही हैं। वे सुनते हैं कि उस परिवार के चार सदस्य हैं—पति, पत्नी, एक बेटा व बेटी तथा उनके पास तीन रोटियाँ हैं। गृहस्वामी कह रहा है, कि मैं कमा कर लाया हूँ इसलिए मैं दो रोटियाँ खाउँगा और शेष एक में से तुम तीनों खाओ। पत्नी कह रही थी, कि मैं सारा दिन काम करती हूँ, अतः मैं एक रोटी खाऊँगी और तुम तीनों शेष दो रोटियाँ खाओ। अब उन चारों में रोटियों के बँटवारे पर झगड़ा हो रहा था। गुरु ने पुनः भिक्षा के लिए पुकारा, तो गृहस्वामी लाठी लेकर आया और महात्मा को बुरा भला कहने लगा कि हमारा स्वयं का तो पूरा नहीं पड़ रहा ऊपर से ये भिखमंगे कहाँ से आ गए। उसने गुरु-शिष्य को अपमानित करके वहाँ से निकाल दिया। महात्मा शान्त स्वभाव के थे। उन्होंने शिष्य को बताया, कि बेटा! यह जन्म-जन्मान्तरों का भूखा-नंगा है। इसको अपनी प्राप्ति का स्वयं भी भोग नहीं होगा और इसके परिवार को भी नहीं होगा। ये तो रोटियाँ थीं, इसे चाहे सोने की शिलाएँ भी मिल जाएँ, तो भी यह भोग नहीं कर सकता,। इसके घर में बंटवारे के लिए क्लेश ही रहेगा। आज यदि यह हमें कुछ भी न देता और मात्र क्षमा मांग लेता, तो भी यह हमारा आशीर्वाद पा लेता और यदि हमें एक आधी रोटी दे देता, तो आज ही हम इसका प्रारब्ध बदल देते। क्योंकि यह पूर्णतः ईश्वर-विमुख है, अतः संत की शक्ति को नहीं समझता। इसके द्वार पर इसका भाग्य खड़ा था, लेकिन इसने उसे ठोकर मार दी। इसमें घनीभूत अहंकार व जड़ता छिपी है, कि **'मैंने किया है और अपने लिए किया है'** इसलिए यह जन्म-जन्मान्तरों तक ऐसा ही रहेगा। यह तमोगुणी अहं का निम्नतम रूप था।

दूसरा तमोगुणी अहंकार है **कि 'मैंने किया है और मैं इतना ही कर सकता हूँ, मुझमें बस इतनी ही शक्ति है।'** मैं एक कहानी के दृष्टान्त द्वारा इसे भी स्पष्ट करूँगा। पंजाब में मरासी होते हैं। वे गरीब लोग होते हैं, स्वांग करते हैं और जो थोड़ा बहुत मिल जाता है उसी में गुज़ारा करते हैं। एक

बार किसी मरासी और मरासिन के घर रात को चोर आ गए। रात के अंधेरे में वे खाली बर्तनों को टटोलने लगे, तो खड़खड़ाहट हुई। मरासी ने रजाई से मुँह निकाल कर कहा कि भाई साहब! तुम यहाँ व्यर्थ ही समय नष्ट कर रहे हो, यहाँ तो दिन में कुछ नहीं मिलता, फिर आपको रात के अन्धेरे में क्या मिलेगा? तो चोर बिचारे चले गए। पहले व्यक्ति के घर में साधु आया, तो उसने उसे अपमानित करके निकाला। दूसरे मरासी के घर चोर आए, तो उसने उन्हें ससम्मान वापिस भेजा, क्योंकि वह आश्वस्त था कि मैंने किया है और बस इतना ही किया है। चोर क्या ले जाएँगे।

तीसरा तमोगुणी अहंकार होता है, कि **'मैंने किया है और सब प्रकार से किया है** अर्थात् छल से, बल से, धोखे से, बेइमानी से सब प्रकार से किया है। ऐसे व्यक्तियों के पास धन-सम्पदा जायदाद डिग्रियाँ, पद आदि होंगे, लेकिन अन्तर्मन में वे हमेशा भयभीत ही रहेंगे। अपनी शक्तियों को सम्भालने की शक्ति उनमें कभी नहीं होगी, जब कोई व्यक्ति भयभीत होता है, तो वह भोग कभी नहीं कर सकता। आनन्द का तो प्रश्न ही नहीं उठता। तमोगुणी अहंकार का चौथा रूप है, कि **मैंने किया है और सब अच्छे उपायों से किया है।** मैंने किसी का कुछ बुरा नहीं किया। कुछ लोग बहुत डींग हांकते हैं, कि पता नहीं मेरे साथ ऐसा क्यों होता है, मैंने तो हमेशा शुभ-कर्म ही किए हैं। अपने कर्मों के स्वयं ही निर्णायक बन जाते हैं। वे ईश्वर को याद नहीं करते व कहते हैं, कि ईश्वर का ध्यान क्यों करना है, शुभ कर्म करने चाहिए। उन्हें कर्म की परिभाषा का तो ज्ञान नहीं है तो वे तथाकथित कर्मों द्वारा बहुत कुछ एकत्रित कर लेते हैं, परन्तु उन प्राप्तियों को न वे स्वयं भोगते हैं और न किसी को भोगने देते हैं। वे कृपण होते हैं और सब कुछ होते हुए भी घसियारों की तरह जीवन व्यतीत करते हैं। धन का संचय और बढ़ाना ही उनका भोग और विलासिता होती है। यहाँ तक कि उनकी मृत्यु के बाद भी उनके द्वारा एकत्रित सम्पत्ति को कोई भोग नहीं पाता। तो ये चारों तमोगुणी अहंकार थे, यहाँ कर्मों का कारण व कर्त्ता उनकी मानवीय बुद्धि होती है और कर्म करने के पीछे उनकी वृत्ति **अस्थिर, अशान्त व अशक्त मानवीय-मन**

की होती है। इन चारों अहंकारों में ईश्वर की कोई चर्चा ही नहीं होती।

रजोगुणी अहंकार दो हैं। **पहला, मैंने किया है और ईश्वर की कृपा से किया है,** उसके तहत आपको जो अभीष्ट की प्राप्ति होगी उसका आप भोग कर सकते हैं, लेकिन उसमें आनन्द नहीं होगा, क्योंकि आपके अहं की जड़ता उसमें है। ईश्वर की थोड़ी सी दखलअन्दाजी से आपमें कर्त्ता-भाव होते हुए भी आप उन प्राप्तियों का भोग तो कर पाते हैं, लेकिन आनन्द फिर भी नहीं मिलेगा। जैसेकि गाँव से कोई छोटा मकान छोड़कर आया और शहर में आकर आलीशान मकान बना कर रहने लगा। वह उसका भोग भी कर रहा है, लेकिन कोई पूछता है, कि भैया कैसे हो, तो उदास मन से उत्तर देता है, कि ठीक हैं, पर गाँव में तो कभी कोई मिलने भी आ जाता था, यहाँ बोर हो रहे हैं। यहाँ अभीष्ट-प्राप्ति का भोग हो रहा है, लेकिन आनन्द नहीं आ रहा। रजोगुणी अहंकार का दूसरा रूप है, कि **मैंने किया है और ईश्वर ने मुझसे करवाया है,** तो आपको उस प्राप्ति का भोग भी मिलेगा और आनन्द भी मिलेगा। पर ध्यान रहे, कि आपको केवल उसी प्राप्ति का भोग और आनन्द मिलेगा। रजोगुणी अहं में पहला था, कि ईश्वर की कृपा से किया है और दूसरा ईश्वर ने करवाया है।

अहंकार का सातवाँ रूप है, सतोगुणी अहंकार—**मैंने कुछ नहीं किया। तुम मुझसे कुछ भी क्यों करवाते हो,** तुम्हें कोई और नहीं मिलता। तुम स्वयं निठल्ले हो, ठोस-घन-शिला की नाईं, मुझे भी तू आराम से जीने दे। जब कोई जन्मों-जन्मान्तरों से कष्ट सहता-सहता पुनः-पुनः आसक्तियों को छोड़कर जन्मता-मरता रहता है, तो किसी जन्म में वह सतोगुणी अहं वाला बागी हो जाता है। जब कोई क्रिमिनल केस लम्बा खिंच जाए और वकील उसको चाट जाए, तो मुज़रिम वकीलों को खदेड़कर स्वयं बागी होकर अदालत में पेश हो जाता है, कि मुझसे पूछ मैंने किया क्या है? जब वह मानसिक स्थिति आ जाए और आप 'गीता' उठाकर स्वयं उस ईश्वर से कहें, कि रख अपनी गीता पर अपने दोनों हाथ और मेरी ओर देखकर बता, कि मैंने क्या किया है? **हे माधो! तू गीता का रचयिता है, तू अपने दोनों**

हाथ गीता पर रख के बता मैंने क्या किया है ? उसके हाथ काँप जाएँगे, क्योंकि सब कुछ उसी ने किया है। सब उसकी ही लीला थी। अरे! सब कुछ तो तूने ही करवाया है। मुझसे तो बस गफलत हो गई, कि यह मैंने मान लिया, कि मैंने किया है और मेरी उस गलती के कारण भी प्रभु तुम ही हो :—

''रहम की न होती जो आदत तुम्हारी,
तो दुनिया न करती इबादत तुम्हारी,
गुनहगार गर तुमने बक्शे न होते,
तो सूनी ही रहती अदालत तुम्हारी।
गुनाह करना मेरी आदत थी,
करके कबूल करना मेरी शराफत थी,
मैं करता गया, तूने रोका नहीं,
मैंने समझा, इसमें इज़ाज़त तुम्हारी।''

मैं आज तक गीता पर हाथ रखकर झूठ बोलता रहा, कि मैंने यह किया है, यह नहीं किया है, मगर तू तो सच बोल! यह स्थिति जब आ जाती है, तो उसके लिए भगवान श्रीराम ने कहा है :—

''सन्मुख होहि जीव मोहि जबहिं, कोटि जन्म अघ नासहिं तबहिं।''

दैवीय अधिनियमानुसार जीव जब मेरे सम्मुख होता है, तो मैं उसके कोटि जन्मों के पाप इसलिए नष्ट कर देता हूँ, क्योंकि पाप उसने किए ही नहीं होते! मात्र गफलत में स्वयं को पापी-पुण्यी मान लिया होता है। इस सतोगुणी अहंकार की तीन धाराएँ हैं, तीन स्वरूप हैं। **पहला, मैंने किया है सब कुछ, क्योंकि तूने करवाया है। दूसरे, मैंने कुछ नहीं किया, सब कुछ तूने किया है। यहाँ वह निमित्त भी नहीं बनता और तीसरे सात्विक अहं में हैसियत इतनी उच्च हो जाती है, कि वह ईश्वर-तुल्य हो जाता है :—**

''खुदी को कर बुलन्द इतना,
कि हर तकदीर से पहले
खुदा बन्दे से खुद पूछे,
बता तेरी रज़ा क्या है ?''

संत की हर गतिविधि ईश्वर की प्रदक्षिणा व उपासना होती है। उसके विषय-भोग ही पूजा-प्रकरण बन जाते हैं, उसके श्रीमुख से निःसृत हर शब्द शास्त्रीय होता है। सत्य को धारण करने वाली उसकी वाणी को सत्य धारण कर लेता है। यहाँ कर्मों व प्राप्तियों की आवश्यकता ही नहीं होती। उन्हें मात्र भोग व आनन्द मिलता रहता है और सम्पूर्ण महा-ब्रह्माण्ड के भोग का आनन्द उन्हीं के लिए होता है। ईश्वर उनके प्रारब्ध को हमेशा के लिए समाप्त कर देते हैं क्योंकि मल, विक्षेप समाप्त होने से आवरण हमेशा के लिए हट जाता है। इसलिए आप यदि अपने दिन का कुछ भाग इस सतोगुणी अहंकार को विकसित करने में लगा दें, तो आप कर्म-बन्धन से मुक्त हो सकते हैं और अति आनन्दमय दिव्य-जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(9 नवम्बर, 2003)

भवरोग

आज की संध्या में हम सब परम सौभाग्यशाली हैं, कि एक गृहस्थ-मन्दिर में ब्रह्म-चर्चा के लिए एकत्रित हुए हैं। आप सब जिज्ञासुओं की परम प्रेरणा से आज यहाँ मैं एक चिरन्तन विषय रखूँगा, विषय है—**'भवरोग'**। यह एक ऐसा महारोग है, जिसके कारण युगों-युगान्तरों से पीड़ित हुए, हम जन्म-जन्मान्तरों में भटक रहे हैं। यदि पूरे महाब्रह्माण्ड में कोई वृहद्‌मन्दिर है, जहाँ साक्षात् शिव-शक्ति का वास है, तो वह **'गृहस्थ-मन्दिर'** ही है। कौन सा गृहस्थ, **'मन्दिर'** है, उसके लक्षण क्या हैं? वहाँ कोई झण्डा नहीं लगा होता, वहाँ मन्दिर अथवा गुरुद्वारों की अन्य औपचारिकताएँ भी नहीं होतीं, गृहस्थ-मन्दिर एक झोंपड़ी भी हो सकती है और आलीशान महल भी हो सकता है। किसी भवन या निवास के बाह्य प्रकटीकरण अथवा भौतिक साज़-सज्जा से हम उस गृहस्थ की भव्य पावनता अथवा मन्दिरत्व का अनुमान नहीं लगा सकते। **गृहस्थ-मन्दिर का सबसे बड़ा लक्षण यह है, कि वहाँ पति-पत्नी का आपस में समन्वय होता है।** पति-पत्नी के पारस्परिक सामंजस्य की गृहस्थ-मन्दिर में वही भूमिका होती है, जो मानव-देह में मन और बुद्धि के समन्वय की होती है। अपने **'मन-बुद्धि'** शीर्षक प्रवचन में इसका मैं सविस्तार वर्णन कर चुका हूँ।

जिस प्रकार मन-बुद्धि के पारस्परिक समन्वय से हुए कृत्य सद् होते हैं, उसी प्रकार पति-पत्नी के पारस्परिक सामंजस्य से जो भी कृत्य होते हैं, वे उनके परिवार, समाज, देश और यहाँ तक कि सम्पूर्ण विश्व के लिए भी कल्याणकारी ही होते हैं। पति-पत्नी का पारस्परिक सामंजस्य ही उस घर

में सुख, संतोष, शान्ति, समृद्धि, स्वास्थ्य, स्वजन व सत्संग के रूप में प्रतिफलित होता है और महालक्ष्मी, महासरस्वती तथा महाशक्ति दुर्गा अपनी समस्त विभूतियों एवं स्वरूपों के साथ प्रकट होकर निरन्तर वहाँ विराजमान रहती हैं। ऐसे कुलीन परिवार के सभी सदस्य सूर्योदय से पहले बिस्तर त्यागकर, अपनी-अपनी रुचि व प्रभु-प्रेरणानुसार स्नान-ध्यान, चिंतन-मनन, जप-तप, दान-पुण्य, योगाभ्यास-प्राणायाम, यज्ञ-हवन, स्वाध्याय, समाज-सेवा आदि विभिन्न सात्विक कार्यों में लग जाते हैं। उस घर में अविरल सत्संग, अतिथि-सत्कार, बुजुर्गों का सम्मान, व सन्तों का आवागमन चलता रहता है। वहाँ दुर्व्यसनों का सेवन तो क्या, वास भी नहीं होता, वहाँ सुगन्धि होती है, सुरभि होती है, दिव्यता होती है, वहाँ लोगों का बैठने का मन करता है, क्योंकि उन्हें शान्ति मिलती है।

आज हमें ऐसे ही मन्दिरों, गुरुद्वारों और पावन-धामों की आवश्यकता है। जो गृहस्थ, मन्दिर नहीं होगा, वह सारे समाज के लिए हानि व क्लेश का हेतु होगा और वहाँ यह महारोग अवश्य व्याप्त होगा, जिसे **'भवरोग'** कहा जाता है। भवरोग अन्य दैहिक संक्रामक रोगों से कहीं अधिक भयंकर और शीघ्र फैलने वाला है। **इस रोग की एक चमत्कारिक बात यह है, कि इसके रोगी को स्वयं को रोगी मानने और रोग को पहचानने में अनेक जन्म लग जाते हैं।** परम ईश्वरीय-कृपा व सद्‌गुरु-कृपा से ही भवरोगी को अपने रोग का आभास होता है और वह सद्‌गुरु रूपी वैद्य की शरण में जाता है। आज मैं भवरोग के कारण, लक्षण व निदान के विषय में बताऊँगा, आपकी परम एकाग्रता व श्रद्धा वांछनीय है।

भवरोग का एकमात्र कारण है—**देहाध्यास व देहाधिपत्य,** इन्हीं दोनों कारणों से भवरोग की उत्पत्ति होती है, जिसका विस्तृत वर्णन मैंने **'देहाध्यास'** शीर्षक प्रवचन में किया है। जैसे ही हमने यह माना, कि 'मैं यह देह हूँ' अथवा 'यह देह मेरी है' तो समझिए हम अपनी 'कारण-देह' उस सच्चिदानंद ईश्वर से विमुख हो गये। मात्र स्थूल-देह के अध्यास में भी हम अपनी भस्मी, अपने अन्तिम भविष्य को जानबूझकर या नासमझी में उपेक्षित

कर देते हैं एवं इस महारोग से ग्रसित हो जाते हैं। मानव की स्वयं में **स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण** तीन देह हैं। स्थूल-देह हमारी नाम-रूप की देह है। जब हम स्वयं को इस देह से पहचानते हैं, कि मैं अमुक-अमुक हूँ, उस समय हम अपनी इस देह के अस्तित्व को मानते हैं। इस नाम-रूप की स्थूल-देह पर आधारित है हमारा समस्त सूक्ष्म-मण्डल, जिसमें हम भी होते हैं। हमारी नाम-रूप की स्थूल-देह हमारी सूक्ष्म-देह का एक अंश मात्र है, परन्तु वह हमारी समस्त सूक्ष्म-देह का आधार है। यदि हम स्वयं को उसमें से निकाल दें, तो हमारे सहित हमारा समस्त सूक्ष्म-जगत भी समाप्त हो जाता है। तीसरी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है—हमारी **कारण-देह,** जो स्वयं सच्चिदानंद ईश्वर है। स्थूल-देह व सूक्ष्म-देह दृश्यमान है लेकिन हमारी कारण-देह अदृश्य है, निराकार है, लेकिन इसी के कारण हम और हमारा समस्त सूक्ष्म-मण्डल दृश्यमान होता है। कारण-देह से हम हैं, हमारी वजह से **'कारण'** नहीं है। हम रहें न रहें, कारण-देह चाहे दिखाई न दे, हम उसे मानें या न मानें, लेकिन वह रहती है। वह अजर-अमर है और वह हमारी मान्यता की मोहताज नहीं है।

हम सब विश्व के मानवों व प्राणियों का 'कारण' एक ही है, चाहे हम किसी भी धर्म, जाति, रंग, रूप, व्यवसाय या हैसियत के हों। उसी एक **'कारण'** से हम सबका निर्माण, पालन व संहार होता है और दूसरी ओर **हमारा सबका अन्तिम, निश्चित, परिलक्षित व प्रत्यक्षदर्शित भविष्य भी एक ही है और वह है—'हमारी खाक या भस्मी'।** हम सब चाहे जो कुछ भी बन जायें, जो भी एकत्रित कर लें, राजा हों या वज़ीर, रंक हों या फकीर, शासक हों या शासित, नौकर हों या मालिक, नेता हों या आम व्यक्ति, स्त्री हों या पुरुष—हम सबको अन्त में राख या मिट्टी ही तो बनना है। हम समस्त विश्व के मानवों का **'कारण'** एक ही है और हम सबका अन्तिम भविष्य भी एक ही है।

'कारण' और 'भस्मी' यह दोनों common factor हैं, कितना बड़ा साम्यवाद है। इस सत्य की अनुभूति केवल भारतीय मनीषियों को हुई। अतः

भारत जैसा साम्यवादी देश सम्पूर्ण विश्व में अन्य कोई नहीं है, यह हमारा आध्यात्मिक साम्यवाद है। विश्व के अन्य तथाकथित साम्यवादी देश जिस भौतिक साम्यवाद की चर्चा करते हैं, वह तो कभी हो ही नहीं सकता। क्या हम सबकी शकल एक जैसी हो सकती है? हमारा ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, ख्याति एक जैसी हो, यह सम्भव नहीं है। यदि आप दो व्यक्तियों का धन एक जैसा भी कर दें, लेकिन उनका ऐश्वर्य पृथक-पृथक होगा। अतः भौतिक साम्यवाद मात्र बुद्धि के दिवालियेपन का द्योतक है, जो असम्भव है। **यदि हम सब अपने परम-कारण ईश्वर को मान लें और अपने अन्तिम भविष्य भस्मी को आत्मसात् कर लें, तो इस भारतीय आध्यात्मिक साम्यवाद से हमें ज्ञात हो जायेगा, कि सारे मानवों में जो विशिष्ट भिन्नताएँ और अनेकरूपताएँ हैं, उनके पीछे भी एक समान रहस्य है, जिसकी अनुभूति मात्र ईश्वरीय कृपा एवं ज्ञान से सम्भव होगी। हमारे सबसे बड़े साम्यवादी नेता हैं—भगवान शंकर, जो भस्मीभूत रहते हैं लेकिन विश्वनाथ हैं, पशुपतिनाथ हैं, अतः संसार के समस्त प्राणियों के स्वामी हैं।** आज प्रथम बार मैंने इस आध्यात्मिक साम्यवाद का वर्णन आपके सम्मुख किया है।

भस्मी हमारी देह का भौतिक सत्य है। हम चाहे उसे अनदेखा कर दें, उपेक्षित कर दें, लेकिन वह अवश्य बनेगी और उधर **'कारण'** ईश्वर है। उसे हम किसी नाम, अनाम, रूप, अरूप में मानें या न माने, वह हमारी देह का आध्यात्मिक सत्य है। **हम ईश्वर को नकार सकते हैं, उससे विमुख हो सकते हैं, लेकिन ईश्वर कभी हमसे विमुख नहीं होता।** वह अपने को न मानने वालों को भी वायु, जल, धरती, आकाश आदि देता है, परन्तु दुर्भाग्यवश अधिकतर हम मानव अपने आध्यात्मिक एवं भौतिक दोनों सत्यों से विमुख रहते हुए जीवन में निरर्थक और नकारात्मक भागते रहते हैं और इसी कारण भवरोग से पीड़ित हो जाते हैं। तो **भवरोग का प्रथम लक्षण यह है, कि भवरोग का रोगी भागता रहता है।** वह अपने **'कारण'** और **'भस्मी'** दोनों को जानबूझकर या अनजाने में उपेक्षित करता हुआ प्रतिस्पर्धा की भावना से ग्रस्त, निरन्तर भागता रहता है। वह स्वप्न में भी भाग-दौड़ करता

रहता है, सोते हुए भी समय व्यर्थ नहीं करता और स्वयं को बहुत कर्मठ समझता है। उसे भस्मी दिखाई ही नहीं देती।

रोग के कई स्तर होते हैं, एक तो सामान्य स्तर होता है जहाँ कुछ भी पता नहीं चलता। जैसेकि देह में कोई रोग होने पर प्रारम्भ में देह की रोग-प्रतिरोधक शक्ति संघर्ष करके रोग के लक्षणों को देह में प्रकट नहीं होने देती और व्यक्ति रोगी होते हुए भी स्वस्थ व सामान्य दिखाई देता रहता है। जैसेकि लगातार धूम्रपान करने वालों या मदिरा पीने वालों को एकदम से अल्सर या कैंसर नहीं होता, शुरू हो जाता है। लेकिन देह की रोग-प्रतिरोधक क्षमता क्षीण होने पर कालान्तर में प्रकट होता है। उसके लक्षण देह में दिखाई देने लगते हैं, कि पेट में जलन होती है, भूख नहीं लगती, मुँह में खट्टा पानी आता है, आदि-आदि। इसी प्रकार भवरोग का भी एक सामान्य स्तर है, जिसमें प्रारम्भ में कुछ पता नहीं चलता। लेकिन जब यह रोग अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचता है, तो इसके लक्षण प्रकट होने शुरू हो जाते हैं, कि रोगी निरन्तर तथाकथित कर्मठ होकर भागता रहता है और भागते-भागते ही मर जाता है।

सबसे बड़ा अंधकार अज्ञान का अंधकार है। उसके सामने भौतिक अंधकार तो कुछ भी नहीं है। **भवरोगी का दूसरा लक्षण यह है, कि उसे अँधेरा ही अँधेरा नज़र आता है। वह आँखें खुली होने पर भी देख नहीं पाता। हम सभी प्राणी उसी अज्ञानाधंकार में ही जी रहे हैं और अंधाधुंध भाग रहे हैं।** क्यों भाग रहे हैं, कहाँ भाग रहे हैं, कब तक भागते रहेंगे, क्या पाना चाहते हैं, जो पाना चाहते हैं वह मिल भी जाये, तो क्या हो जायेगा? हमारे पास ठहर कर विचार करने, जानने का न तो समय है और न ही हम जानना चाहते हैं। हम सभी अच्छी तरह से जानते हैं, कि हमारा जन्म, शिक्षा, विवाह, संतान, व्यवसाय, पद, मृत्यु और जीवन का कुछ भी हमारे हाथ में नहीं है। **हमें प्रारब्धानुसार ही सब प्राप्तियाँ होती हैं या हम जीवन में कुछ खो देते हैं। लेकिन हम इस परम सत्य से आँखें मूँदे रहते हैं। इसीलिए अज्ञानाधंकार में भटकते रहते हैं और अपने परम कारण सच्चिदानंद**

ईश्वर को नकार कर स्वयं जीवन के कर्त्ता-धर्त्ता बनने की मूर्खता करते हैं। तो भवरोगी का अन्य लक्षण यह है, कि जीवन में करता सब कुछ ईश्वर है, लेकिन वह भ्रमित हुआ यह समझता और मानता रहता है, कि जो कुछ भी उसे प्राप्त हुआ है या उसने खोया है, वह उसके किये गये कर्मों के कारण है। इसीलिए जब भी उसे कुछ प्राप्ति होती है, तो उसमें अहंकार आ जाता है और जब कुछ खो जाता है, तो उसमें गहन निराशा व्याप्त हो जाती है। यही नहीं दैवीय कानून के अंतर्गत वह उन प्राप्तियों का भोग भी नहीं कर पाता। जब बहुत प्राप्तियों के बाद भी उसे भोग और आनन्द नहीं मिलता, तो वह इसका कारण जानने का प्रयत्न किये बिना और-और की चाह में अधिक-अधिक प्राप्त करने के लिये भागता रहता है। जब हम ईश्वर के विमुख होते हैं, तो दैवीय शक्तियों द्वारा चुपचाप हमसे हमारी अपनी ही प्राप्तियों व शक्तियों को संभालने की शक्ति छीन ली जाती है। वे प्राप्तियाँ ही हमारे तनाव, भय और विक्षेप का कारण बनी हुईं हमें भोग जाती हैं तथा खोखला कर जाती हैं।

भवरोगी अपने परम कारण ईश्वर से **विमुख सा** रहता है और यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है, कि बिना कारण के हम रह ही नहीं सकते। अपने महाकारण ईश्वर को उपेक्षित करते हैं, तो हम स्वयं कारण बन जाते हैं और कर्त्ता भी स्वयं बनते हैं, इसलिए हमारा पाना और खोना दोनों ही हमारे लिए घातक हो जाते हैं। आज चारों ओर जो भय, विक्षेप, ईर्ष्या, तनाव, रोग, द्वेष और वैमनस्य व्याप्त है, उसका एकमात्र कारण यही है, कि हमने उस महाकारण को उपेक्षित करके स्वयं को कारण मान लिया है। **मुझे यह करना है, अपने देश, समाज, परिवार और यहाँ तक कि विश्व के भी हम ठेकेदार बन जाते हैं तथा स्वयं को भवरोगी न मानकर अपने को अत्यन्त कर्मठ समझते हैं, कितना महादुर्भाग्य है।** अरे! आप ईश्वर को नहीं मानते, न मानिए! आप अपनी भस्मी को कैसे भूल सकते हैं? आप अच्छी तरह जानते हैं, कि अगला पल, अगला श्वास आपके हाथ में नहीं है, कल का सूर्योदय आप देखेंगे भी या नहीं इसकी कोई सुनिश्चितता नहीं है। लेकिन

फिर भी वर्षों की योजनाएँ बनाते हैं और अपनी भस्मी को भूल कर अपनी ही धरोहर शक्ति, ज्ञान, ऐश्वर्य, ख्याति तथा सौन्दर्य के लिए भागते रहते हैं। भस्मी को नहीं त्यागना, नहीं तो भागते-भागते ही मरेंगे। व्यास-गद्दी सच बोलती है, क्योंकि सही चिकित्सक मरीज़ की हैसियत और रुतबे की परवाह किये बिना उसे सही दिशा-निर्देश देता है।

भवरोग का अन्य लक्षण यह है, कि इस रोग का रोगी अपनी देह की सुकृतियों को भी विकृति समझता रहता है। जैसा हमने पहले भी बताया था, कि उस सच्चिदानंद ईश्वर की सुन्दरतम, विलक्षणतम, भव्यतम, चमत्कारिक रचना है यह **मानव-देह**। प्रभु इसे विकृत क्यों करेंगे? प्रभु ने इसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार के रूप में विभिन्न सुकृतियों से सुसज्जित किया है, लेकिन भवरोगी के लिए ये विकृतियाँ बन जाती हैं। जैसेकि बीमारी में पौष्टिक भोजन भी विष हो जाता है। इसी प्रकार भवरोगियों के लिए ईश्वर की सुकृतियाँ भी विकार बन जाती हैं। मैं डंके की चोट पर व्यास-गद्दी से कहता हूँ कि प्रभु ने आपका एक विशिष्ट ढांचा बनाया है, आप अपनी ही चाल चलिए। प्रभु ने आपको जो बनाया है, वही बने हुए आप उस प्रभु की अनुभूति के अधिकारी हैं। ब**हुत सुधार करने की कोशिश मत करिए। आप सुधरे-सुधराये हैं। अरे! आप यह बताइए, कि आपके पास क्या स्वयं को सुधारने का समय है? आपको अगले क्षण की तो सुनिश्चितता नहीं है।** तो स्वयं को सुधारने व अपने छल-छिद्रों को भरने में समय कैसे व्यर्थ कर सकते हैं? उदाहरणतः—एक गिलास में अगर छेद हो, तो क्या उसमें पानी टिक सकता है? हम कितना भी प्रयास करें यह संभव नहीं हो पायेगा। अरे! उस छेद वाले गिलास को पानी से भरे ड्रम में डाल दो, तो उस छेद से ही जल भरना आरम्भ हो जायेगा और ड्रम में पड़ा गिलास हमेशा भरा ही रहेगा। यदि हम अपने छल-छिद्रों को भरने में ही लगे रहे, तो इसी में जीवन बीत जायेगा, आप भी अपने छल-छिद्रों और तथाकथित विकृतियों का सदुपयोग कीजिए और ईश्वर रूपी महासागर में कूद जाइए, तो यह काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि सब दिव्य उत्प्रेरक

बनकर ईश्वर-प्राप्ति के साधन बन जायेंगे।

दुर्भाग्यवश, आज अध्यात्म भी व्यापार बन गया है, इसलिए सत्य ओझल हो गया है। अतः भवरोग के निवारण के लिए ऐसे सद्‌गुरु रूपी वैद्य के पास जाना चाहिए, जिसे अपना कोई भी स्वार्थ या लोभ न हो। जो सुत, वित्त एवं लोक तीनों एषणाओं से मुक्त हो, जो अविरल अपने **'कारण'** से जुड़ा हुआ हो और चौदह भुवनों का स्वामी होते हुए भी भस्मीभूत हो। एक चिकित्सक होने के नाते मैं अपना अनुभव बता रहा हूँ, कि मेरे पास बहुत से ऐसे मनोवैज्ञानिक रोगी आते थे जो तथाकथित गुरुओं द्वारा दिग्भ्रमित किए गये थे। वे इतने विधि-निषेध बता देते हैं, कि कोई उनका पालन कर ही नहीं सकता और ये विकृतियों की और पुष्टि कर देते हैं जिससे स्वयं को विकृत, कामी, लोभी, क्रोधी व मोही आदि समझने का असत्य जन्म-जन्मान्तरों तक हमारे संस्कारों में रचा-बसा रहता है। जब अध्यात्म व्यापार बन जायेगा, तो मानव के लिए विष बन जायेगा। गुरु महाराज ने कहा है :–

''बाँधन की बिधि सब कोई जाने, छूटन की न कोय''

छूटने की विधि वही बता पायेगा, जो स्वयं छूटा हुआ होगा। नहीं तो वह आपके भवरोग को और बढ़ा देगा और गलत इलाज करेगा, जिससे उसकी रोज़ी-रोटी चलती रहे। सद्‌गुरु भवरोग को सही तौर पर पहचान लेता है, कि इसे प्रकाश में भी अंधकार दृष्टिगत हो रहा है। ईश्वर की दी हुई सुकृतियों में भी यह विकृतियाँ देख रहा है तथा देह और देह के नश्वर सम्बन्धों के तनाव में जी रहा है। इसने सम्बन्ध भी वहाँ बनाये हैं, जो स्वयं अस्थिर हैं। **तो सद्‌गुरु इन अस्थिर और नश्वर बन्धनों से मुक्त करने के लिये अपने शिष्य को 'कारण' एवं 'भस्मी' के स्थिर बंधनों में बाँध देता है।**

हम सब बंधनों और सम्बन्धों के बिना नहीं रह सकते। हमारी स्थूल-देह हमारे सुख का निधान है और इस पर आधारित सूक्ष्म-जगत हमारी क्रीड़ा-स्थली है और कारण-देह हमारा सत्+चित्त+आनन्द स्वरूप है। जो **'कारण'** से विमुख हुआ वह समझो आनन्द से वंचित हो गया।

उसकी भौतिक देह भी उसको सुख नहीं दे सकती। अपनी भौतिक स्थूल-देह में हम अपनी पाँचों ज्ञानेन्द्रियों से जो सुख लेते हैं, वह सुख भी हम तभी ले सकते हैं, जब हम अपनी कारण देह आनन्द के सम्पर्क में रहते हैं। **ध्यान रहे, ईश्वर हमसे कभी विमुख नहीं होता। हम सब आनन्द-स्वरूप ही हैं, लेकिन भवरोग से ग्रसित होने के कारण स्वयं को मात्र स्थूल-देह मानते हुए हम अपने 'कारण' से स्वयं को विमुख सा कर देते हैं और हमारा आनन्द होते हुए भी आच्छादित हो जाता है।** भवरोगी हमेशा दुःखी ही रहता है, उसे चाहे जितनी भी सुख सुविधाएँ दे दो, कितने सुन्दर दृश्य दिखा दो, कितने ही स्वादिष्ट व्यंजन खिला दो, वह विक्षिप्त रहता हुआ आलोचना ही करता रहता है। **उसकी इन्द्रियाँ सुख देने की बजाय उसे दुःख देती हैं। होता है सुख, लेकिन आनन्द से विमुख सा होने के कारण उसे दुःख ही दुःख मिलता है।**

स्थूल-देह में ईश्वर ने हमें सुख का घर ज्ञानेन्द्रियाँ दी हैं, लेकिन आनन्द देहातीत है, जो अदृश्य एवं निराकार **कारण-देह** का है। साथ ही यह हम अच्छी तरह जान लें, कि दैहिक सुख भी हमें आनन्द के सम्पर्क से ही मिलता है। भवरोगी अपने **कारण** आनन्द से विमुख सा रहता है और इसकी स्वस्थ देह सुख-साधनों के होते हुए भी सुख नहीं दे पाती। तो भवरोग निवारण के लिए तथा कारण जानने के लिए यह सद्गुरु के पास नहीं जाता, बल्कि प्राप्तियों के लिए और अधिक भाग-दौड़ आरम्भ कर देता है। सम्बन्ध, व्यापार, नौकरी, निवास-स्थान, व वस्तुएँ परिवर्तित करना शुरू कर देता है। इष्ट व गुरु बदलने लगता है। ज्योतिषियों और तांत्रिकों के चक्कर में पड़ जाता है। अतः ऐसे भवरोगी अपनी देह व देह पर आधारित समस्त जगत से असंतुष्ट रहते हैं। देह के साथ उनका सम्बन्ध इतना खराब हो जाता है, कि वे तरह-तरह के नशों और दुर्व्यसनों में पड़ जाते हैं ताकि कुछ देर के लिए अपने साथ लटकी इस देह से निजात पा सकें। परन्तु जब लौटकर देह में आते हैं, तो देह उनसे और घृणा करने लगती है।

सद्गुरु के पास जाकर कुछ भी छिपाना नहीं है, क्योंकि वह

त्रिकालदर्शी है। वह दूर बैठे हुए भी आपके भाव जान जाता है। जब कोई समर्पित होकर श्रद्धा-भाव से गुरु के समीप जाकर अपने रोग के सारे लक्षण प्रगट कर देता है, कि प्रभु मुझे ईर्ष्या है, द्वेष है, मैं लक्ष्यहीन अँधेरे में घूम रहा हूँ। तब सद्गुरु दो चीज़ें देता है—एक औषधि के रूप में और दूसरी टॉनिक के रूप में। औषधि रूप में वह कारण-देह से अवगत कराता है, कि ईश्वर तुम्हारा आनन्द-स्वरूप है। इस देह के सुख भी तुम तभी ले सकते हो, जब निरन्तर अपने उस आनन्द-स्वरूप के सम्पर्क में रहो। वह किसी भी तरह से और सब तरह से उसे **'कारण'** रूपी खूँटे से बाँध देता है और उसकी भाग-दौड़ को निर्जीव करने के लिए उसके सम्मुख भस्मी रख देता है, कि बेटा यही तेरा अन्तिम भविष्य है, जो आयेगा अवश्य पर कब आयेगा तू नहीं जानता। अतः सद्गुरु 'कारण' और **'भस्मी'** रूपी दोनों खूँटों से बाँध कर पहले भवरोगी को शान्त कर देता है। मैंने अपने **'सत्संग'** शीर्षक प्रवचन में सत्संग के तीन आयाम बताये थे—**शान्त, एकान्त और तत्त्व-चिंतन।**

सद्गुरु पहले अपने शिष्य को शान्त करके कीर्तन, प्रवचन, दृष्टिपात, स्पर्श किसी भी तरह से और सब तरह से उसे इन दो खूँटों से बांध देता है, कि पीछे जाओगे तो **'कारण'** है और आगे चेतन-भस्मी है। तो भवरोगी का इलाज आरम्भ हो जाता है। वह अपने शिष्य के स्वभाव व परिस्थितियों के अनुसार जप-तप, यज्ञ-हवन, प्राणायाम, स्वाध्याय, तीर्थयात्रा, दान-पुण्य इत्यादि रोगानुसार करवाता है, बशर्ते उसका स्वयं का कोई भी स्वार्थ न हो। यदि उसका अपना कोई स्वार्थ होगा, तो वह रोग को और लम्बा कर देगा। शिष्य को कई तरह से बाँध देगा, कि एकादशी में व्रत रखना, पूर्णिमा में पीपल के चक्कर लगाना, कार्तिक में गंगा-स्नान करना, सवेरे ब्रह्ममुहूर्त में स्नान किए बिना जल भी ग्रहण न करना आदि-आदि। **जो खुद खुला हुआ है वह सद्गुरु है।** जो स्वयं अपनी इच्छाओं और आसक्तियों में बंधे हैं, वे तथाकथित गुरु आपको भी बांध देंगे। कोई न कोई मार्ग बता देंगे, जैसाकि मैंने पहले भी बताया था, कि हमारे महापुरुषों ने कई मार्ग बताये हैं और **सभी मार्ग ईश्वर की ओर जाते हैं लेकिन ईश्वर तक कोई मार्ग नहीं जाता।**

ईश्वर तक पहुँचने के लिए आप जिस किसी भी मार्ग से चल रहे हैं चलिए ....चलिए....चलिए....लेकिन चलते....चलते....चलते....थककर, चक्कर खाकर, मूर्छित होकर जब ढह पड़ें और फिर आर्तनाद करें कि हे प्रभु! मैं तुम तक कभी नहीं पहुँच सकता। जब अपनी असमर्थता को उच्च स्वर से घोषित करते हुए आप बगावत कर देते हैं, कि अब मैं नहीं चलूँगा अब तो तुम आ जाओ, नहीं तो मैं यहीं मरूँगा। **तब इस स्थिति में मंज़िल चलकर स्वयं आपके पास आ जाती है और यही है मार्ग की पुष्टि। तो सद्गुरु उसे मार्ग नहीं, मंज़िल बताता है और उसके बाद भवरोग ठीक होना शुरू हो जाता है।**

भवरोग से हम सभी लोग जन्म-जन्मान्तरों से पीड़ित हैं। सद्गुरु अपने शिष्य को आहार और व्यवहार सम्बन्धी कुछ परहेज़ भी बताता है। जो लोग बहुत सम्बन्धों से घिरे रहते हैं उनका संग कम करना चाहिये, क्योंकि वे भवरोगी हैं। उतने ही सम्बन्ध रखिए जितनी आवश्यकता हो और सबसे बड़ा सम्बन्ध अपनी देह के साथ बना कर रखिए। नित्य देखते रहिए, कि कहीं आपकी देह आपसे घृणा तो नहीं करती। इसे जानने के लिए आप नित्य आधा घण्टा किसी एकान्त स्थान में बैठें और प्रभु के नाम का जाप करें। यदि आपकी भागने की इच्छा होती है, तो समझो आपकी देह आपके साथ बैठना नहीं चाहती, वह आपसे घृणा करती है। जब आपका अपनी देह से सम्बन्ध ठीक हो जायेगा, तो आपको बहुत से सम्बन्धों की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। मैंने **'देहाधिकार'** शीर्षक प्रवचन में इसका विस्तृत विवेचन किया है।

सद्गुरु औषधि देता है कारण की और टॉनिक देता है 'भस्मी' का, जिससे शरीर की रोग-प्रतिरोधक क्षमता बढ़े और पुनः रोग होने की संभावनाएं क्षीण पड़ जायें। सद्गुरु आहार, व्यवहार और निद्रा में संतुलन रखने की सीख देता है। ईश्वर के साथ निरन्तर जुड़े रहने के लिए शिष्य की क्षमता और योग्यतानुसार तथा आर्थिक, सामाजिक एवं पारिवारिक परिस्थितियों के अनुकूल उसे निश्चित परिमाण में सत्कार्यों में लगाता है।

भवरोग बहुत विस्तृत विषय है। चिकित्सा क्षेत्र में जितनी भी बिमारियाँ हैं उनका मूल कारण भवरोग ही है। जैसे, जिसमें जिम्मेवारी की भावना बहुत प्रबल होती है और जो यह समझता है, कि मेरे बिना मेरा परिवार, समाज व देश कैसे चलेगा, तो यह एक मानसिक वृत्ति भवरोग है, जिसका प्रकटीकारण देह में मधुमेह रोग के रूप में होता है।

भवरोग की विभिन्न विधाएँ दैहिक रोगों के रूप में प्रकट होती रहती हैं। हमने उत्तर काशी की गुफाओं में प्रभु-कृपा से मानव-मन की 171 वृत्तियों का दर्शन किया जो देह में रोगों के रूप में प्रकट होती हैं। आज भौतिक चिकित्सक देह के रोगों का इलाज करते समय मात्र बाहरी लक्षणों का इलाज करते हैं, लेकिन उस रोग का मूल कारण और आधार क्या है, यह नहीं जानते। वास्तव में **किसी भी रोग से छुटकारा पाने के लिए कारण और भस्मी रूपी—दो खूँटों से बंधना आवश्यक है।** यदि आप सद्गुरु-कृपा से ऐसा करने में समर्थ हो जायें, तो रोग होते हुए भी देह आपको परेशान नहीं करेगी, आनन्द ही देगी। क्योंकि देह का धर्म है नष्ट होना, क्षीण होना। देह पल-पल नष्ट हो रही है। **कष्ट वही है जिसे आप कष्ट मानते हैं।** तो कारण-देह आनन्द-स्वरूप और भस्मी से जुड़ने के बाद आपको कष्ट, कष्ट ही नहीं लगेंगे और आप अपनी देह के विभिन्न बदलते हुए स्वरूपों में आनन्दित ही रहेंगे। हमने उत्तर काशी में बड़े-बड़े महात्माओं को देखा जिनकी देह बड़े भयानक रोगों से ग्रसित थी, लेकिन वे बड़े आनन्द में रहते थे और इतने आनन्द में रहते थे, कि उनके पास बैठा रोगी भी अपना रोग भूल कर आनन्दित हो जाता था।

जब भवरोग का पक्का इलाज हो जाता है, तो मानव को लगने लगता है कि :—

''खुदा नबीं दोनों की इब्तदा हूँ मैं, इन्तहा हूँ मैं,
स्वाहा हूँ मैं, बका हूँ मैं, महा स्वाहा हूँ मैं।''

क्या पाना है यहाँ हमें ? क्या स्थिर है हमारे जीवन में ? हमारा बचपन, जवानी, बुढ़ापा, पति, पत्नी, भाई, बन्धु, धन, प्रौपर्टी, पद, पोस्ट कुछ भी

अविरल नहीं है, परन्तु अपने **'कारण'** ईश्वर और अपने अन्तिम निश्चित भविष्य **'भस्मी'** से बंधने पर हम जन्म-जन्मान्तरों से जिस भवरोग से पीड़ित हैं उससे कभी न कभी निजात अवश्य मिल जायेगी। मैंने अपने **'हवन'** शीर्षक प्रवचन में बताया था, कि हवन की अग्नि हमें जीवन के आध्यात्मिक और भौतिक दोनों सत्यों का एक ही समय में दिग्दर्शन कराती है। **अतः जिस गृहस्थ मन्दिर में नित्य हवन होता है, वह घर भवरोग से मुक्ति का नर्सिंग-होम बन जाता है। वह घर दिव्य होता है और उस घर के लोग भी भवरोग से मुक्ति दिलाने वाले बन जाते हैं।** हम आपको आशीर्वाद देते हैं और शुभकामनाएँ करते हैं, कि हम सब इस महा भयंकर एवं असाध्य भवरोग से निजात पायें और अपने जीवन को सच्चिदानंद ईश्वर की अनुभूतियों में ढालते हुए देह से निर्वाण प्राप्त करें।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(16, 23 नवम्बर, 2003)

कर्मण्यता

आज की संध्या में परम इष्ट-कृपा तथा आप समस्त जिज्ञासुओं व मुमुक्षुओं की परम जिज्ञासावश मैं शिव-शक्ति के मायिक विस्तार का वर्णन करूँगा। इन समस्त कोटि-कोटि महा-ब्रह्माण्डों का नायक, शिव-शक्ति का संगम, वह देवाधिदेव महादेव किस प्रकार अपनी इस सम्पूर्ण क्रीड़ा-स्थली में क्रीड़ा करता है? वह सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड क्या है?

शिव से यदि छोटी **'इ'** हटा दी जाए, तो **'शव'** रह जाता है, यह छोटी **'इ'** शक्ति की द्योतक है। अर्थात् शिव में शक्ति समाहित है, शक्ति के बिना **शिव** होता ही नहीं है। **क्योंकि शिव 'शव' नहीं हो सकता**। अतः आपको पूर्णतः आश्वस्त हो जाना चाहिए, कि शिव-शक्ति अभिन्न हैं। शिव की शक्ति का प्रकाट्य उस देवाधिदेव महादेव की माया है, जिसका शिव स्वामी है, वह जब चाहता है, माया को प्रगट कर लेता है और इच्छानुसार ही उसे समेट भी लेता है। 1008 विधाओं से संयुक्त ध्यानस्थ, **समाधिस्थ शिव के चरणों में बैठी 108 विधाओं से युक्त माँ भवानी जगदम्बा प्रतीक्षा करती रहती हैं, कि कब शिव की समाधि खुले और उसे माया के विस्तार की आज्ञा मिले।** इस समस्त साकार दृश्यमान जगत की सम्पूर्ण माया का संचालन, पालन व समाहन वस्तुतः शिव की शक्ति से ही होता है, अन्यथा माया का अपना पृथक कोई अस्तित्व है ही नहीं।

उस अदृश्य निराकार शिव की इस शक्ति का स्वरूप है—'प्राण-शक्ति' देवाधिदेव महादेव जो ब्रह्मा, विष्णु, महेश का भी निर्माता है, इन कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों का निर्माण, पालन व संहार जिसका मात्र भृकुटि-विलास है, वह पाँचों-प्राणों का महासमन्वय व महापुंज है। यही शिव

का स्वरूप है। सम्पूर्ण कोटि-कोटि महाब्रह्माण्ड प्राण-शक्ति द्वारा ही अस्तित्व में आते हैं, क्रीड़ा करते हैं और फिर उसी प्राण-पुंज में समाहित हो जाते हैं। जितनी भी यह अपार साकार सृष्टि है, जिसे हम मानव अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अधिगृहीत करते हैं, आँखों से देखते हैं, कानों से सुनते हैं, त्वचा से स्पर्श करते हैं, नाक से सूँघते हैं और जिह्वा से चखते हैं, उसका समस्त मायिक विस्तार व क्रियान्वन शिव की प्राण-शक्ति द्वारा ही होता है। ***'प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा।'*** निराकार शिव स्वयं में इन पंच-प्राणों का समूह है और निराकार पंच-महाभूत—'पृथ्वी, जल, वायु, आकाश एवं अग्नि उस सच्चिदानंद का निराकार प्रतिनिधित्व करते हैं। मैं अपने प्रवचनों में बार-बार कह चुका हूँ, कि उस सच्चिदानंद की इस महाब्रह्माण्ड में सबसे अधिक उत्कृष्ट चमत्कारिक, विलक्षणतम, भव्यतम रचना मानव-देह है। मानव-देह के रूप में वह निराकार पारब्रह्म परमेश्वर स्वयं इस पृथ्वी पर अवतरित होकर खेलता है तथा पाँच-प्राणों व पंच-महाभूतों द्वारा निर्मित इस मायिक जगत द्वारा मानव को खिलाता है।

पंच-महाभूत जो उस सच्चिदानंद के सीधे प्रतिनिधि हैं, जिनके द्वारा इस सम्पूर्ण मायिक जगत का आनन्दमय निर्माण, पालन व संहार होता है, वे स्वयं में 'सहज जड़' हैं। वैसे तो **उस सच्चिदानंद की सृष्टि में कुछ भी जड़ नहीं है, सब कुछ चेतन है, सत्य है व आनन्दमय है।** परन्तु जब कोई व्यक्ति अथवा प्राणी अज्ञानवश, संस्कारोंवश, भाग्यवश, पाश्चात्यानुगमनवश अथवा जानबूझकर ईश्वर के विमुख हो जाता है, ईश्वरीय सत्ता को नकार देता है अर्थात् तो उसे कहा है **'जड़'।** जब वह केवल ईश्वर के ही नहीं बल्कि अपने स्वयं के अस्तित्व को भी नकार देता है, स्वयं के बारे में भी अनभिज्ञ होता है, तो उसे कहते हैं **'सहज जड़'।** अतः पृथ्वी, जल, वायु, आकाश एवं अग्नि सहज जड़ हैं। ईश्वर का इन पर सीधा अधिपत्य है, ईश्वर के कृत्यों में इनका कोई हस्तक्षेप नहीं है। यदि इन्हें थोड़ी बहुत बुद्धि दे दी होती, तो ये मानव की ही तरह ईश्वरीय कृत्यों में हस्तक्षेप अवश्य

करते। पृथ्वी-प्रलय, जल-प्रलय, वायु-प्रलय, अग्नि-प्रलय, आकाश-प्रलय होती है और ईश्वर के इन तमाम हुकुमों में ये पंच-महाभूत बिना हस्तक्षेप किए बँधे रहते हैं, क्योंकि ये सहज जड़ हैं।

इसके पश्चात आता है पशु-जगत। पशु ईश्वर के विमुख तो होते ही हैं, परन्तु इन्हें अपने होने की धारणा होती है, वे अपने अस्तित्व को महत्त्व देते हैं, अपनी रक्षा का प्रयत्न करते हैं और उन्हें अपने बच्चों से लगाव भी होता है। पशु सहज जड़ नहीं हैं, बल्कि जड़ हैं और इनसे मिलते-जुलते वे मानव जो इस विलक्षणतम, भव्यतम, चमत्कारिक मानव-देह मिलने के बाद भी उस ईश्वरीय-सत्ता को नकार देते हैं, वे भी जड़ हैं और backward animals हैं। वे पशुओं से भी गए बीते हैं, पिछड़े हुए हैं। **वस्तुतः वही मानव कहलाने योग्य हैं, जो ईश्वर को मानते हैं और इस पृथ्वी पर वे क्यों लाए गए हैं; इस दिशा में पुरुषार्थ करते हैं।** अब मैं इस जगत के कर्मों के विषय में वर्णन करूँगा।

हम मानव जब सो रहे होते हैं, तो हम होते हैं, लेकिन हमें अपनी और अपने समस्त जगत की कोई भी जानकारी नहीं होती। सुषुप्ति अवस्था में न तो हमें अपनी पहचान होती है और न ही हमारे ऊपर आधारित समस्त जगत की पहचान रह जाती है। उदाहरणतः किसी स्त्री का बहुत मन्नतों मुरादों के बाद पुत्र हुआ हो और वह उसका अपने से ज्यादा ध्यान रखती है, लेकिन बच्चे से खेलती-खेलती सो जाती है। अब उसे न अपना होश है और न बच्चे का, इसलिए बच्चा पलंग से गिर गया। उससे पूछो, कि तुमने बच्चे का ध्यान क्यों नहीं रखा, तो वह बोलेगी, कि मैं तो सो गई थी। बहुत महत्त्वपूर्ण है। लेकिन जागृति में हमें अपने नाम-रूप व इस पर आधारित अपने समस्त जगत की पहचान होती है, कि मेरा नाम क्या है,, किसका पुत्र या पुत्री हूँ, मेरा घर, परिवार, बच्चे, पद, प्रतिष्ठा, धन, सम्पति, आस-पड़ोस, देश, धर्म, जाति, कर्त्तव्य क्या हैं?

बहुत व्यस्त और तथाकथित कर्मठ लोग हैं, वे सुषुप्ति अवस्था में भी अपना समय व्यर्थ नहीं करते। उनका मानवीय मन स्वप्न-सृष्टि की संरचना

करता है। वे इस सृष्टि में बहुत भाग-दौड़ करते हैं और थक-हार कर सुखी-दुखी होकर उनकी नींद खुल जाती है। फिर उन्हें ख्याल आता है, कि अरे! वह तो स्वप्न था, लेकिन उठकर उसकी किसी व्यक्ति विशेष से चर्चा अवश्य करते हैं, कि मैं स्वप्न में वहाँ गया। वहाँ पर आप भी थे, आपको मैंने कुछ दिया था और जो आपने लौटाने से इन्कार कर दिया था आदि। वे अपने स्वप्न का अर्थ भी जानना चाहते हैं। इस सुषुप्ति-अवस्था को जड़-अवस्था कहा जाता है, क्योंकि उस वक्त साधारण मानव की ईश्वर से विमुखता होती है। लेकिन योगी की निद्रा भी **'समाधि'** होती है। जब हमारी बुद्धि ईश्वर-विमुख हो जाती है, उस जड़ता में हमारा स्थिर, सशक्त व शान्त ईश्वरीय-मन, अस्थिर, अशक्त व अशान्त मानवीय-मन बन जाता है और स्वप्न-सृष्टि की संरचना करता है, जिसमें बहुत भाग-दौड़ करता है। कई तरह के स्वप्न, स्वप्नों में स्वप्न देखते-देखते हम उठ जाते हैं। तो स्वप्न में जो कार्य होते हैं, वे निरर्थक व नकारात्मक होते हैं; लेकिन तब भी हम उनका सविस्तार वर्णन करने से बाज नहीं आते। ये हमारे कर्मों का प्रथम स्तर है क्योंकि कर्म स्वप्न में भी करते हैं।

हम तथाकथित जाग्रत होते हैं और पुनः ईश्वर-विमुख होते हैं तथा उस विमुखता में हम अनेक कृत्य करते हैं, योजनाएँ बनाते हैं और स्वयं को बहुत कर्मठ व व्यस्त घोषित कर देते हैं। पूछो, आप ईश्वर के ध्यान में बैठते हैं, कुछ पूजा-पाठ करते हैं? तो उत्तर मिलता है कि हमें फुर्सत नहीं है। अतः ऐसे ईश्वर-विमुखता में किए गए कृत्य स्वप्न-सृष्टि में किए गए कृत्यों की ही तरह न केवल निरर्थक और नकारात्मक होते हैं बल्कि घातक भी होते हैं, क्योंकि उनका प्रारब्ध बनता है। स्वप्न-सृष्टि में किए गए कृत्य घातक इसलिए नहीं होते, क्योंकि उसमें किए गए कृत्यों का महात्म्य हमारे मानस से हट जाता है और हम आश्वस्त हो जाते हैं, कि वो मैं था ही नहीं। यदि अपने स्वप्न में किए गए कृत्यों से भी हम तद्‌रूपता कर लें, तो उनका भी प्रारब्ध बनेगा तथा स्वप्न में किए गए पापों-पुण्यों का भी आपको भुगतान करना पड़ेगा।

आप अपने व्यावहारिक जीवन में देखिए जिस-जिस के लिए आपने अहं भाव से कुछ भी किया है, वह व्यक्ति ही आपको आँख दिखाएगा, कि कब किया है आपने? जैसे कि स्वप्न-सृष्टि में हमने किसी को एक लाख रुपया दिया हो और जाग्रत होने पर हम उससे वापिस मांगे, तो वह यही कहेगा, कि कब दिया था आपने! ध्यान रखिए, यही होगा आपके साथ आपकी जागृति में अहं भाव से किए गए कृत्यों का, कि मैंने अपने बेटे, बेटी के लिए इतना कुछ किया, अपने समाज के लिए किया, अब वे मुझे आँखें दिखाते हैं। इतिहास गवाह है, बड़े-बड़े तथाकथित कर्मठ हुए, जिन्होंने अपने कर्मों के बदले में प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष रूप से बहुत कुछ माँगा और उन्हें बहुत कुछ मिला भी। इसके बाद भी उन्होंने डींग हाँकनी नहीं छोड़ी, इतिहास में जबरदस्ती यदा-कदा स्वयं को घुसाया और वही इतिहास हम अपने बच्चों को पढ़ाते हैं, उनकी जय-जयकार करते हैं। एक समय पर वही समाज उनको भला-बुरा कहता है, क्योंकि उन्होंने वे कर्म ईश्वर-विमुख होकर विश्व, देश व समाज के ठेकेदार बनकर किए थे। नीयत कुछ और होती है, करते कुछ और हैं। जो कर्मठ होते हैं, वे तो पुस्तकों में आते ही नहीं हैं। ये शास्त्र, वेद, पुराण व उपनिषद् किसी पर, क्या किसी लेखक का नाम है? गुरु के नाम से लिखे गए **'वेद-व्यास'**। आज कोई मच्छर या मक्खी की कहानी भी लिखता है न, तो अपना नाम, अपनी फोटो न जाने क्या-क्या विज्ञप्ति करता है!

जिसके कारण हमारी देह का एक-एक प्राण, एक-एक श्वास चल रहा है, एक बहुत विशिष्ट रचना देह, हमें उसने दी है, इसे देने के पीछे उसका एक उद्देश्य था, जिसे जानने की तो हमें फुर्सत ही नहीं है। साथ ही जो कोई हमारे अंश से पैदा होता है तो उस पर हम अपने बेटा-बेटी की मोहर लगा देते हैं कि मुझे इसका भविष्य बनाना है, कैरियर बनाना है। जो अपने बच्चों के कैरियर के लिए चिन्तित हैं, वे मूर्खतावश ईश्वर के बनाए कैरियर में बाधा बन रहे हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से आप सोचिए कि वह आपका लगता क्या है? आप उसके लिए प्रार्थना करिए, कि प्रभु! यह अजूबा जो आपने मेरे घर

में उत्पन्न किया है, वह मेरे लिए हितकारी हो, सहायक हो। सहज स्वभाव देखिए, वह अपना वातावरण स्वयं बना लेगा, आप हों या न हों, हम निरर्थक तनावित रहते हैं उनका कैरियर बनाने के लिए। कई तथाकथित कर्मठ तथा समाज-सेवक देश का ठेका ले लेते हैं। देश को अपनी बपौती समझ लेते हैं।

तीसरी प्रकार के कर्म वे हैं, जो हम ईश्वर-सम्मुख होकर करते हैं कि प्रभु आपके बिना कैसे हो सकता है! प्रभु आप कर रहे हैं, आप ही कारण है। हममें से प्रत्येक व्यक्ति की शक्ल, अक्ल, प्रतिभाएँ, गुण, धारणाएँ, अवधारणाएँ अलग-अलग हैं। **जैसेकि मैं अक्सर कहता हूँ, कि आप सब स्वयं में बहुत हसीन हैं। आप जैसा न कोई है और न होगा, क्योंकि ईश्वर ने आपको किसी विशेष कार्य के लिए बनाया है।** हम वो कर रहे हैं, जो हम भी कर सकते हैं। आप स्वयं के साथ बैठकर आत्म-विश्लेषण करिए, तो पाएँगे कि आप वह कर रहे हैं, जो आप भी कर सकते हैं, जबकि प्रभु ने आपको उस कृत्य के लिए बनाया है, जो **आप ही कर सकते हैं।** जब आपको उन कर्मों की स्मृति आएगी तब आपकी शारीरिक शक्तियाँ असंख्य गुणा बढ़ जाएँगी। उनकी स्मृति के लिए एक औपचारिकता है कि जो आप भी कर सकते हैं और कर रहे हैं उसे तहे-दिल, मन व रूह से त्यागना पड़ेगा, कि प्रभु ये क्या करवा रहे हो? ये तो अन्य असंख्य लोग भी कर रहे हैं, मुझे आप पृथ्वी पर क्यों लाए हो? जब आप बार-बार श्रद्धा व समर्पण से उससे पूछेंगे, तो प्रभु आपसे वह करवाएँगे जो आप ही कर सकते हैं। जब आप व्यवहार में अपने समस्त कर्मों से मुक्ति पाकर ईश्वर के चरणों में बैठकर उससे पूछेंगे, तो वह अवश्य उस कार्य की स्मृति दिलाएँगे, जिसके लिए आपको इस धरा पर वे लेकर आए हैं। आपकी अगणित शक्तियाँ अक्सर सुषुप्त ही रहती हैं, क्योंकि आप भी सुषुप्त ही रहते हैं। तथाकथित जागृति में जो भी करते हैं, वह निरर्थक, नकारात्मक व घातक होता है।

जब आप कार्य करते हैं ईश्वर के सम्मुख होकर, तो वे सार्थक और सकारात्मक होते हैं। उसका आपको यश मिलेगा, आपको प्रशंसा

मिलेगी, जिसके लिए आपके ऊपर आपके माता-पिता और सद्‌गुरु का आशीर्वाद होना परम आवश्यक है। जो व्यक्ति अपने माता-पिता का निरादर करता है, उनके विमुख होता है, वह कुछ भी कर ले उसे, उसके द्वारा किए गए कृत्यों का कभी भी यश नहीं मिलता। माता-पिता के आशीर्वाद से ही हमारी बुद्धि सात्विक होगी, हमारे ऊपर ईश्वर की कृपा होगी और हमारा नाम होगा तथा हमें संत व सत्संग भी मिलेगा।

हमारे जीवन का यदि कोई सुन्दरतम समय है, तो वह है हमारी **'युवावस्था'**। युवावस्था के साथ-साथ सदाचार हो तो सोने पर सुहागा लग जाता है अन्यथा युवावस्था भी निरर्थक व्यतीत हो जाती है। शालीनता हो, आशा हो, दृढ़-संकल्प हो, ईश्वर में विश्वास हो तथा माता-पिता के लिए आदर-भाव हो, नहीं तो युवावस्था की समस्त शक्तियाँ, घातक हो जाएँगी। लोग कहते हैं वृद्धावस्था में प्रभु का नाम ले लेंगे।

अरे! वृद्धावस्था में प्रभु का नाम लेना कोई मज़ाक है? जिसने युवावस्था में प्रभु का नाम नहीं लिया, वह वृद्धावस्था में तो ले ही नहीं सकता। वृद्धावस्था तो प्रभु के नाम की पैंशन के लिए होती है, जो जप, तप, योग, हवन, यज्ञ, स्वाध्याय, प्राणायाम करना है, उसे युवावस्था में ही कर लीजिए। बाद में तो आराम से पैंशन खाइएगा। युवावस्था मानव-जीवन का सबसे आनन्दमय समय है। माता-पिता के आशीर्वाद के बिना आपको जीवन का सत्य कभी भी दिग्दर्शित नहीं होगा। जो कृपा-पात्र होते हैं उनके पास बैठने, उनके पास जाने से आपको विशेष शान्ति मिलती है। आप समय रूपी रेत पर अपने पद-चिन्ह छोड़ जाते हैं और इतिहास में आपका नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जाता है।

चौथे स्तर में कर्म के कर्त्ता वे संत महापुरुष हैं, जो कुछ नहीं करते। **जो अकर्मण्यता में कर्मठ होते हैं।** आज हमारा जो हित हो रहा है, वह उन्हीं के कारण हो रहा है। जो स्वयं कुछ नहीं करते, उनके संकल्प मात्र से सृष्टि का निर्माण, पालन व संहार होता है। **समाधिस्थ रहते हैं, सीधे ईश्वर से जुड़े रहते हैं।** वे महा कर्मयोगी व कर्मठ होते हैं, लेकिन अकर्मण्य से लगते

हैं। ये कर्म का एक विशेष प्रकार है जिसमें कर्म नहीं होता, मगर सब कुछ होता है।

उदाहरणतः सुदामा गए भगवान श्रीकृष्ण के पास तो छः-सात दिन भगवान उन्हें घुमाते-फिराते रहे। फिर खाली हाथ भेज दिया। सुदामा ने वापिस जाकर देखा, तो उनकी झोंपड़ी का महल बना हुआ था। तो पीर, पैगम्बरों, आरिफों, संत, महापुरुषों का मात्र संकल्प हो जाता है, उनको योजनाएँ बनानी नहीं पड़ती। मात्र उनका शुद्ध संकल्प हो जाता है और वह स्वरूप धारण करके प्रकट हो जाता है। **ये असंख्य तारे, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, पृथ्वी, पृथ्वी के सातों तल, आकाश, असंख्य पर्वत श्रंखलाएँ, असंख्य सागर उस महाशक्ति के मात्र संकल्प से प्रकट हुए हैं।** इसी प्रकार जो सद्पुरुष हैं, जो एक-एक श्वास, एक-एक पल में उस परम सत्ता के सम्मुख रहते हैं, उनका जो संकल्प होता है, वह सिद्ध होता है। जो वो सोचते हैं, वह हो जाता है। इसलिए कभी सिद्ध संत महापुरुषों को खाली या निठल्ला समझने की भ्रान्ति में मत रहना। जो हित हो रहा है, आपमें जो सद्बुद्धि है, अच्छे संस्कार हैं, जो अच्छे कृत्य हो रहे हैं, वो सब उनकी कृपा व सद्संकल्प से हो रहे हैं। तो यह अकर्मण्यता में कर्मठता है। **कर्मयोग वह है जब कुछ हुआ हुआ सा लगे जब कुछ किया हुआ सा लगे वह तथाकथित कर्मठता है।**

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(30 नवम्बर, 2003)

स्वामित्व

आज परम इष्ट कृपा से हम एक अन्य गृहस्थ-मन्दिर में आध्यात्मिक वार्तालाप के लिए एकत्रित हुए हैं। आज मैं बहुत ही जीवनोपयोगी विषय रखूँगा, विषय है–**'स्वामित्व'**। हम मानव तथाकथित होश सम्भालते ही, तथाकथित ही व्यस्त रहते हैं। अपनी सामर्थ्य व शक्तियों के अनुसार प्राप्तियों के लिए दौड़ते रहते हैं और अन्ततः जिन प्राप्तियों को एकत्रित करने के लिए अपनी समस्त शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक शक्तियों को झोंकते हैं, उन्हें यहीं छोड़कर मर जाते हैं। यही नहीं, मरते समय कुछ न कुछ आसक्तियाँ भी छोड़ जाते हैं, क्योंकि जो कुछ भी हम प्राप्त करते हैं, उससे कभी संतुष्ट नहीं होते। **'मरना'** शब्द का प्रयोग मैं इसलिए कर रहा हूँ, क्योंकि कोई मानव जब आसक्तियों से घिरा रहता है तो देह उसे त्यागती है और वह मरता है। देह की एक निश्चित अवधि है और मानवीय इच्छाओं की कोई सीमा नहीं है, एक इच्छा पूरी होने पर दूसरी इच्छा खड़ी हो जाती है। वह देह को नहीं छोड़ना चाहता, मगर देह उसे छोड़ देती है, तो उसे कहा है **'अकाल मृत्यु'**, भले ही वह दो सौ वर्ष की आयु भोग कर क्यों न मरे!

हमारा जीवन शून्य से प्रारम्भ होता है और शून्य में ही समाप्त हो जाता है। अब प्रश्न उठता है कि क्या जीवन निरर्थक है? क्या हम जन्म-जन्मान्तरों में इसी प्रकार धक्के खाते हुए भटकते रहेंगे? नहीं! ऐसा नहीं है, आज बहुत महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक तकनीक आपके सम्मुख रखूँगा, आपकी परम श्रद्धा एवं एकाग्रता वांछनीय है।

उस परम पिता परमेश्वर में (चाहे वह साकार हो या निराकार) छः

दिव्य विभूतियाँ हैं, जिन्हें उसने अपनी सर्वोत्कृष्ट चमत्कारिक रचना **'मानव-देह'** में ठसाठस भरा है। हम इन छः विभूतियों में से सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ख्याति व ऐश्वर्य के पीछे भागते हैं और छटी विभूति त्याग, वैराग्य अथवा भस्मी को उपेक्षित कर देते हैं। जबकि यह समस्त विभूतियाँ दैवीय कानून के अन्तर्गत हमारी अपनी धरोहर हैं। हम कुछ न कुछ करना चाहते हैं। चाहे वह निरर्थक और नकारात्मक ही क्यों न हो और दुर्भाग्यवश भूल जाते हैं कि हमारा एक निश्चित, परिलक्षित, प्रत्यक्षदर्शित भविष्य है, वह है—**'हमारी राख या खाक'**। जहाँ पहुँच कर हमारा भविष्य समाप्त हो जाता है। ईश्वर ने इसमें एक चमत्कारिक बात यह रखी कि जब हमारी देह की राख बनती है, तब हम नहीं होते। यदि हम अपनी उस भस्मी को अपने जीवन-काल में प्रतिदिन कुछ समय के लिए धारण कर लें, आत्मसात् कर लें तो हममें **'शिवत्व'** जाग्रत हो जायेगा। ईश्वर के समस्त गुण—कालातीत, देशातीत, धर्मातीत, कर्मातीत, कर्त्तव्यातीत, लिंगातीत, सम्बन्धातीत एवं मायातीत—हमारी उस भस्मी में हैं। जब उस भस्मी को हम वर्तमान में आत्मसात् करते हैं तो वह चेतन हो जाती है।

24 घण्टे का एक दिन होता है। उसमें से कम से कम 10 मिनट उस अन्तिम भविष्य को अवश्य सम्मुख रखना है। जब हम अपने उस **'अन्तिम स्थिर भविष्य'** को अपने अति व्यस्त, अस्थिर, भागते हुए वर्तमान के सम्मुख रखते हैं तो दोनों की टक्कर के फलस्वरूप हमारा भागता हुआ वर्तमान स्थिर और जड़ हो जाता है और हमारी भस्मी चेतन हो जाती है। साथ ही वे विभूतियाँ जिनके लिए हम आजीवन भागते हैं, उस चेतन भस्मी से प्रस्फुटित होनी शुरू हो जाती हैं एवं हमारे भीतर से ही आत्मज्ञान प्रकट हो जाता है। **वह 'आत्मज्ञान' जो मन-वाणी से परे है, जो बोला, पढ़ा या सुना नहीं जा सकता, जिसकी मात्र अनुभूति ही होती है।** वह अनुभूति जन्म-जन्मान्तरों तक हमारे मानस पर अंकित रहती है।

एक है सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, ख्याति व वैराग्य की तथाकथित प्राप्ति और दूसरा है इन विभूतियों का स्वामित्व। प्राप्तियाँ

तथाकथित इसलिए हैं क्योंकि जो प्राप्तियाँ हम अपने अहं से करते हैं, वे हमारी सुख-शान्ति को चाट जाती हैं। हम जीवन में प्राप्तियाँ इसलिए करना चाहते हैं क्योंकि हम उनका भोग करना चाहते हैं और भोग हम आनन्द के लिए करना चाहते हैं। सारांश में हम जीवन का प्रत्येक पल आनन्द से व्यतीत करना चाहते हैं लेकिन होता यह है कि धन, वैभव, ज़मीन, जायदाद, नाम, यश आदि की प्राप्तियाँ हो जाती हैं और परिणामस्वरूप इन प्राप्तियों के बाद हमारी सुख-शान्ति बढ़नी चाहिए, लेकिन ऐसा नहीं होता। इसका कारण यह है कि **उन प्राप्तियों पर हमारा स्वामित्व नहीं होता।** जब तक प्राप्तियों का स्वामित्व हमें नहीं मिलेगा तब तक हम उन्हें भोग नहीं सकते और हमारी प्राप्तियाँ ही हमारी चिंता का विषय बनी रहेंगी। चाहे वह धन हो, प्रौपर्टी हो, कोई पद हो, संतान हो, पति या पत्नी हो, नाम या यश हो, ज्ञान अथवा शक्ति हो। **भागते हैं हम मात्र इन विभूतियों की प्राप्ति के लिए, क्या हम स्वामित्व के लिए भागते हैं? वस्तुतः स्वामित्व के लिए भागने की नहीं, स्थिर होने की आवश्यकता है।**

हमें तो अपनी देह पर भी स्वामित्व नहीं है। हमने इस परअनधिकृत कब्ज़ा किया हुआ है। परमात्मा ने यह चमत्कारिक देह हमें दी और हम इसका दुरुपयोग करना आरम्भ कर देते हैं, हम नहीं जानते यह हमें क्यों दी गई थी और न ही हम जानना चाहते हैं। पितृ-ऋण, देव-ऋण और ऋषि-ऋण देने से हमें अपनी देह पर कुछ अधिकार अवश्य मिल जाता है, लेकिन स्वामित्व नहीं मिलता। अधिकार भौतिक है तथा देह का है और स्वामित्व आध्यात्मिक है तथा देहातीत है। देह और इन्द्रियों से हम सुख ही तो ले सकते हैं, आनन्द तो देहातीत है। जब आप देह की इन्द्रियों को पार करके आनन्द में चले जायेंगे तो आपको देह का स्वामित्व मिल जायेगा और अधिकार में केवल देह के सुख ही मिलेंगे। स्वामित्व जन्म-जन्मान्तरों में आनन्द-सहित मिलेगा और अधिकार देह के सुख और भोग तक ही सीमित है।

एक निश्चित समय पर, निश्चित परिस्थितियों में, निश्चित दैहिक व

भौतिक विधाओं के बीच हमें यह देह मिलती है, लेकिन उस देह पर हमारा कोई अधिकार नहीं होता। हमारी देह का समय भी हमारा नहीं होता, हमारी प्रतिभाएँ व डिग्रियाँ सब बिकी हुई होती हैं। हमारे पास खाना खाने, अपने बच्चों के पास बैठने का समय नहीं है। हमारे देश में कुपोषण इसलिए नहीं है कि हमारे पास खाने को नहीं है, बल्कि इसलिए है कि हमें खाने का तरीका नहीं आता। आज हर पढ़ा-लिखा व्यक्ति हर छः महीने बाद अपनी नौकरी बदलता रहता है। इसका कारण यह है कि उन्हें अपनी डिग्रियों और प्रतिभाओं पर न तो अधिकार है और न ही स्वामित्व है, वे आशीर्वाद-रहित हैं। आप अपने दैनिक जीवन में अपने आसपास के लोगों को देखिए, साठ से सत्तर प्रतिशत लोग पूर्णतः स्वस्थ रहते हुए भी अस्वस्थ रहते हैं, उनकी देह ही उन्हें परेशान रखती है। वास्तव में कमी कहाँ है? इसे भारतीय संस्कृति के पोषकों व द्योतकों को जानना परम आवश्यक है। यह जाने बिना कि प्रभु ने आपको यह देह क्यों दी है, आप अपना घोड़ा दौड़ायेंगे और अपने कामों के लिए इस देह का दुरुपयोग करेंगे तो देह के साथ आपका सम्बन्ध खराब हो जायेगा। यह देह आपको परेशान करेगी तथा निरन्तर भगायेगी।

आपकी भस्मी आपकी देह का एक भौतिक सत्य है। देह पर स्वामित्व के लिए आपको अपनी भस्मी से आत्मसात् होना ही पड़ेगा, नहीं तो आप इस देह और देह से सम्बन्धित समस्त सूक्ष्म-जगत का भोग नहीं कर सकते तथा आनन्द का तो प्रश्न ही नहीं उठता। आप कभी ईश्वर के चिंतन में नहीं बैठ सकते, क्योंकि ईश्वर के सम्मुख भी आप कोई न कोई देह का रोना ही रोयेंगे, हे प्रभु! मेरी पदोन्नति हो जाये, मेरा यह हो जाये, मेरा वो हो जाए आदि-आदि। जब आप सत्य को पाने के लिये प्रभु के सम्मुख बैठना चाहेंगे तो आपको अपनी देह पर स्वामित्व होना परम आवश्यक है। लोग कहते हैं कि हमारा ध्यान नहीं लगता, ध्यान कैसे लगे? देह आपका ध्यान नहीं लगने देगी। इसलिए ईश्वर के ध्यान में बैठने से पहले दस मिनट अपनी भस्मी का ध्यान अवश्य करिए। यह नहीं कि मैं भस्मी बनूँगा, बनना तो है ही, आप यह धारणा बना लीजिए कि आप भस्मी बन गये हैं। जब अपनी भस्मी

से स्वयं को आत्मसात् करेंगे और अपने को मात्र डेढ़-दो किलो खाक समझेंगे तो आपको देह का स्वामित्व मिल जायेगा, आपकी रूह को शान्ति मिलेगी। उसके बाद आप ईश्वरीय ध्यान में बैठकर देखना, बैठते ही सत्य-चिंतन शुरू हो जायेगा। ईश्वर के ध्यान में बैठने के लिए बाहरी वातावरण के साथ मानसिक वातावरण बनाना अधिक आवश्यक है। बाहरी वातावारण बनाने के लिए आप जोत जलाते हैं, धूप-बत्ती करते हैं, शंखनाद करते हैं, घंटी-नाद करते है। आप किसी क्लब या पार्टी में ईश्वर का ध्यान नहीं कर सकते। हाँ ! कोई ईश्वरीय प्रेम में बहुत ही पागल हो जाये तो बात दूसरी है :—

''फ़ना इतना मैं हो जाऊँ तेरी जाते आली में
जो मुझको देख ले उसे तेरा दीदार हो जाये।''

ऐसी स्थिति में आप जहाँ भी बैठेंगे आपका ध्यान लग जायेगा। पर ऐसा अक्सर नहीं होता। ईश्वर के ध्यान में बैठने के लिए पहले बाहरी भौतिक वातावरण बनाना ही पड़ता है परन्तु आपका मानसिक वातावरण कहीं ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। आपमें परिकल्पनाएँ करने की जन्मजात प्रतिभा है, आप अपने छोटे-छोटे भविष्यों के लिए दुनियाँ भर की धारणाएँ करते हैं कि यह हो जायेगा तो यह करूँगा आदि-आदि। अरे ! वह तो पता नहीं होगा भी या नहीं, आप भस्मी तो अवश्य बनेंगे, जो आपकी देह का अन्तिम सत्य है। तो अपने उस अन्तिम, निश्चित, परिलक्षित भविष्य से साक्षात्कार करिए और ध्यान में बैठने से पहले दस मिनट यह धारणा बना लीजिए कि आप भस्मी बन गये हैं। भस्मी के साथ आत्मसात् होते ही वह भस्मी तुरन्त चेतन हो जायेगी और आपकी समस्त सुषुप्त विभूतियाँ—आपका सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, ख्याति और वैराग्य भी तुरन्त जाग्रत हो जायेगा। वैराग्य, जिसे आप भूले हुए थे, वह जाग्रत होकर आपको इतना सम्मानित करेगा कि यह मायिक, चमत्कारिक, ईश्वरीय शक्ति आपकी देह ही आपको स्वयं ईश्वर के ध्यान में ले जायेगी। आपको देह का स्वामित्व मिल जायेगा।

देह का स्वामित्व मिलते ही देह आपको सत्य की ओर ले जायेगी तथा

देह भी असत्य नहीं रहेगी। **देह असत्य कब रहती है? जब देह से देह के लिए ही भागते हुए इसका दुरुपयोग करते हैं तब देह व देह पर आधारित समस्त जगत का स्वामित्व दैवीय शक्तियों द्वारा छीन लिया जाता है।** जो देह आपके लिए सम्पदा थी और देह पर आधारित समस्त सूक्ष्म-जगत जो आपकी क्रीड़ा-स्थली था, वह सब आपके लिए जिम्मेवारी बन जाता है। आप रोते-रोते ही आसक्तियों को लिए अकाल मृत्यु को प्राप्त होते हैं और पुनः जन्म भी अकाल ही होता है। **यह सब कुछ अकाल इसलिए होता है, क्योंकि आप स्वयं समय से बहुत ज्यादा बँध जाते हैं।** ईश्वर के अपने कानून हैं, मैं आपको स्वामित्व की कुछ झलकियाँ देना चाहता हूँ। आप स्वयं अपने को देखिए और निर्णय कीजिए कि क्या आपको अपनी सम्पदाओं का, सम्बन्धों का, संतान का, मित्रों का और अपने सब कुछ का स्वामित्व है?

मान लीजिए आपका अत्यन्त सुन्दर, ऐश्वर्यपूर्ण बंगला है दिल्ली में और आपको विदेश जाना पड़ता है तो आप उस बंगले को तो अपने साथ नहीं ले जा सकते। आपके मन में संशय ही रहेगा कि पता नहीं विदेश में आपको रहने के लिए उचित स्थान मिलेगा या नहीं। आप दिल्ली में उस बंगले के मालिक हैं और आपको उसके भोग का पूर्ण अधिकार है। लेकिन आप जहाँ भी जायें वहाँ आपको वैसा ही स्थान रहने के लिए मिले इसके लिए आपको उस बंगले का स्वामित्व चाहिये। यह कैसे हो? प्रभु के दिये उस घर को नित्य ईश्वर समर्पित करिए कि प्रभु! यह मेरा नहीं है, आपका है। **इसी प्रकार जो-जो प्राप्तियाँ आपको प्राप्त हैं अथवा आपने अर्जित की हैं, यदि आप उनका स्वामित्व चाहते हैं तो उन्हें दैवीय अदालत में समर्पित करना परमावश्यक है।** यह दैवीय औपचारिकता है। यदि आप इसे उपेक्षित करेंगे तो आपकी प्राप्तियाँ ही आपका सिर-दर्द बनी रहेंगी। आपका घर आपका स्वागत नहीं करेगा। आप उसमें चैन से नहीं रह सकेंगे। इतने सुन्दर आलीशान घर बनते हैं लेकिन उनमें आराम तब तक नहीं मिलता जब तक आपको उनका स्वामित्व नहीं मिलता। स्वामित्व मिलते ही आप देश-विदेश में जहाँ भी जायेंगे आपको उससे बढ़िया स्थान रहने के

लिए अवश्य मिलेगा। यदि आप केवल प्राप्तियों के लिए भागते रहेंगे तो प्राप्तियाँ होंगी, लेकिन एक तो आप उनको आनन्दपूर्वक भोग नहीं पायेंगे और दूसरे मरने के बाद वे सब प्राप्तियाँ यहीं छूट जायेंगी। साथ केवल स्वामित्व जाता है। कुछ लोग पैदायशी शहंशाह होते हैं कि अपना कुछ न होते हुए भी हर तरह के भोग पदार्थ उनके चरणों में रहते हैं, क्योंकि वे उन पदार्थों का स्वामित्व लेकर पैदा हुए हैं। **भोग और आनन्द मात्र स्वामित्व का है, प्राप्तियों का तो भय, तनाव और विक्षेप ही रहता है।** प्राप्तियों में अहंकार होता है और जब इन प्राप्तियों की शक्ति को सम्भालने की शक्ति नहीं होती तो प्राप्तियाँ ही घातक बन जाती हैं। स्वामित्व में अहंकार हो ही नहीं सकता, क्योंकि उसमें अपनेपन का भाव ही समाप्त हो जाता है। स्वामित्व और सन्यास एक दूसरे के पयार्यवाची हैं, वहाँ प्राप्तियाँ हों न हों मात्र भोग और आनन्द ही रहता है। वस्तुतः भोग पदार्थों को आनन्द देने के लिए वे महापुरुष उनका स्पर्श कर लेते हैं।

यदि आप अपनी संतान का स्वामित्व चाहते हैं, तो आप स्वयं से पूछिए कि क्या आप उन्हें अपना समय देते हैं? यदि उनके पास बैठने, बात करने, उन्हें पढ़ाने का समय आपके पास नहीं है तो वे आपके प्रति क्या श्रद्धा रखेंगे! बच्चों के जन्म-दिवस और विवाह-शादी पर पँचतारा होटलों में लाखों रुपये खर्च करके पार्टियाँ देने से बच्चों पर स्वामित्व नहीं होता। अपनी झूठी शान दिखाने के लिए ऋण लेकर भी आप वह सब करते हैं, परन्तु क्या देव-दरबार में आप अपने बच्चों के लिए प्रार्थना करते हैं, क्या उनके नाम से कोई दान-पुण्य करते हैं? उनके संस्कारों को उज्ज्वल करने के लिए क्या आपका खान-पान शुद्ध है, क्या करते हैं आप उनके लिए? भूल जाइए, कि मात्र धन खर्च करने से आपके बच्चे आपका सम्मान करेंगे। आपको अपने अन्य सम्बन्धों का स्वामित्व चाहिए तो आपको देव-दरबार में उन सम्बन्धियों के लिए प्रार्थना करनी होगी कि हे प्रभु! उन सबका कल्याण हो, हित हो, मेरी शुभकामनाएँ और आशीर्वाद उनको मिले। आप स्वयं ईमानदारी से सोचिए कि क्या आप अपने सम्बन्धियों के लिए ईश्वर के सम्मुख प्रार्थना करते हैं?

यदि पूरी ईमानदारी से बिना किसी स्वार्थ व राग-द्वेष के आप उनके लिए प्रार्थना करते हैं तो वे सम्बन्धी आपके अपने होंगे। चाहे आप उनसे कभी मिलें या न मिलें, भौतिक औपचारिकताओं का निर्वाह करें या न करें, उनके विवाह-शादी के निमन्त्रण पर जायें या न जायें, उनके यहाँ किसी के मरने पर आँसू बहायें या न बहायें, वे लोग आपके होंगे, क्योंकि आपको उन सम्बन्धों का स्वामित्व मिल जायेगा।

आप अपने पद का स्वामित्व चाहते हैं तो रोज़ अपने पद को ईश्वर-समर्पित करना आवश्यक है। नहीं तो वह पद ही आपके लिए तनाव और कई बिमारियों का कारण बना रहेगा। शक्तियाँ चाहे भौतिक हों या आध्यात्मिक, धन-बल हो या जन-बल हो या तप-बल हो, यदि आपमें उन्हें सम्भालने की शक्ति नहीं है तो वे शक्तियाँ ही आपकी अशान्ति व क्लेश का कारण बनी रहेंगी। इन समस्त शक्तियों को सम्भालने की शक्ति के लिए आपको उन शक्तियों का स्वामित्व मिलना अति आवश्यक है। धन का स्वामित्व कैसे मिले? यह काला धन क्या है? भौतिक जगत में काला धन चाहे जो भी होता हो, आध्यात्मिक दृष्टि से **काला धन वह है जिसका चाहे कई बार आयकर क्यों न दे दें लेकिन अगर उसे प्राप्त करने के बाद ईश्वर-चिंतन व ध्यान में बाधा पड़ती है तो वह धन काला धन है।** क्योंकि ईश्वर के ध्यान में बैठते ही यदि आपको उस धन की चिंता पड़ी है तो वह काला धन है और जो धन ईश्वर-चिंतन में सहायक हो, वह शुद्ध है। आपको प्रारब्धानुसार स्वतः ही प्राप्तियाँ होती हैं और आप समझते हैं कि आपके कर्मों के कारण हुई हैं। यही आपकी भूल है, आप उन प्राप्तियों के लिए कोई कर्म करिये या न करिये, वह समयानुसार अवश्य मिल जायेंगी। उचित समय पर कोई न कोई परिस्थिति बन जायेगी और ईश्वर स्वयं आपसे कुछ न कुछ करवा लेंगे। आपको केवल उन प्राप्तियों का स्वामित्व अर्जित करने के लिए प्रयत्नशील होना है। स्वामित्व के बिना आपकी समस्त विभूतियाँ जाली नोट के समान हैं जो न केवल बेकार होता है बल्कि भयभीत भी रखता है।

स्वामित्व प्राप्ति के कई तरीके हैं, सबसे सहज और अनुभूति तरीका मैं

आपको बताना चाहता हूँ—सुबह होते ही शुद्ध होकर देव-दरबार में जाइये और दस-पन्द्रह मिनट आप अपनी देह का समर्पण करिए, कि "प्रभु! आपने जो देह आज मुझे दी है, उसका एक-एक पल, एक-एक प्राण, एक-एक विधा, एक-एक श्वास आपके ही हाथ में है, आज के सम्पूर्ण दिवस का समय आपका है, मेरी कोई योजना नहीं है। जो योजनाएँ आपकी हैं प्रभु! वही मेरी भी हैं।" जब रोज़ आप 10-15 मिनट अपनी देह का समर्पण करेंगे तो आप देखेंगे कि प्रभु आपके निजी सहायक बनकर सारा दिन आपके साथ विचरण करेंगे। आपका हर क्षण, खोना, पाना, मिलना, बिछुड़ना सब आनन्दमय होगा और अन्ततः आप आनन्द ही तो पाना चाहते हैं। मत भूलिए आपकी स्थूल-देह की सीमा मात्र सुखों तक है लेकिन आनन्द, देह से परे है। आनन्द आपकी कारण-देह का है, आपके सच्चिदानंद स्वरूप, ईश्वर का है। आप उसे नाम में, अनाम में, रूप में, अरूप में किसी में भी मान लो, चाहे न मानो। वह आपकी कारण-देह है, जो स्थूल-देह की सीमाओं से परे है। आपको अपनी स्थूल-देह से उस देहातीत कारण-देह के सम्मुख प्रार्थना करनी पड़ेगी कि "हे प्रभु! इस देह सहित जो भी प्राप्तियाँ आपने कृपा करके मेरे लिए दी हैं, वे सब आपकी हैं। हे महाकारण! मेरे जीवन के एक-एक पल के कारण आप हैं। मेरे निर्माण, पालन व संहार तीनों का कारण आप ही हैं। अतः मैं स्वयं को आपकी इच्छा से, आपकी कृपा से, आपकी दी शक्ति से आपको ही समर्पित करता हूँ।" **जब आप उस परम सत्य के सम्मुख इस प्रकार अपनी इस नश्वर स्थूल-देह का नित्य समर्पण करते हैं तो शीघ्र ही आपको देह व देह पर आधारित समस्त जगत का स्वामित्व मिल जाता है।** आप देखेंगे जो लोग आपसे बात करने में कतराते थे, वे आपके साथ बैठने में गौरव का अनुभव करेंगे। आपकी पत्नी जो हर समय तेवर दिखाती थी, वह बड़े प्रेम से बात करेगी। आपके अधीनस्थ अधिकारी जो आपको आंखें दिखाते रहते थे, उनके चेहरे बदल जायेंगे। आपकी दैहिक व मानसिक छोटी-छोटी बिमारियाँ स्वतः ही ठीक हो जायेंगी। तो ये परिवर्तन आप अपने नित्य के जीवन में पाएँगे। हर समय आपका नृत्य करने का मन

करेगा और आप सहज मुदिता और आनन्द में रहेंगे।

दैहिक ज्ञानेन्दियों का जितना भी सुख है, वह भी आप तभी ले सकते हैं जब आप अपनी कारण-देह अपने सच्चिदानंद-स्वरूप ईश्वर के सम्पर्क में रहेंगे। सुख इन्द्रियजनित है और इन्द्रियों की निश्चित सीमा है। एक सीमा के बाद ये इन्द्रियाँ सुख-साधनों की प्राप्ति होने पर सुख नहीं दे सकतीं। वस्तुओं के समर्पण से आपको मात्र उन वस्तुओं के भोग का अधिकार मिलता है। कितना भोग कर सकते हैं हम! अधिकार होने पर उसी के अनुपात में वस्तुओं का भोग आपको कहीं भी मिल जायेगा, तो अधिकार एक भौतिक प्राप्ति ही है। वस्तुओं की प्राप्ति से आनन्द का कोई सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि एक सीमा पर हमारी इन्द्रियाँ वस्तुओं के होते हुए भी हमें सुख प्रदान नहीं कर सकतीं। **स्वामित्व में वस्तुओं की आवश्यकता ही नहीं है क्योंकि आप सहज ही देहातीत अपनी कारण-देह, आनन्द से जुड़े रहते हैं और इस प्रकार स्वामित्व लिए हुए मानस ही मृत्योपरान्त आपके साथ जाता है।** हम कहते हैं कि व्यक्ति दुनिया में खाली हाथ आता है और खाली हाथ जाता है। खाली हाथ नहीं जाना है, आप इतना कुछ समर्पित कर जाइए कि आपमें भारी स्वामित्व जाग्रत हो जाये। आप ध्यान में रोज़ सुबह सम्पूर्ण महाब्रह्माण्डों की समस्त सम्पदाओं को समर्पित कर दीजिए, कि हे प्रभु! जितनी ज़मीन पर मैं चलता हूँ, जितनी हवा में साँस लेता हूँ, जहाँ-जहाँ मन और दृष्टि जाती है और जो कुछ भी कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों की सम्पदा और ऐश्वर्य है, वह सब कुछ आपने मेरे लिए ही तो बनाया है, वह सब कुछ मैं आपकी इच्छा से, आपकी दी शक्ति से आपके चरणों में समर्पित करता हूँ:—

'त्वदीयं वस्तुं प्रभु तुभ्यमेव समर्पये'

सुबह प्रभु के सामने कुछ समय लगाइये और जो कुछ भी आपको नज़र आता है सब उसे समर्पित कर दीजिए, आपका क्या जाता है! आप जहाँ भी जाते हैं प्रभु आपको हवा, पानी, धरती, अग्नि आदि देते हैं न? तो सम्पूर्ण धरती प्रभु ने आपके लिए ही तो बनाई है। पूरे महाब्रह्माण्ड की सम्पूर्ण सम्पदा को प्रभु को समर्पित करते हुए कहिए—कि प्रभु! यदि कभी मैंने किसी

वस्तु को अपनी कहा हो तो इसलिए कहा होगा क्योंकि यह सब तुम्हारी हैं, मैंने भूल से अपनी कह दिया होगा। अब मैं तेरी कृपा से, तेरी इच्छा से तेरे ही चरणों में उन्हें समर्पित करता हूँ। इस प्रकार आपको समस्त सम्पदा का स्वामित्व मिल जायेगा। **रोज़ हम ईश्वर के सामने बैठते हैं, इसे ही चेतनता कहा है। ईश्वर-विमुखता ही जड़ता है और पशुत्व है, चेतनता महामानवीय है।**

कुछ लोग ईश्वर के ध्यान व कृपा में इतना खो जाते हैं कि वे अपनी ओर से विमुख हो जाते हैं। वे अपने स्वयं के नाम-रूप और उस पर आधारित जगत से विमुख होकर मात्र ईश्वर के ही सम्मुख रहते हैं। हाँ! कुछ ऐसे दिवाने भी होते हैं। उसे भी जड़ता कहा है, जैसेकि **जड़ भरत** हुए। जब कोई महामानव परम ईश्वरीय-कृपा से अपने से इस प्रकार विमुख होकर, ईश्वर के महासम्मुख हो जाते हैं तो ऐसे जड़ मानवों को प्रभु अति कृपावश अपने ईश्वरत्व का अधिकार दे देते हैं, कि मेरी जगह तुम सृष्टि की रचना, पालन व संहार करो, लेकिन वे बहुत चतुर होते हैं। वे इसे स्वीकार नहीं करते और प्रभु से कहते हैं कि ''प्रभु! यह कार्य तो आप ही करिए, मुझे तो तुमसे प्यार हो गया है इसलिए मैं तुम्हारे पास बैठना चाहता हूँ:—

''पड़ा रहने दो अपने दर पर,
मुझको क्यों उठाते हो,
मेरी किस्मत सँवरती है,
तुम्हारा क्या बिगड़ता है।''

प्रभु फिर ऐसे महामानवों को अपने ईश्वरत्व का स्वामित्व दे देते हैं, उनको संत कहते है। इसीलिए संत का पद ईश्वर से बड़ा है। ईश्वर स्वतन्त्र है, उच्छृंखल नहीं हो सकता। सृष्टि में किसी भी विशेष कार्यवाही से पहले ईश्वर को संत से परामर्श लेना ही पड़ता है। क्योंकि संत को अपने लिए कुछ नहीं चाहिए। वह भस्मीभूत ही रहता है। **इसलिए जीवन में जब आपको सत्य को जानने की जिज्ञासा हो तो अपनी देह के अन्तिम सत्य 'भस्मी' को पकड़ लीजिए। भस्मी के साथ आत्मसात् होते ही उस परम**

सत्य का द्वार स्वतः ही खुल जायेगा। यह मैं इस व्यास-गद्दी से आपको आश्वासन देता हूँ। देह और देह पर आधारित जगत का स्वामित्व मिलते ही आपका सम्पूर्ण जीवन आनन्दमय हो जायेगा। आपमें वह शिवत्व जाग्रत हो जायेगा, जिस पर आपका जन्मसिद्ध अधिकार है, परन्तु **यह समस्त प्रकरण कर्म-साध्य नहीं, कृपा-साध्य है।**

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(7 दिसम्बर, 2003)

दिव्य-ज्योति

आज परम सौभाग्य एवं इष्ट कृपा से गत वर्षों की तरह इस वर्ष भी इस **दिव्य-ज्योति परिवार** में हम सबका पदार्पण हुआ है और मुझे प्रेरणा हुई है कि मैं **'दिव्य-ज्योति'** पर ही बोलूँ। **दिव्य-ज्योति** क्या है? इसका अर्थ क्या है? **दिव्य-ज्योति** किसका प्रतिनिधित्व करती है? इसका स्वरूप और आध्यात्मिक संरचना क्या है? यह किस प्रकार कार्यान्वित होती है? पूरे महाब्रह्माण्डों का निर्माण, पालन व संहार किस प्रकार करती है? हम मानवों के जीवन को अति उत्कृष्ट व परम दिव्य किस प्रकार बनाती है? हम मानव अपने अहंवश इसका आच्छादन कैसे करते हैं और सद्गुरु व इष्ट-कृपा से पुनः इसे कैसे अनाच्छादित, उद्दीप्त व प्रदीप्त किया जा सकता है? इन समस्त प्रश्नों एवं विषयों पर आज इष्ट-कृपा से संक्षेप में प्रकाश डालूँगा। विषय अति विस्तृत एवं गम्भीर है, सम्पूर्ण सृष्टि का मूल तत्त्व एवं महाशास्त्र है। प्रत्येक जिज्ञासु के मन में ये समस्त प्रश्न स्वयं में अनेकानेक प्रश्नों एवं जिज्ञासाओं की तरंगे उठा देते हैं। मैं आपकी परम श्रद्धा तथा एकाग्रता चाहता हूँ।

जैसाकि नाम से ही स्पष्ट है, **ऐसी ज्योति या प्रकाश जो आपको दिव्यता की ओर ले जाये, उसे दिव्य-ज्योति कहते हैं।** प्रश्न उठता है कि दिव्यता क्या है? सम्पूर्ण कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों का नायक वह ईश्वर स्वयं में दिव्य है, सच्चिदानंद है, उसकी सृष्टि का एक-एक पल, एक-एक कण, एक-एक विधा दिव्यता से ओतप्रोत है। सर्वत्र दिव्यता ही दिव्यता है। **ऐसा प्रकाश अथवा ज्ञान जो हमें उस दिव्यता के सम्मुख कर दे, उस प्रकाश को कहा है—'दिव्य-ज्योति'।** एक तो विभिन्न स्रोतों व उपकरणों से भौतिक प्रकाश उत्पन्न होता है, जो हमारे मार्ग को प्रकाशित करता है। वह प्रकाश

हमारा मार्ग निर्धारण नहीं करता, यदि हम उसके प्रकाश में कहीं जाना चाहते हैं तो हमें मार्ग का ज्ञान होना चाहिए कि हमें किस ओर चलना है, कहाँ जाना है? यदि घने अंधकार में टॉर्च हाथ में ले कर कहीं जायें तो टॉर्च का प्रकाश हमें हमारा रास्ता नहीं बतायेगा। जिस भी मार्ग में हम जा रहे हैं, टॉर्च के प्रकाश ने उस मार्ग ही को प्रकाशित कर देना है, तो यह भौतिक प्रकाश है। **लेकिन 'दिव्य-ज्योति' आत्म-ज्ञान का प्रकाश है, जो मार्ग का अवलोकन तो कराती ही है, साथ ही मार्ग का निर्धारण कर उसकी सीमाओं से अवगत कराते हुए मंज़िल निर्धारित करती है और हमें मंज़िल तक पहुँचाती भी है।** भौतिक प्रकाश अनेक हैं परन्तु आत्म-ज्ञान अथवा **'दिव्य-ज्योति'** एक ही है। भौतिक प्रकाश उदय होता है, लुप्त होता है लेकिन **'दिव्य-ज्योति'** का दिव्य प्रकाश कभी लुप्त नहीं होता। यह जैसे-जैसे तरंगित होता है और अधिक उद्दीप्त व प्रदीप्त होता जाता है।

वस्तुतः **'दिव्य-ज्योति'** मात्र ज्योति या प्रकाश नहीं है, बल्कि यह किसी महादिव्यता, चेतनता, सत्य व आनन्द का प्रतिनिधित्व करती है। हमारे शास्त्रों में 'दिव्य-ज्योति' के छः दिव्य स्त्रोत हैं—**गुरु, गीता, गौ, गणेश, गायत्री व गंगा।** ये सभी भारत भूमि के उत्पाद हैं और इन्हीं से सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड की दिव्यता प्रगट हुई है। आज विश्व में यदि कहीं दिव्यता है तो मात्र भारत के कारण ही है, भारत के कारण ही थी और भारत के कारण ही रहेगी। मैं दिव्यता के इन छः स्त्रोतों का संक्षेप में वर्णन करूँगा:—

गुरु—'गु' अर्थात् अन्धकार और 'रु' अर्थात् प्रकाश। ***''असतो मा सद् गमयः, तमसो मा ज्योतिर्गमयः, मृत्योर्मा अमृतम् गमयः।'*** जो असत् से सत्, अन्धकार से प्रकाश और मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जाये, उसे सद्गुरु कहते हैं। **सद्गुरु में यह क्षमता होती है कि वह मुर्दे में भी प्राण का संचार कर सकता है।** वह पहले अंधकार का, असत् का निर्धारण करवाता है, शिष्य को आश्वस्त करता है कि वह अंधकार और असत् में है, फिर उसके ज्ञान को जाग्रत करके उसे असत् से सत् और मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जाता है।

गीता—गीता जगद्गुरु भगवान श्रीकृष्ण के श्रीमुख से महाभारत के युद्ध के मैदान में उच्चरित वह महाज्ञान है, जो समस्त वेदों, पुराणों, वेदान्तों, शास्त्रों, श्रुतियों व उपनिषदों का सार है। समस्त वेद, उपनिषद्, शास्त्र आदि **'आरण्यक'** हैं, अरण्य कहा है—**वन को**। हमारे ऋषियों, मनीषियों ने जंगलों में तप किया और अपने सद्शिष्यों के आत्मज्ञान को इन आरण्यक-ग्रन्थों द्वारा जाग्रत किया और गीता जो सबका सार है, वह स्वयं भगवान के श्रीमुख से युद्ध के मैदान में बोली गई। वहीं श्रीकृष्ण ने अपने सद्शिष्य अर्जुन को दिव्य-चक्षु प्रदान करके अपना विराट स्वरूप भी दिखाया। सद्गुरु जब कृपालु होता है तो वह स्थान आदि औपचारिकताओं की उपेक्षा करके अपने परम सद्शिष्य के आत्मज्ञान को जाग्रत करता है।

गौ—हमारी भारतीय संस्कृति में गौ की पूजा होती है, गौ में 33 करोड़ देवी-देवताओं का वास माना गया है। जिस घर में गाय की सेवा, पूजा होती है, वहाँ स्वतः ज्ञान-गंगा प्रवाहित होती है।

गणेश—हमारे यहाँ प्रत्येक धार्मिक, सामाजिक, पारिवारिक अनुष्ठान से पूर्व गणेश जी की पूजा का विधान है :—

'वक्रतुण्ड महाकाय सूर्यकोर्टिसमप्रभः,
निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा।'

भौतिक अंधकार से बड़ा अंधकार अज्ञान का है। जिसके कारण हम आँखें होते हुए भी जन्म-जन्मान्तरों तक भटकते रहते हैं, अतः गणेश जी का प्रकाश कोटि-कोटि सूर्यों के समान है। वे हमारे अज्ञान रूपी अंधकार को दूर करने में सक्षम हैं।

गायत्री—माँ गायत्री आत्मज्ञान की अनुभूति कराती है व ज्ञान चक्षु खोलती है :—

'ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं
भर्गो देवस्यः धीमहि
धियो यो नः प्रचोदयात्।'

इस मंत्र का शाब्दिक अर्थ सर्वविदित है कि ''हे प्रभु! आप स्थूल-देह

के प्राण हैं, आप सूक्ष्म-जगत के आधार हैं और आप कारण-शरीर सच्चिदानंद-स्वरूप के अधिष्ठाता हैं। ऐसे हे महाप्रभु! हमें अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाइए और आप हमारी बुद्धि को प्रकाशित करिए, ताकि हम सद्कर्मों में प्रवृत्त हों।'' परन्तु मंत्र का अर्थ शब्द नहीं बता सकते। हमारे ऋषि मनीषी मन्त्र-दृष्टा थे। जितने हमारे वैदिक मंत्र हैं, हम मात्र उनके शाब्दिक अर्थों को ग्रहण करते हैं, परन्तु समस्त मन्त्रों के पीछे इनके अधिष्ठाता देवी-देवताओं की शक्ति है। उस देवी-देवता की शक्ति में श्रद्धा-विश्वास से आप उनका ध्यान करते हैं, जप करते हैं और जब वह दैवी-शक्ति प्रसन्न हो जाती है तब वह स्वयं स्वरूप धारण करके अपने श्रद्धालुओं को उस मन्त्र के अर्थ से अवगत कराती है। जिनको उस मन्त्र के अर्थ का अनुभव होता है उन्हें मन्त्र-दृष्टा कहा जाता है। वे उस मन्त्र के सिद्ध महापुरुष होते हैं। मन्त्रों के अर्थ बताए नहीं जा सकते, अनुभव किए जा सकते हैं। **अतः गायत्री स्वयं में महामन्त्र है, प्रकाश-पुंज है। गायत्री, गायत्री-मन्त्र की अधिष्ठात्री देवी है। उसी की कृपा से इस मन्त्र के अर्थ व इसकी दिव्यता का अनुभव किया जा सकता है।**

गंगा—भारत में ज्ञान-गंगा प्रवाहित है। आप सब इसे जानते ही हैं। **तो गंगा, गौ, गायत्री, गणेश, गुरु व गीता इस दिव्य ज्योति के स्त्रोत हैं।** प्रश्न उठता है **'दिव्य-ज्योति'** का स्वरूप क्या है? वस्तुतः दिव्य-ज्योति पाँच-प्राणों का समूह है—**प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान।** दिव्य-ज्योति इन पाँचों-प्राणों के पुंजीभूत स्वरूप का प्रतिनिधित्व करती है। पाँचों-प्राण एकत्रित होकर महाशक्ति उत्पन्न करते हैं तो एक जीवन का निर्माण होता है, जीवन चलता है और जब पाँचों-प्राण बिखर जाते हैं तो जीवन का आनन्दमय संहार होता है। ये पाँचों-प्राण स्वयं में शक्ति एवं ऊर्जा हैं। हमारे शास्त्रों में इन पाँचों-प्राणों की शक्ति को 108 भगवती स्वरूपों में विभाजित किया गया है, जितनी महाशक्तियाँ हैं वे इन पाँचों-प्राणों का ही मायिक प्रकटीकरण हैं, जिनसे सम्पूर्ण मायिक सृष्टि का निर्माण, पालन एवं संहार होता है।

चेतन भस्मी ही शिव है, जिससे पाँच-प्राण उद्दीप्त होते हैं और उनका पुंज बनता है। यदि **शिव** से छोटी **'इ'** हटा दी जाए तो **'शव'** रह जाता है। **यह छोटी 'इ' ही पाँच-प्राणों की शक्ति है, चेतनता है। शिव 'शव' नहीं हो सकता अर्थात् शिव में शक्ति समाहित ही है, इसी प्रकार चेतन भस्मी में पाँच-प्राणों की शक्ति निहित है।** जब शिव खेलना चाहता है तो चेतन भस्मी **शिव** में निहित पाँचों-प्राणों का ज्योति पुंज बनकर प्रकटीकरण होता है– यही है **'दिव्य-ज्योति'।** यही ज्योति ब्रह्मा, विष्णु व महेश बनती है, जिनके साथ अपनी-अपनी शक्ति संयुक्त रहती है। **ब्रह्मा** की शक्ति **सरस्वती** है और उसमें **ज्ञान** का प्रादुर्भाव अधिक होता है तथा **'व्यान प्राण' ज्ञान का द्योतक है।** **विष्णु** की शक्ति **लक्ष्मी** है जो **सौन्दर्य** व **ऐश्वर्य** की देवी है तथा **उदान प्राण सौन्दर्य व समान प्राण ऐश्वर्य के द्योतक हैं। महेश** संहार करता है, उनमें **ख्याति व त्याग (वैराग्य)** का प्राधान्य है, उनकी शक्ति है माँ जगदम्बा **पार्वती** तथा **अपान प्राण ख्याति व समान प्राण वैराग्य के द्योतक हैं।** प्राण, शक्ति है और देवाधिदेव महादेव के तीनों स्वरूप **ये त्रिदेव अर्थात् संयुक्त शक्ति शिव ही सृष्टि का निर्माण, पालन व संहार करते हैं।**

हमारे मनीषियों महापुरुषों ने ब्रह्मविद्या के अति गोपनीय रहस्यों को, जिन्हें लिखा नहीं जा सकता था, अपने शिष्यों को श्रुतियों द्वारा उनका ज्ञान दिया, ताकि वे आगे अपने सद्शिष्यों को सुना दें। आत्मज्ञान में कुछ ऐसे रहस्य हैं जो आम जनता में उद्घाटित नहीं किए जा सकते और कुछ ऐसे रहस्य भी हैं जिन्हें इशारों द्वारा बताया गया था। यहाँ 'श्रुति' भगवती भी मौन हो गई। सृष्टि के इस परम गोपनीय रहस्य का आज हम इष्ट व सद्गुरु-कृपा से अपने हाथ के संकेत से रहस्योद्घाटन कर देंगे, आपकी परम श्रद्धा, समर्पण व एकाग्रता वांछनीय है।

मेरे हाथ की यह फैली हुई हथेली चेतन भस्मी है अर्थात् पाँचों-प्राणों की शक्ति से सम्पन्न शिव हैं। शिव, शक्ति-सम्पन्न होते हुए भी भस्मीभूत रहता है, वह देवाधिदेव महादेव जब क्रीड़ा करना चाहता है तो पाँचों उँगलियों के इस संयुक्त उठे हुए समूह के रूप में पाँच-प्राणों की ऊर्जा व

शक्ति से युक्त यह दिव्य-ज्योति प्रकट होती है, यही इस दिव्य-ज्योति का ब्रह्मत्व है, जिससे इस मायिक सृष्टि का आनन्दमय निर्माण आभासित होने लगता है। इन संयुक्त पाँचों उँगलियों की यह बन्द मुट्ठी पंच-प्राणों की संयुक्त ऊर्जा से सम्पन्न आनन्दमय जीवन का विस्तार, प्रसार या इस दिव्य-ज्योति का विष्णुत्व है और जब पाँचों उँगलियों की बन्द मुट्ठी खुल कर फिर यह फैली हथेली बन गई तो पाँचों-प्राणों का बिखराव ही सम्पूर्ण मायिक सृष्टि का आनन्दमय संहार और इस दिव्य-ज्योति का शंकरत्व है। सारांश में चेतन भस्मी अर्थात् संयुक्त शक्ति **'शिव'** अथवा पाँच-प्राणों की ऊर्जा, इस दिव्य-ज्योति के रूप में उठकर ब्रह्मा बनते हैं और कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों का निर्माण करते हैं। वे ही विष्णु बनकर पालन करते हैं और शंकर बनकर उसी आनन्द में संहार करते हैं। संहार के साथ ही पाँचों-प्राण पुनः चेतन भस्मी में विलीन हो जाते हैं। **भस्मीभूत शिव से खेलने के लिए पाँच-प्राणों का समूह ज्योति-पुंज बनकर प्रकट हुआ, जीवन की संरचना, पालन व संहार हुआ और शिव भस्मी का भस्मी ही रहता है। यह है इस दिव्य-ज्योति का रहस्य।** दिव्य-ज्योति की इस परम आनन्दमय क्रीड़ा का **हवन** में प्रत्यक्ष दर्शन होता है, क्योंकि हवन-अग्नि की लपटें दिव्य-ज्योति के रूप में ईश्वर के निराकार स्वरूप का प्रतीक हैं। मैं इसका संक्षिप्त वर्णन करूँगा।

वह सच्चिदानंद पारब्रह्म परमेश्वर स्वयं में निराकार है और अपने साकार तथा निराकार दोनों स्वरूपों में छः दिव्य विभूतियों से विभूषित है—**सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, ख्याति व त्याग।** इन्हीं छः विभूतियों को उसने अपनी परमोत्कृष्ट संरचना मानव-देह में भी ठसाठस भरा है, ये छः ईश्वरीय गुण मानव की अपनी धरोहर हैं क्योंकि **सच्चिदानंद परमात्मा मानव का अपना शुद्धतम स्वरूप है, उसकी कारण-देह है।** जब हम हवन करते हैं तो हवनाग्नि में भी इन्हीं छः ईश्वरीय विभूतियों का प्रत्यक्ष-दर्शन होता है। **यज्ञाग्नि की लालिमायुक्त नृत्य करती लपटें उसका सौन्दर्य है, उन लपटों का प्रकाश उसका ज्ञान है, उस अग्नि का तेज अथवा**

दहनशीलता उसकी शक्ति है, उसमें श्रद्धापूर्वक डाली जाने वाली औषधियाँ, वनस्पतियाँ, समिधाएँ, गौघृत, पंच-रत्न, पंच-मेवा, मिष्ठान आदि द्रव्य उसका ऐश्वर्य है, उसका धूना ख्याति है तथा अन्ततः शेष रहने वाली भस्मी उसका वैराग्य अथवा त्याग है। यहाँ हमें यह नहीं भूलना है कि हवन-अग्नि के इस समस्त खेल का प्रकटीकरण भस्मी से हुआ है। **क्योंकि अग्नि की लपटों का सौन्दर्य, प्रकाश, तेज या प्रचण्डता, ऐश्वर्य, धूना उन समिधाओं, द्रव्यों व वनस्पतियों की आहूतियों से प्रकट हुआ है, जो मिट्टी से ही पैदा होती हैं।** जब हम आम, चन्दन, पीपल, बड़ आदि विभिन्न प्रकार की समिधाएँ तथा अन्य द्रव्य, औषधियाँ आदि डालते हैं तभी तो हवन-अग्नि की लपटें उठती हैं, प्रचण्ड होती हैं, लालिमा लिए नृत्य करती हैं, अपना प्रकाश विकीर्ण करती हैं, उसमें धूना उठता है और अन्ततः भस्मी ही शेष रह जाती है। **इसलिए लपटों की प्रचण्डता, सौन्दर्य, प्रकाश व धूने से भ्रमित न होना कि इनकी वजह से भस्मी बन रही है, बल्कि भस्मी के कारण ही इनका अस्तित्व प्रकाशमान होता है।**

हम जैसे ही हवन में अग्नि प्रद्दीप्त करते हैं तो उसी समय भस्मी बननी शुरू हो जाती है और जब यज्ञाग्नि की लपटें अति प्रचण्ड होती हैं तो हम उन लपटों के सौन्दर्य, प्रकाश, तेज व धूने की ओर ध्यान देते हैं लेकिन उनके मूल में बनने वाली भस्मी को उपेक्षित तथा अनदेखा कर देते हैं। जबकि हम भली-भाँति जानते हैं कि जितनी प्रचण्डता व तेज़ी से लपटें उठती हैं उतनी ही तेज़ी से नीचे भस्मी भी बनती रहती है, चाहे प्रकट अन्त में होती है। **वस्तुतः हवन भस्मी से भस्मी तक का ही प्रकरण है।** प्रारम्भ से अन्त तक इसका एक तत्त्व अविरल रहता है। **प्रारम्भ और मध्य में भस्मी भी होती है और अन्त में भस्मी ही होती है।** यदि हम यह कहें कि लपटों का सौन्दर्य, तेज या शक्ति, प्रकाश या ज्ञान उसमें पड़ने वाले विभिन्न द्रव्य या ऐश्वर्य, धूना या ख्याति भस्मी रूप वैराग्य के ही विभिन्न स्वरूप थे तो अतिशयोक्ति न होगी। क्योंकि यदि ये भस्मी के विभिन्न स्वरूप या विधाएँ न होते तो उनका अन्त भस्मी में नहीं होता। **इसी प्रकार हमारा जीवन भी**

भस्मी से भस्मी तक की यात्रा है। लेकिन जब हम जीवन में सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ख्याति, धन, ऐश्वर्य आदि के नशे में होते हैं तो हम अपनी भस्मी को भूल जाते हैं और इन्हीं विभूतियों की प्राप्तियों के लिए भागते हैं, जो हमारी अपनी धरोहर हैं, हमारी मुट्ठी में हैं। यदि हम भस्मी से जुड़े रहेंगे तो ये पाँचों-विभूतियाँ हमारी मुट्ठी में ही होंगी क्योंकि चेतन भस्मी से पाँच-प्राणों के द्वारा में इन विभूतियों का प्रकटीकरण हुआ है।

दिव्य-ज्योति के सम्बन्ध में हमारे मनीषियों का यह संकेत —**फैली हुई हथेली, उठी हुई संयुक्त पाँचों उंगलियाँ, बन्द मुट्ठी और फिर फैली हुई हथेली**—सम्पूर्ण वेदों, पुराणों, उपनिषदों, शास्त्रों का सार व मूल रहस्य है। उदान, प्राण, व्यान, अपान व समान प्राणों का पुंज **दिव्य-ज्योति** से क्रमशः सौन्दर्य, शक्ति, ज्ञान, ख्याति व ऐश्वर्य का प्रकटीकरण होता रहता है, **ये पाँचों-विभूतियाँ हमारी अपनी मुट्ठी में हैं, यदि हम अपनी भस्मी से जुड़े रहें तो।**

हम अपना जन्म-दिवस तो बड़े उल्लास से मनाते हैं, तो कभी पाँच-दस मिनट अपनी मृत्यु का भी ध्यान करें, जो अवश्य होगी और कब होगी, यह हम नहीं जानते। हमें अपने अगले क्षण की भी कोई सुनिश्चितता नहीं है। यदि हम जीवन का भरपूर आनन्द लेना चाहते हैं और उन पाँच विभूतियों का आनन्दपूर्वक भोग करना चाहते हैं, जिनके लिए हम जन्म-जन्मान्तरों में धक्के खाते रहे, तो हमें जीते जी अपनी भस्मी को आत्मसात् करना ही पड़ेगा। नहीं तो जब आप अति सौन्दर्यवान होंगे, आपसे शक्तियाँ फूट रही होंगी, आपका नाम व यश चहुँ ओर फैला होगा, आपके तथाकथित ज्ञान के डंके बज रहे होंगे अथवा आप धन, ऐश्वर्य से जगमगा रहे होंगे तो आप में अवश्य अहंकार आ जाएगा। **शक्तियाँ महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, शक्तियों को सम्भालने की शक्ति अधिक महत्त्वपूर्ण है।** भस्मी कुशन का काम करती है, भस्मी को उपेक्षित करेंगे तो आपका पद, धन, सौन्दर्य, शक्ति, ख्याति और ज्ञान आपको ही खा जाएगा।

जब भस्मी का कुशन नहीं होगा तो कोई भी शक्ति अहं पैदा कर देगी,

कि मैं अमुक-अमुक हूँ, आपने मेरा नाम नहीं सुना, मेरा पद बहुत ऊँचा है। किसी व्यक्ति में अहं आ जाए तो समझिए उसमें शक्तियों को सम्भालने की शक्ति नहीं है। उसका अहं उसका नाश कर देगा, साथ ही उसके समक्ष कोई ऐसी परिस्थिति पैदा कर देगा जो न उसे जीने देगी और न ही मरने देगी। वह अशान्त व तनावित ही रहेगा। अतः अपनी प्रतिभाओं, सौन्दर्य, ज्ञान, पद, यश, ऐश्वर्य का अहंकार कभी नहीं करना। **अब अहंकार नहीं करना चाहिए, मात्र कहने से क्या होगा, अहंकार तो हो ही जाता है, तो क्या करें? इसका एकमात्र उपाय यही है कि आप अपनी भस्मी से जुड़े रहें।** वह आपका निश्चित परिलक्षित प्रत्यक्ष भविष्य है। आप और कुछ बनें न बनें, इच्छित-धन, पद, प्रतिष्ठा, ज्ञान व शक्ति प्राप्त कर सके न कर सकें परन्तु एक दिन आप भस्मी अवश्य बनेंगे। तो हथेली से जुड़े रहना, जहाँ से पाँचों प्राणों के रूप में ज्योति-पुंज प्रकट होता है और आपकी पाँचों-विभूतियाँ आपसे ही प्रकट होती रहती हैं। लेकिन यदि आप इन्हें अर्जित करने के लिए भागेंगे तो क्या होगा, इसका संकेत भी आप समझ लीजिए।

ये इकट्ठी उठी हुई पाँचों उंगलियाँ, पाँचों-प्राणों का पुंजीभूत रूप ही दिव्य-ज्योति है। पाँचों-प्राण ही सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य और ख्याति के द्योतक हैं। आप **सौन्दर्य** के पीछे भागे तो **उदान प्राण**, **ज्ञान** के पीछे भागे तो **व्यान प्राण, शक्ति** के पीछे भागे तो **प्राण नामक प्राण, ऐश्वर्य** के पीछे भागे तो **समान प्राण, ख्याति** के पीछे भागे तो **अपान प्राण** पुंज में से विखण्डित हो गया और दिव्य-ज्योति खुल गई। इस प्रकार इस दिव्य-ज्योति की ऊर्जा व प्रकाश मन्द पड़ता गया। इसका परिणाम यह हुआ कि आपने भाग-दौड़ कर ये शक्तियाँ अर्जित भी कर लीं तो आपमें इनके भोगने की ऊर्जा ही क्षीण हो गई। प्राण गतियाँ ही विदीर्ण हो गईं। हम कोई भी वस्तु या शक्ति क्यों प्राप्त करना चाहते हैं? क्योंकि हम उसे भोगना चाहते हैं और भोग हम आनन्द के लिए करना चाहते हैं जबकि आनन्द हमारा अपना स्वरूप है। जब आप भागेंगे तो भस्मी को उपेक्षित कर देंगे। आज हर व्यक्ति स्वयं से भाग रहा है। वह क्यों भाग रहा है, कब तक भागेगा? इच्छित वस्तु प्राप्त कर

भी ले तो क्या हो जाएगा? यह न जानता है और न ही जानना चाहता है। जब हम जीवन में इन पाँच-विभूतियों के पीछे भागते हैं तो हमारा और हमारी देह का सम्बन्ध खराब हो जाता है और हम भंयकर रोग से पीड़ित हो जाते हैं। मैंने अपने **'देहाधिकार', 'भवरोग'** और **'स्वामित्व'** शीर्षक प्रवचनों में इसका सविस्तार वर्णन किया है।

यह दिव्य-ज्योति यदि पुंजीभूत रूप में रहती है तो मानव की चार दिव्य-बुद्धियों को उजागर करती है—**मेधा, प्रज्ञा, विवेक और ऋतम्भरा।** लेकिन हमने अपनी आई. क्यू. वाली बुद्धि का इतना दुरुपयोग किया कि ये दिव्य-बुद्धियाँ आच्छादित हो गईं। प्रभु ने समस्त प्राणियों में मात्र मानव को यह बुद्धि दी थी, ताकि वह उसकी इस भव्यतम, उत्कृष्टतम संसार महानाट्यशाला की विभिन्न विधाओं सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, पशु, पक्षी, पर्वत, सागर, आकाश, पाताल, जीव-जन्तुओं, पेड़ों, वनस्पतियों आदि की वाह-वाह करे व प्रशंसा करे। परन्तु इसने अज्ञानवश, मूर्खतावश इस बुद्धि का प्रयोग अपनी वाह-वाह कराने के लिए गैरकानूनी साधनों को अपनाने में किया और दिव्य-ज्योति को विखण्डित एवं विदीर्ण कर दिया। इसे वाह-वाह तो मिली पर साथ ही बदनामी भी मिली। धन बहुत अर्जित किया पर वह धन लक्ष्मी के अन्य छः अंगों—सुख, संतोष, शान्ति, स्वजन, स्वास्थ्य एवं सत्संग को चाट गया। सौन्दर्य अर्जित किया तो वह सौन्दर्य ही इसके लिए घातक बन गया। इसका तथाकथित ज्ञान इतना शुष्क और अहंयुक्त था कि बदनामी का हेतु बन गया। यह सब क्यों हुआ? **क्योंकि ये सौन्दर्य, शक्ति, ज्ञान, ख्याति व ऐश्वर्य हमारी मुट्ठी में थे और जब हम एक-एक करके इनके पीछे भागे तो बन्द मुट्ठी खुल गई। प्राण-पुंज की ऊर्जा बिखर गई तथा दिव्य-ज्योति विखण्डित हो गई।**

देवाधिदेव महादेव, चेतन-भस्मी से ही सृष्टि का आनन्दमय रचना, पालन व संहार करते हैं, लेकिन मानव-बुद्धि के हस्तक्षेप से जीवन की दो प्रमुख धाराएँ हो गईं। पहली धारा में ऐसे मानव हैं **जो मात्र जीवन के लिए पशुवत् जीवन व्यतीत करते हैं। जो केवल मात्रात्मक जीवन है** और

जिसकी कोई आवश्यकता नहीं थी। उसमें हम अपनी ही धरोहर शक्तियों के पीछे भागते हैं। दूसरी धारा में **वे मानव हैं जो वास्तव में मानव कहलाने के अधिकारी होते हैं, वे जिज्ञासु होते हैं और जानना चाहते हैं कि 'जीवन काहे के लिए है'।** यह मानव-देह उन्हें उस परम पिता परमेश्वर ने किस लिए दी है? पहली धारा बहुत विशाल और वेगवती है। जब हम जीवन के लिए भागते हैं तो हम केवल मात्र एक व्यक्ति हो जाते हैं। एक स्थूल-देह, जिसका एक नाम है, एक रूप है, एक पारिवारिक पृष्ठभूमि है, एक पद या पोस्ट है, एक जीवन-स्तर व आर्थिक स्थिति है। यदि आप दुकानदार हैं तो स्वयं को मात्र दुकानदार, चिकित्सक हैं तो स्वयं को मात्र चिकित्सक ही मानते हैं। यह मात्रात्मक जीवन है, जिसमें आप अपने व्यक्तित्व को बहुत संकुचित कर देते हैं। उसमें आप बहुत ही अकेले पड़ जाते हैं तथा समाज व अपने परिवेश से सम्बन्धित व्यक्तियों की आलोचना करते रहते हैं। दुकानदार ग्राहक को कोसता है, ग्राहक दुकानदार को, चिकित्सक मरीज़ को, मरीज़ डॉक्टर को, शत्रु शत्रु को, मित्र मित्र को, मित्र शत्रु को, शत्रु मित्र को, पति पत्नी को, पत्नी पति को, बाप बेटे को, बेटा बाप को, विद्यार्थी अध्यापक को, अध्यापक विद्यार्थी को सब एक दूसरे को कोसते रहते हैं। अन्ततः हम मात्र एक व्यक्ति होकर जीवन को निरर्थक एवं नकारात्मक बिताकर आसक्तियों को लिए हुए मर जाते हैं। यह केवल मात्रात्मक जीवन (Quantitative Life) है। इसमें दैवीय संस्थानों द्वारा हमारे ऊपर महाकाल की विभिन्न धाराओं के तहत सज़ाएँ दी जाती हैं। हमारी केस फाइल बनती है, जिसका नाम है **'प्रारब्ध'**।

ऐसे मानव कभी अपने वर्तमान में नहीं जी सकते। क्योंकि जो जीवन के लिए जी रहा है वह कभी अपने वर्तमान में नहीं टिकता। उसका वर्तमान भूत के मृत-शोक और भविष्य की काल्पनिक चिन्ताओं से आच्छादित रहता है। **जीवन के किसी भी काल में जब आपको आनन्द आयेगा तो समझना आप वर्तमान में हैं। आनन्द का खोने-पाने, रोने-हँसने, मिलने-बिछुड़ने, हर चीज़ से सम्बन्ध है। हमें अक्सर आनन्द**

क्यों नहीं आता, क्योंकि हम वर्तमान के उस जीवन्त क्षण में स्थिर नहीं हो पाते। जीवन की वह घड़ी, वह पल, वह क्षण जब आप अपने वर्तमान में जीते हैं, वह आपकी आनन्द की घड़ी होती है। जब आप जीवन के लिए जीवन व्यतीत करते हैं तो वर्तमान में जी ही नहीं सकते। आपकी दिव्य-ज्योति विखण्डित रहती है। प्राण-पुंज बिखरा रहता है। भस्मी हमारा सबका अन्तिम निश्चित परिलक्षित भविष्य है जो कल्पना नहीं है, वह अवश्य सम्मुख आएगा। जब हम भस्मी बनेंगे तो हम नहीं रहेंगे, तो वह भस्मी जड़ होगी। **यदि हम उस जड़ भस्मी को अपने जीवित, प्राण-युक्त भागते हुए वर्तमान के सम्मुख ले आएँ तो उस टक्कर से आप वर्तमान में स्थिर हो जाएँगे। वह जड़-भस्मी, पाँच-प्राणों की ऊर्जा से युक्त चेतन-भस्मी हो जाएगी और उस चेतन-भस्मी से प्रज्ज्वलित होगी पाँच-प्राणों की ऊर्जा से संयुक्त यह दिव्य-ज्योति। जिससे आपकी पाँचों दिव्य विभूतियाँ– सौन्दर्य, शक्ति, ज्ञान, ऐश्वर्य एवं ख्याति प्रस्फुटित होनी प्रारम्भ हो जाएँगी। इस प्रकार आपका जीवन मात्रात्मक (Quantitative) से गुणात्मक (Qualitative) हो जाएगा।** हम देखते हैं, प्रत्येक कृत्य के चार प्रमुख अंग होते हैं। उदाहरणतः–

चिकित्सक, मरीज़, चिकित्सा या औषधि व चिकित्सा-फल।
दुकानदार, ग्राहक, व्यापारिक वस्तु व व्यापार-फल।
शिक्षार्थी, शिक्षक, शिक्षा व शिक्षा-फल।
परीक्षार्थी, परीक्षक, परीक्षा व परीक्षा फल।

आप जो भी हैं, जो भी कर रहे हैं अपने व्यक्तित्व का विस्तार करिए। आप चिकित्सक हैं तो मरीज़ भी आप ही हैं और औषधि भी आप हैं और उसका फल भी आप हैं। इसी प्रकार यदि आप दुकानदार हैं और अपने ग्राहक को धोखा दे रहे हैं तो आप स्वयं को ही ठग रहे हैं। इस परम सत्य को आप अनदेखा नहीं कर सकते। यदि आप युद्ध के मैदान में खड़े हैं तो आपका प्रतिद्वन्द्वी शत्रु भी आप हैं। आप स्वयं से ही लड़ रहे हैं, युद्ध का परिणाम भी आप ही हैं। **जीवन के लिए कुछ करना है तो गुणात्मक करो,**

केवल मात्रात्मक नहीं। ईश्वर से पहले आप अपने जीवत्व को पहचानो। आप यदि अध्यापक हैं और तीस छात्रों को पढ़ा रहे हैं तो पढ़ाने वाला एक नहीं हो सकता। उस एक अध्यापक में तीस विद्यार्थियों के लिए तीस शिक्षक होंगे। यहाँ प्रत्यक्ष रूप से मैं एक वक्ता वक्तव्य दे रहा हूँ लेकिन प्रत्येक श्रोता का वक्ता पृथक है। आप सब अलग-अलग वो सुन रहे हैं जिसमें आप रचे-बसे हैं। शब्द एक ही हैं लेकिन उनके अर्थ प्रत्येक के लिए पृथक-पृथक हैं। आप स्वयं को पहचानो। मात्र एक व्यक्ति होकर निरर्थक जीवन व्यतीत मत करो। आप क्या कर सकते हैं? आपका अगला क्षण आपके अपने हाथ में नहीं है। क्या आप अपने हर कृत्य को ईश्वर निमित्त नहीं कर सकते?

जब आप अपने जीवन के प्रत्येक कृत्य, प्रत्येक विधा को ईश्वर समर्पित करते हैं कि प्रभु आप ही कर रहे हैं, आप ही करवा रहे हैं। दुकानदार भी आप हैं, ग्राहक भी आप हैं, वस्तु भी आप हैं और फल भी आप हैं। तो आपके हर कृत्य का फल निश्चित वस्तु या धन का अर्जन अथवा खोना नहीं होगा, वह फल होगा आनन्द। क्योंकि ईश्वर सच्चिदानंद है। वह ठोस-घन-शिला स्वयं में आनन्द ही आनन्द है। आपका जीवन आनन्द में प्रारम्भ होगा, आनन्द में चलेगा और आनन्द में ही समाप्त होगा तथा पुनः जन्म भी आनन्द में ही होगा। वह सम्पूर्ण जीवन आपके लिए लीला होगी, जिसमें न कुछ खोने का दुःख होगा और न कुछ पाने में विशेष प्रसन्नता होगी। इस प्रकार जब हम जीवन **'काहे के लिए है'** के भाव में जीवन व्यतीत करते हैं तो हमारा जीवन बहुत गुणात्मक हो जाता है। जीवन के लिए भी हम जो तथाकथित कार्य करते हैं यदि उसमें भस्मी को साथ रखते हैं और **कृत्य के सभी अंगों को ईश्वर-निमित्त कर देते हैं, तो उसका जो फल होता है वह आनन्द ही आनन्द होता है। अन्ततः हमें आनन्द ही तो चाहिए।** धन, सम्पदा, शक्ति, भौतिक सम्बन्ध, तथाकथित ज्ञान, सौन्दर्य, ख्याति कुछ भी हमारे साथ नहीं जाता। हमारे साथ केवल हमारा आनन्द जाता है। **हमारा मन आनन्दमय हो जाए, यही हमारे जीवन का लक्ष्य है तो इस प्रज्ज्वलित दिव्य-ज्योति का आप भी पुंज बना रहने दीजिए।**

यदि पुंज विखण्डित होगा तो आप जीवन के लिए जीवन जिएँगे। इस प्रकार जीवन न केवल निरर्थक होगा बल्कि नकारात्मक भी होगा।

ध्यान दीजिए! मृत्यु के समय भी आपका एक वर्तमान होगा यदि आप उस वर्तमान में किसी भविष्य के लिए चिन्तित होंगे तो आप आसक्ति को लेकर मरेंगे। उस समय आपके दिल, दिमाग में यदि कोई भविष्य होगा तो उस आसक्ति के कारण आपकी मृत्यु अकाल मृत्यु होगी। यदि मृत्यु के समय कोई आकांक्षा अधूरी रह जाती है, चाहे वह व्यक्ति दो सौ वर्ष की आयु भोग कर क्यों न मरे, तो वह **अकाल मृत्यु ही होती है। यदि मृत्यु के समय का वह वर्तमान किसी अतीत के साथ सम्पृक्त होगा तो वह अतीत की स्मृति एक वृत्ति बनकर आपके साथ जाएगी। उस घटना की पुनरावृत्ति अगले जन्म में फिर होगी।** यदि हमें वर्तमान में जीने का अभ्यास नहीं होगा तो मृत्यु के समय हम किसी आसक्ति या वृत्ति को लेकर देह छोड़ेंगे। हमें अपने वर्तमान में रहने का अभ्यास कब नहीं होगा, जब हम अपनी भस्मी को अनदेखा व उपेक्षित करते रहेंगे।

यह फैली हथेली खाली हाथ नहीं है—यह चेतन-भस्मी ही शिवत्व है, इसी से पाँच-प्राणों का पुंज प्रदीप्त होता है। जब शिव खेलना चाहता है तो उसकी दिव्य विभूतियों से संसार जगमगा उठता है। **महाशक्ति 108 स्वरूपों में भस्मीभूत शिव के चरणों में आज्ञा की प्रतीक्षा में बैठी रहती है कि प्रभु न जाने कब किस खेल को रचाने की आज्ञा दें।**

आज अति संक्षेप में मैंने **दिव्य-ज्योति** की कृपा व प्रेरणा से इस **दिव्य-ज्योति परिवार** में **दिव्य-ज्योति** से आपका परिचय कराया है। आपके जीवन का हर पल, हर क्षण अति आनन्दमय व नित नूतन हो, ऐसा हम आशीर्वाद देते हैं। यदि आप **दिव्य-ज्योति** के रहस्य को इसी की कृपा से आत्मसात् कर पाएँगे तो आपका जीवन अति गुणात्मक एवं आनन्दमय हो जाएगा।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(28 दिसम्बर, 2003)

बन्धन

आज परम इष्ट कृपा से एवं आप सब महाजिज्ञासुओं की जिज्ञासावश एक ऐसा विषय प्रस्तुत करने जा रहा हूँ, जो हमारे जीवन का अति महत्त्वपूर्ण विषय है या यूँ कहिए कि जो हमारा जीवन बन चुका है। जन्मों-जन्मान्तरों में जिसके तहत हम जी रहे हैं व मर रहे हैं। हम फिर पैदा होते हैं तथा जीवन के विभिन्न निरर्थक, नकारात्मक व घातक आयामों को काटते हुए इस महाकाल-चक्र में घूमते रहते हैं। उस विषय का नाम है—**'बन्धन'।**

बंधे हुए हैं हम सब बहुत गहराई से, जैसाकि मैं अनेक बार इस व्यास-गद्दी से बता चुका हूँ कि खुदा और बन्दे में मात्र इतना ही छोटा सा अन्तर है कि **खुदा खुला हुआ है और बन्दा बँधा हुआ है।** बन्दा क्यों बँधा, इस बन्धन का आधार क्या है व इस बन्धन का औचित्य क्या है? क्या वास्तव में हम बँधे हुए हैं **या हम बँधे से** हैं? क्या उद्देश्य था हमारा इन बन्धनों के पीछे और क्या पाना चाहते थे हम इन बन्धनों के बदले? क्या जो पाना चाहते थे, वह हमें मिला? यदि नहीं! तो हम बन्धनों से मुक्त क्यों नहीं हो सकते? इन बन्धनों के बदले हम जो पाना चाहते थे वह तो नहीं मिला, बल्कि कुछ ऐसा मिला, जिसने हमारा जीना दुश्वार कर दिया। आज विश्व के समस्त मानवों के जीवन में जो रोग, कष्ट, विक्षेप, भय, त्रास, पाप, पुण्य, शुभ, अशुभ, जन्म, मृत्यु और जो भी कुछ है, वह मात्र मानव के इन्हीं तथाकथित बन्धनों के कारण है। इन बन्धनों के बदले हमें कुछ ऐसा मिला, जिसने हमें कहीं का भी नहीं रखा। हम सभी व्यथित हैं, त्रसित हैं, पीड़ित हैं। कष्टों में हम जीवन काट रहे हैं। अतः इन बन्धनों का विश्लेषण होना परम आवश्यक है।

क्या आधार है इस बन्धन का? हम बन्धन के कुछ चित्र अपने सम्मुख रखें। उदाहरणतः **एक गाय बँधी है** खूँटे से और रस्सी के साथ बँधी है। गाय, खूँटा और रस्सी तीन वस्तुएँ हैं। रस्सी का एक सिरा गाय की गरदन से बँधा है और दूसरा सिरा खूँटे से बँधा है। यह बन्धन का पहला चित्र है। यदि हम गाय को खोलना चाहें तो हमें रस्सी को या तो गाय की गरदन से खोलना होगा या खूँटे से, तो गाय खुल जायेगी।बन्धन का दूसरा चित्र है **एक गधे का**। जिसका उदाहरण मैं अनेक बार दे चुका हूँ कि जब हम किसी को मूर्ख की संज्ञा देते हैं तो उसे गधा कहते हैं। कोई और उपमा मूर्ख को नहीं दी जाती, तो हमारे मन में जिज्ञासा हुई कि गधे को ही मूर्ख क्यों कहते हैं? तब पता चला कि पुराने ज़माने में धोबी गधों पर घाट से कपड़े लाद कर लाते थे। धोबी थका होने के कारण सभी गधों को रस्सी से नहीं बाँधता था। पूरे झुण्ड में से एक गधे को निकाल कर, सब गधों को दिखाते हुए बाँध देता था और शेष सब गधों के गले पर वह वैसे ही हाथ फिरा देता था, गधे सारी रात बिना बन्धन के ही मूर्तिवत् खड़े रहते थे। क्योंकि, वे सब एक गधे को बँधता हुआ देखने के कारण अपने को भी बँधा हुआ मान लेते थे। सुबह धोबी उस एक गधे का बन्धन खोलकर शेष सबके गले में पुनः हाथ फिरा देता था और सब गधे खुल जाते थे। यह दूसरा बन्धन है—गधे के गले में रस्सी भी नहीं है लेकिन फिर भी वह **बँधा सा** सारी रात टस से मस नहीं हुआ। गाय के गले में रस्सी भी थी और वह खूँटे से बँधी भी थी।

अब बन्धन का तीसरा चित्र देखिए। आज सब बन्धनों का विश्लेषण होगा। इन तीनों बंधनों का चित्र अपनी स्मृति में बना लीजिए। एक बार एक पागल ने एक पेड़ को पकड़ लिया और ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाना प्रारम्भ कर दिया कि मुझे पेड़ ने पकड़ लिया, मुझे छुड़ाओ। लोग वहाँ से गुज़र रहे थे और उसे पागल समझ कर हँस रहे थे। तो यहाँ खूँटा भी है, क्योंकि पेड़ है, लेकिन रस्सी नहीं है, पागल है जो समझ रहा है कि उसे पेड़ ने पकड़ लिया है और वह चिल्ला भी रहा है। गाय चिल्ला नहीं रही थी, गधा चीख-पुकार नहीं मचा रहा था। इतने में एक महात्मा वहाँ से चिमटा बजाते हुए निकले,

तो पूछा कि भगत जी चिल्ला क्यों रहे हो? पागल बोला—महाराज! मुझे बचाओ, मुझे पेड़ ने पकड़ लिया है। सब मुझ पर हँस रहे हैं। महात्मा ने कहा कि हम तुम्हें अभी छुड़ा देते हैं और उन्होंने उसकी पीठ पर चिमटा मारा। तब वह पागल दर्द से व्याकुल हुआ और उसके दोनों हाथ छूट गये। वह महात्मा के चरणों में पड़ गया कि महाराज! बड़ी कृपा की, कमर में थोड़ी दर्द हो रही है, मगर मैं छूट गया हूँ। **यहाँ पेड़ रूपी खूँटा भी है और उससे तथाकथित बँधा हुआ एक व्यक्ति भी है, लेकिन रस्सी नहीं है।** इन तीनों बंधनों का स्मृति-चित्र आप अपने मन में रखिए, आपको अपने बंधनों का विश्लेषण करने में बहुत सहायता मिलेगी।

सर्वप्रथम हमारा जो महाबन्धन है, जो हमारा स्वरूप ही हो गया है, वह है—**'हमारा देह-बन्धन'।** यदि हम गम्भीरता से विचार करें तो हम पाएँगे कि जिस देह से हम बँधते हैं या जिस देह को हम अपना स्वरूप ही मान लेते हैं, वह देह हमसे कभी नहीं बँधती। वह देह हमारी बिल्कुल नहीं है। इतना घनिष्ठ बन्धन होता है हमारा देह से, कि जन्म-जन्मान्तरों में जीवात्मा रूपी मानव ने इस देह को ही अपना स्वरूप समझ लिया। हम सब स्वयं से कुछ प्रश्न करें, जो ईश्वर को मानते हैं वे भी और जो ईश्वर को नहीं मानते, वे भी। सब स्वयं से व्यक्तिगत प्रश्न पूछें—कि आप कब पैदा हुए, किन विशिष्ट सामाजिक, आर्थिक व पारिवारिक परिस्थितियों में आपका जन्म हुआ? तो आप वही बताएँगे जो आपको बताया गया है, क्योंकि हममें से किसी ने स्वयं को पैदा होते हुए नहीं देखा है। यदि पूछा जाए कि विशेष उसी दिन आपका जन्म क्यों हुआ, उसी स्थान पर क्यों हुआ, उन्हीं परिस्थितियों में क्यों हुआ, तो आप क्या उत्तर देंगे? आपके दोनों हाथ ऊपर वाले की ओर ही तो उठेंगे, कि मैं नहीं जानता। **जो ईश्वर को नहीं मानते वे भी यही कहेंगे और जो ईश्वर को मानते हैं, वे भी यही कहेंगे।** आपको विशेष प्रकार की शिक्षा-दीक्षा क्यों मिली, विशेष स्त्री-पुरुष से आपका विवाह क्यों हुआ, विशेष प्रकार की संतानें क्यों हुई? आपका विशेष आर्थिक स्तर क्यों है, आप विशेष व्यवसाय में क्यों हैं, आप मरेंगे कब, कैसे, कहाँ? मरने के बाद आपको कन्धा

कौन देगा, आपकी भस्मी को गंगा या यमुना में कौन प्रवाहित करेगा? जीवन की अन्य सभी विशिष्ट घटनाएँ क्यों घटीं? आप नहीं जानते। जीवन में आपके विशेष मित्र, शत्रु, सम्बन्धी क्यों हैं, आप नहीं जानते। जिस देह के एक क्षण के विषय में हम नहीं जानते, उस देह को हमने न केवल अपना स्वरूप मान लिया है बल्कि हम उस देह के साथ बँध गये। इतना कठिन **'बन्धन सा'** बँध गया कि मानव को देह से अध्यास हो गया कि **'मैं यह देह हूँ'**। मानव बन्धन भी भूल गया क्योंकि वह स्वयं को यह देह ही समझने लगा, **देह जो इसके साथ बिल्कुल भी बँधी हुई नहीं थी।**

आपका जन्म, मृत्यु, धर्म, कर्म, विवाह, शादी, कर्त्तव्य, कृत्य, मित्र, शत्रु, सम्बन्धी, पड़ोसी, देश, काल, पद, पोस्ट, व्यापार, सन्तान, शिक्षा कुछ भी आपसे बँधा हुआ नहीं था, लेकिन आप उस देह के साथ बँध गये। अपने बन्धन की गुणवत्ता के स्तरों, उसके विविध आयामों का विश्लेषण करने का प्रयास करिए। आप जिससे बँधे हैं, वह आपसे बिल्कुल भी बँधी नहीं है और आप उससे इतना बँधे हैं कि उसी को अपना स्वरूप मान लिया है। शास्त्र ने इसे **'देहाध्यास'** कहा है। **'मैं देह हूँ,' 'यह देह मेरी है'** इस देह रूपी आधारशिला से, जो कि हमारे साथ बिल्कुल भी बंधी हुई नहीं थी, उसे लेकर हम योजनाएँ, परियोजनाएँ बनाते हैं। धन का प्रबन्ध करते हैं और न जाने क्या-क्या करते हैं! बच्चों के कैरियर बनाकर उन्हें पब्लिक कैरियर बना देते हैं। समस्त बन्धनों का एकमात्र आधार जो तथाकथित हमारी देह है, उस देह के बन्धन में बँध कर हम फँस गए, क्योंकि वह देह तो हमसे एक क्षण के लिए भी नहीं बँधती। अगले क्षण हमारी देह का हमारे साथ क्या व्यवहार होगा, हम नहीं जानते। मैं बार-बार इसकी पुनरावृत्ति इसलिए कर रहा हूँ कि आप शास्त्र, वेद, पुराण, उपनिषद् आदि ग्रन्थों को भूल कर जीवन के इस सत्य पर एकाग्र करिए तो आपको सत्य का ज्ञान हो जाएगा। परम सत्य पल्ले पड़ जाएगा। यह देह क्या है और आपका इस देह के साथ क्या सम्बन्ध है?

उस देह के साथ आप बँधे हुए हैं, जो आपके साथ बिल्कुल भी बँधी

हुई नहीं है। उसका परिणाम क्या होता है? आप इस महासत्य को अनदेखा नहीं कर सकते। यह देह स्वयं में एक महापुराण है। इसे पढ़िए, इस देह की ही कृपा से।

ईश्वर साकार व निराकार दोनों में सच्चिदानंद हैं। सत्+चेतन और आनन्द का अविरल और अकाट्य सम्मिश्रण हैं। उस ईश्वर की बनाई हुई है यह **देह**। मानव-मन ईश्वरीय आनन्द का स्त्रोत था, मानव-बुद्धि ईश्वरीय चेतना का स्त्रोत थी और दोनों के सामंजस्य से हुए मानवीय कृत्य ईश्वरीय सद् के द्योतक थे। अतः मानव-देह स्वयं में उस सच्चिदानंद की सीधी प्रतिनिधि थी, स्वयं में चलता-फिरता तीर्थ थी, ईश्वर के छः गुणों से विभूषित थी। सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, ख्याति व त्याग, ये विभूतियाँ मानव-देह में ठसाठस भरी थीं। सतयुग, द्वापर, त्रेता व कलियुग ये चारों युग एक ही समय में मानव-देह में रहते हैं। आपका खान-पान, विचार व संग जैसा होता है आप उस एक समय में, उसी युग में विचरते हैं। आप एकाग्र करिए, आप माँस-मदिरा का सेवन करने लगिए तो आपके सम्मुख लड़ाई, झगड़ा, गाली, गलौच आदि के रूप में **'कलिकाल'** प्रकट हो जायेगा। अपनी देह के द्वारा आप जप, तप, यज्ञ, हवन व सत्संग में बैठ जाइए, आपके सम्मुख **'सतयुग'** प्रकट हो जायेगा। **आप इस मानव-देह द्वारा अपने सम्मुख जैसा चाहें वैसा युग प्रकट कर सकते हैं।**

सभी लोक-लोकान्तर, स्वर्ग, बैकुण्ठ से लेकर अपवर्ग तक, नरक से लेकर घोर नरक तक सभी मानव-देह में हमेशा रहते हैं। आप जैसा चाहें वैसा धाम अपने सम्मुख प्रकट कर सकते हैं। पाँचों निराकार महाभूतों— पृथ्वी, जल, वायु, आकाश व अग्नि का अविरल व अकाट्य संगम है, यह मानव-देह। आकाश के समस्त तारागण, ग्रह नक्षत्र मानव-देह में हैं। योगी अपने ध्यान में सूर्य, चन्द्रमा आदि ग्रहों की गतियाँ देख लेता है। वायु की समस्त गैसें, जल के समस्त तत्त्व, पृथ्वी की समस्त धातुएँ, अधातुएँ मानव-देह में हैं। आयरन, कैल्शियम, ज़िन्क आदि का विशेष सन्तुलन स्वस्थ मानव देह में होना आवश्यक है। एक त़व की भी थोड़ी सी कमी हो

जाए तो मानव भयानक रोग से ग्रसित हो जाता है। शास्त्र में वर्णित अठारह अग्नियाँ, प्राण, अपान, समान, व्यान व उदान पाँचों-प्राण हैं, इस मानव-देह में। पाँचों-प्राणों से मानव-देह उद्दीप्त होती है, संचालित, पालित व संहारित होती है। चौरासी लाख योनियों का प्रतिनिधित्व है, मानव-देह में। आप स्वयं से भेड़िया प्रकट कर लीजिए, सूअर, साँप, बिच्छू, कुत्ता, शेर कुछ भी प्रकट कर सकते हैं और प्रत्येक मानव में किसी न किसी पाशविक वृत्ति की प्रधानता अवश्य होती है। इस प्रकार समस्त मायिक सृष्टि का संघनित रूप है यह मानव-देह। उस देवाधिदेव महादेव के तीन स्वरूप हैं—ब्रह्मा, विष्णु और महेश। **आपकी मानव-देह में ब्रह्मत्व, विष्णुत्व एवं शंकरत्व तीनों एक ही समय में विचरते हैं। आप जो स्वरूप चाहें प्रकट कर सकते हैं।**

ईश्वर ने ऐसी देह की संरचना करके जीवात्मा को दी तो यह उपहार में नहीं दी, क्योंकि उपहार देकर वापिस नहीं लिया जा सकता और देह तो बिना हमारी जानकारी के जब चाहे हमसे छीन ली जाती है। इस देह का पूर्ण संचालन ईश्वर ने अपने हाथों में रखा, क्योंकि उसे ज्ञात था कि जीवात्मा इस देह का दुरुपयोग कर सकती है। तो ईश्वर ने इस देह को अपना और अपने कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों का प्रतिनिधित्व दिया और जब जीवात्मा को यह मिली तो उसने यह जानने का प्रयास ही नहीं किया कि ईश्वर ने उसे यह उत्कृष्टतम, विलक्षणतम, भव्यतम देह क्यों दी है? कृपया समझने का प्रयत्न करिए, मैं एक अति सरल दृष्टान्त देकर समझाने का प्रयास करता हूँ।

एक रिक्शा वाले को किसी ने एक करोड़ रुपया दे दिया और कहा इसे आनन्द से खर्चो। अब उसने एक करोड़ तो क्या कभी एक हज़ार रुपये भी नहीं देखे थे। उसे घबराहट हो गयी कि मैं क्या करूँ और घर जाते-जाते उसकी हालत खराब हो गई। रात को उसको नींद भी नहीं आई। सुबह पत्रकार उसके घर पहुँचे कि आप इस रुपये का क्या करेंगे, आप बताइए। तब वह घबराहट में बोला कि मैं सड़कें मखमल की बना दूँगा ताकि मुझे रिक्शा चलाने में आसानी हो जाये। सड़कें टूटी-फूटी, गड्ढे वाली होती हैं

तो रिक्शा चलाने में दिक्कत हो जाती है। उसे यह ज्ञान नहीं था कि करोड़ रुपया कितना होता है और उसका वह सदुपयोग कैसे करे। यही हुआ जीवात्मा के साथ। जब हमें इतनी अनुपम विलक्षण यह मानव-देह मिली, हमने ये जानना ही नहीं चाहा कि यह हमें क्यों दी गई है। रिक्शा वाले की बुद्धिमता यह होती कि वह एक करोड़ रुपया देने वाले से यह पूछता कि आप मुझे ये रुपये क्यों दे रहे हैं। मुझे तो एक करोड़ रुपया क्या होता है, कैसे खर्चना है, कुछ भी ज्ञात नहीं है! मैं तो इसका प्रयोग करना नहीं जानता, तो देने वाला उसे रुपये के प्रयोग का तरीका अवश्य बताता। क्या आपने ईश्वर के सामने कभी यह प्रार्थना की है कि प्रभु आपने यह अजूबा जो मुझे दिया है, मुझे इसका प्रयोग करना नहीं आता। अरे! किसी को नहीं आता इस देह को इस्तेमाल करना। ईश्वर की सम्पूर्ण मायिक सृष्टि सम्पूर्ण कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों का संघनित रूप यह मानव-देह आपको मिली हुई है। हमको इसका प्रयोग ज्ञात नहीं था और हमने जानना चाहा भी नहीं। अज्ञानतावश, मूर्खतावश अथवा जानबूझ कर हमने इस पर अपना अधिपत्य कर लिया और हमारे समस्त दुःख-सुख, त्रास, विक्षेप, रोग, दोष तथा समस्त बन्धन वहीं से प्रारम्भ हो गए।

मानव को यह तो ज्ञात था कि यह देह एक चमत्कारिक अजूबा सा तो है, क्योंकि इसकी प्रत्येक विधा के विषय में यह दोनों हाथ ऊपर की ओर उठाकर अपनी अज्ञानता व अबोधता स्वीकार करता रहा। लेकिन इसने यह जानने का प्रयास भी नहीं किया कि यह इसे मिली क्यों? यदि वह शालीनता व ईमानदारी से ईश्वर के चरणों में देह को समर्पित कर देता, कि प्रभु! यह देह आपने मुझे दी है और मैं इसका इस्तेमाल करना नहीं जानता तो इसकी सारी समस्याओं का समाधान हो जाता। इसने देह पर अधिपत्य किया और इसे देह पर अध्यास हो गया जिसके कारण यह बहुत ही किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया। इसके बाद इस देह के बन्धन को बनाए रखने के लिए इसने और कई बन्धन बाँधने शुरू कर दिये। जैसेकि हम किसी पराई ज़मीन पर अनधिकृत कब्ज़ा करना चाहते हैं तो साधारणतया

क्या करते हैं पहले उस ज़मीन पर कच्चे खूँटे गाढ़ देते हैं। फिर जब देखते हैं कि साल-छः महीने किसी ने कुछ नहीं कहा तो वहाँ पक्के सीमेंट के खम्बे गाड़कर काँटों की तार लगा देते है। फिर भी कोई पूछताछ नहीं होती तो वहाँ कच्चा सा कमरा डाल कर पशु बाँध देते हैं या मन्दिर बनवा देते हैं। ऐसे ही धीरे-धीरे ज़मीन पर अनधिकृत कब्ज़ा कर लेते हैं। इस देह को प्राप्त करके यह मानव डर तो गया था, क्योंकि इसका प्रयोग करना नहीं जानता था। आज प्रत्येक व्यक्ति भयभीत है, क्योंकि वह अपनी देह का सामना नहीं कर पाता। लोग मदिरापान क्यों करते हैं? क्यों भागते हैं हर शाम क्लबों व पार्टियों में, क्योंकि अपनी देह का सामना करना बहुत कठिन है। **जब आप अपनी देह के रूप में स्वयं अपना सामना करने लगेंगे तो आप ईश्वर के साक्षात्कार के अधिकारी हो जाएँगे।** हम सभी स्वयं से भाग रहे हैं। लोगों के पास दूसरों की आलोचना करने का बहुत समय है, लेकिन बाखुद स्वयं के पास बैठने का न तो साहस है और न ही समय है। जिस दिन हम अपने पास बैठने लगेंगे, हमारी देह हमारा स्वागत करने लगेगी, उस दिन हम उस परम सत्य की अनुभूति के अधिकारी हो जाएँगे :—

''जिस्म और रूह का रिश्ता भी क्या रिश्ता है
उम्र भर साथ रहे मगर तआरुफ न हुआ।''

हमारा परम दुर्भाग्य है कि हमारा खुद से परिचय ही नहीं होता और उसी दुर्भाग्य में हम जन्मों-जन्मान्तरों में जीवन काटते हुए काल-चक्र में घूमते रहते हैं। हम अपनी देह के साथ बँध जाते हैं और उस **'बन्धन से'** को आत्मसात् करने के लिए अनेक बन्धन पाल लेते हैं। (**'बन्धन से'** इसलिए कहा है क्योंकि देह तो हमारे साथ एक क्षण के लिए भी नहीं बँधती) जैसेकि हम एक झूठ को छुपाने के लिए अनेक झूठ बोलते हैं। इसी प्रकार इस अनधिकृत कब्ज़े, इस मिथ्या बन्धन को पचाने के लिए—**इसके परिचय के लिए, प्रतिष्ठा के लिए, प्रमाण के लिए, प्राप्तियों के लिए, पूर्णता के लिए, परिस्थितियों के लिए और अन्ततः पागलपन में अनेक बन्धन उत्पन्न करने शुरू कर देते हैं।**

आपका परिचय—कि मेरा नाम अमुक-अमुक है, मैं अमुक-अमुक का पुत्र हूँ, इस देश, घर, धर्म, जाति, कुल, प्रान्त का हूँ आदि-आदि। अपनी पूर्णता के लिए इसने अनेक सम्बन्धों के बन्धन बना लिए। मेरा वह भाई, बहन, चाचा, मामा, बुआ, भतीजा आदि-आदि हैं। फिर और पूर्णता के लिए इसने विवाह, शादी की, फिर बच्चे हुए, उनका बन्धन पाल लिया। उनके कैरियर बनाने और जीवन चलाने की जिम्मेवारी ले ली। जब सम्बन्ध बनते हैं तब तो बड़ा आनन्द आता है, लेकिन इनको निभाना बहुत ही कठिन होता है। रोज़ कोई न कोई विवाह-शादी का निमन्त्रण आ जाता है, तो भयभीत हो जाते हैं कि अब जाना पड़ेगा, शगुन भी देना पड़ेगा, सब दैनिक व्यवहार की बातें हैं। इन सम्बन्धों को निभाने में, अपनी घनिष्ठता के झूठे दिखावे में जीवन दुश्वार हो जाता है। किसी की मृत्यु होने पर जाना पड़ता है और वहाँ शोक प्रदर्शित करने के लिए दुःखी होने का नाटक करना पड़ता है। आप सभी भुक्तभोगी हैं। रोज़ देखते हैं किसी की विवाह-शादी, सुख या दुःख में हम इसलिए नहीं जाते कि हमें बहुत सुख या दुःख है, बल्कि इसलिए जाते हैं कि हम नहीं गए तो हमारे यहाँ कौन आएगा! अपने दिल से स्वयं पूछकर देखिए। आप अपनी पूर्णता के लिए इस प्रकार के अनेक बन्धन पाल लेते हैं जिन्हें निभाना आपके लिए असम्भव सा हो जाता है और अक्सर उसके बदले में आपको बुराई ही मिलती है। आप मान-प्रतिष्ठा चाहते हैं तो आप धर्म, कर्म व सामाजिक संस्थानों से बँध जाते हैं। आजकल धर्म-कर्म भी क्लबों-पार्टियों की तरह ही हो गया है कि मैं उस संस्था का अध्यक्ष हूँ, मेरा बड़ा नाम है। अनेक चुनाव हम अपनी प्रतिष्ठा के लिए लड़ते हैं और उस प्रतिष्ठा के प्रमाण के लिए बन्धन मोल ले लेते हैं कि आप अमुक शहर में अमुक व्यक्ति से मिल लेना, वह आपको मेरे बारे में बताएगा। फिर उस प्रतिष्ठा को प्रमाणित करने वाले को भी कुछ ले दे कर खुश रखना होता है क्योंकि आपको भय होता है कि कहीं आपके बारे में वह कुछ उल्टा-सीधा न कह दे। ये सब आम बातें हैं, कोई शास्त्र या वेद पढ़ने की आवश्यकता नहीं है, आप बस स्वयं को ईमानदारी से परख लीजिए।

आपके अनेक बन्धन प्राप्तियों की इच्छा में बन जाते हैं। डिग्रियाँ चाहिए, पोस्ट चाहिए, वहाँ जुगाड़ लगाओ, उसे रिश्वत दो, सिफारिश करो। आप प्राॅपर्टी चाहते हैं, ऐश्वर्य चाहते हैं, और न जाने क्या-क्या चाहते हैं, इस देह के लिए। देह जो आपकी नहीं है और आपसे बिल्कुल भी **बँधी नहीं** है। प्राप्तियाँ भी कौन सी! आप भाग-दौड़ कर वो पाना चाहते हैं, जो आप साथ लेकर पैदा हुए हैं। आपने इस देह को तो जानना नहीं चाहा कि यह देह है क्या? आप प्राप्य की प्राप्तियों के लिए भाग-दौड़ में निरर्थक व नकारात्मक संघर्ष करते हैं। **जो वस्तुएँ हमें बैठे-बिठाए प्राप्त होनी थीं, उन्हीं की प्राप्ति के लिए भाग-दौड़ करते हैं।** आप ध्यान दीजिए, जब भी आपको यह देह मिली, आपको बनी-बनाई मिली। क्या किसी ने स्वयं अपनी देह को बनाया है, क्या किसी ने अपने माँ-बाप को बनाया है? माता-पिता बने-बनाए मिले हैं। जिस स्कूल में आप शिक्षा प्राप्त करते हैं, वह स्कूल और शिक्षण-संस्थान आपके जन्म से अनेक वर्ष पहले आपके लिए बना दिया गया था। जिस पुरुष या स्त्री से आपका विवाह होता है, क्या आपने उसे स्वयं बनाया? सब कुछ पहले से ही बना-बनाया होता है। जब हमने होश सम्भाला, हमने अपनी देह को अपने साथ पाया। देह हमें स्वतः प्राप्त हुई, ऐसे ही सन्तान प्राप्त होती है, ऐसे ही जीवन की समस्त घटनाएँ होती हैं। प्रौपर्टी, धन, पोस्ट आदि भी स्वतः ही मिलते हैं। जिस समय हमें कुछ मिलना होता है, उस वक्त ईश्वर वैसी ही परिस्थिति हमारे सम्मुख प्रकट कर देता है। हमारी बुद्धि तदनुसार प्रेरित हो जाती है। **ईश्वर ने खेलने के लिए कुछ कृत्य निर्धारित किए होते हैं जो तीन आनन्दों से युक्त होते हैं। लेकिन जो मानव-कृत कार्य होते हैं, उनमें इन तीनों में से कम से कम एक आनन्द अवश्य ही लुप्त हो जाता है।** आप इस विलक्षण देह पर अधिपत्य कर लेते हैं। ईश्वरीय बुद्धियाँ आच्छादित हो जाती हैं और हम मात्र आई. क्यू. वाली बुद्धि से इधर-उधर भागते रहते हैं।

आज विज्ञान बहुत प्रगति कर गया है। इस आई. क्यू. वाली बुद्धि ने अनेक वैज्ञानिक अनुसंधान कर लिए हैं, लेकिन हम अपनी देह से बहुत दूर

हो गए हैं। विज्ञान देह तक नहीं पहुँच सकता, हम चिकित्सक भी, जो तथाकथित बहुत बड़ी-बड़ी डिग्रियाँ लिए हुए हैं, इस देह के बारे में क, ख, ग से अधिक नहीं जानते। इस देह पर अनधिकृत कब्ज़ा करके जब हम इस देह-बन्धन के परिचय, पूर्णता, प्रतिष्ठा, प्रमाण, प्राप्तियों, परिस्थितियों के लिए व पागलपन में अनेक सम्बन्ध और बन्धन बना लेते हैं तो हम तनावित होकर अनेक रोगों से घिर जाते हैं। देह का हमसे सम्बन्ध खराब हो जाता है और यह देह हमें परेशान करने लगती है।

प्राप्तियों के बाद हम सोचते हैं कि भविष्य में जीवन में कभी कठिन परिस्थिति आने पर भी हम सुरक्षित रहें, तो इस देह का बीमा करवाते हैं। हम ईश्वर का घोर अपमान करते हैं। ईश्वर की सम्पूर्ण महामाया प्रकृति के संघनित रूप इस देह का कुछ लाख रुपये में बीमा कराते हैं। अरे ! करोड़ों रुपये भी इस देह के एक बाल के बराबर नहीं हो सकते। अपने बच्चों के भविष्य के लिए भी हम अनेक सुरक्षाएँ करते हैं। इस प्रकार बँधते—बँधते हम कहीं न कहीं अधूरे रह जाते हैं और जीवन के अन्त में आसक्तियों को लेकर मर जाते हैं। हमारी देह की एक अवधि है। देह हमारी योजनाओं, आकांक्षाओं के पूरा होने की प्रतीक्षा नहीं करती। जब इसका समय पूरा हो जाता है, यह अकाल पुरुष द्वारा वापिस ले ली जाती है। देह हमको छोड़ देती है परन्तु हम देह को नहीं छोड़ना चाहते। क्योंकि जीवन में और-और पाने की चाह में निरन्तर असंतुष्ट और आसक्त रहते हैं।

आप दैनिक जीवन में देखते हैं कि जो बहुत महत्त्वपूर्ण नामी गिरामी व्यक्ति हैं, वे अति वृद्ध हो कर रुग्ण मरते हैं। अखबार में रोज़ उनके स्वास्थ्य के बारे में समाचार निकलता है कि आज क्या नया निरीक्षण व परीक्षण हुआ, यह हुआ, वह हुआ। अपनी पूर्ण संकल्प-शक्ति से वे संघर्ष करते रहते हैं, बड़े तमाशे होते हैं। इतिहास सारा तमाशों पर लिखा हुआ है और उसमें कोई तथ्य नहीं है, जो तथ्य हैं, वे कहीं लिखे हुए नहीं हैं। यदि किसी आरिफ ने लिखे हैं तो उन्हें पढ़ने सुनने के लिए असीम कृपा की आवश्यकता है। कभी ये अहं न करना कि मैं गीता का मर्मज्ञ हूँ या मैंने सभी वेद—शास्त्र पढ़े

हुए हैं। अरे! यदि उसका एक तथ्य भी आपके पल्ले पड़ जाये तो आपकी ज़िन्दगी परिवर्तित हो जाएगी। महापुरुषों का लिखा–बोला एक शब्द भी यदि आप आत्मसात् कर पाएँ तो आपका जीवन बदल जाएगा, क्योंकि शब्द, **'ब्रह्म'** है।

अन्ततः पागलपन के वश, अनेक बन्धनों में जकड़ी यह देह हमें छोड़ जाती है और हमारी अकाल मृत्यु होती है, चाहे हम 200 वर्ष की आयु भोग कर क्यों न मरें! देह को जब हम छोड़ते हैं (आत्महत्या करके नहीं) हमारे दिलो-दिमाग से जब देह का महत्त्व समाप्त हो जाता है तो उसे कहा है **निर्वाण, मोक्ष या मुक्ति।** जीवन के रहते हुए जब जीवन का रहस्य आत्मसात् कर लेते हैं तो आप के लिए देह का महत्त्व नहीं रहता और आप जीवन-मुक्त हो जाते हैं। मरने का नाम मुक्ति नहीं है, रात को सोने का नाम मुक्ति नहीं है। मोक्ष क्या है? जैसा कि हमने बताया कि देह के साथ हमारा बन्धन, **'बन्धन सा'** है, क्योंकि देह हमारे साथ बिल्कुल भी बँधी नहीं है। हमारे समस्त बन्धनों का आधार एकमात्र देह-बन्धन ही है। हम उस **बन्धन से** को अपना स्वरूप समझ बैठे, क्योंकि जब-जब जन्म-जन्मान्तरों में हमने होश सम्भाली तो हमने देह को अपने साथ पाया। तो हम क्या करें? अब आप गाय के बन्धन, गधे के बन्धन और उस पेड़ के साथ पागल के तथाकथित बन्धन के स्मृति-चित्र को अपने सम्मुख रखिए।

जब हम इस देह के **बन्धन से** के कारण, अनेक सांसारिक बन्धनों से त्रसित, भयभीत और परेशान हुए आर्तनाद करते हैं तथा चिल्लाते हैं कि मुझे इन बन्धनों से छुड़ाओ। तब हम सभी उस पागल की तरह से व्यवहार करते हैं क्योंकि हमने ही संसार रूपी पेड़ को पकड़ा होता है, संसार ने हमें नहीं पकड़ा। **हम रहें न रहें, संसार चलता रहता है।** हमारी धन, सम्पदा, जाति, धर्म, देश, पोस्ट, डिग्रियाँ परिवार, सम्बन्ध किसी ने हमें नहीं पकड़ा, हम ही इनसे बँधे रहते हैं। और तो और हम समय से बँध जाते हैं कि इतने बजे मुझे यहाँ पहुँचना है, अरे! आपके हाथ में है क्या? अतः ये बन्धन हमें त्रसित करने लगते हैं, क्योंकि हम इनसे सुख, शान्ति, सुरक्षा, आनन्द व भोग चाहते

थे और वह सब मिला ही नहीं। इसके विपरीत हमें कष्ट, भय, त्रास, विक्षेप और अशान्ति ही मिली।

अतः जिस-जिस वस्तु से हम इस देह के परिचय, पूर्णता, प्रतिष्ठा, प्रमाण, प्राप्तियों, परिस्थितियों आदि से पागलपन की सीमा तक बँधे, उन बन्धनों का निर्वाह हम कर नहीं पाए। वे इतने अस्थिर थे कि स्वयं बन्धन ढूँढ रहे थे, वे मोबाइल खूँटे थे। **यदि आपको किसी से बँधना है तो वह खूँटा स्थिर तो होना चाहिए।** यदि गाय जिस खूँटे से बँधी है, वह खूँटा पक्का न हो तो गाय मारी-मारी ही तो फिरेगी। अस्थिर खूँटों के साथ आप भी अस्थिर ही रहते हैं। जैसेकि अमुक मंत्री मेरा जिगरी दोस्त है। पता चला कि अगले चुनाव में उसकी ज़मानत ही जप्त हो गई। **यह ध्यान रखना संसार में हम जहाँ भी बँधेंगे वे बन्धन आपको कभी न कभी भयंकर वेदना अवश्य देंगे।** हमारे समस्त मानसिक तनाव, रोग, निर्धनता, पाप, पुण्य, शुभ, अशुभ, दोस्ती, दुश्मनी, राग, द्वेष सब इन्हीं तथाकथित बन्धनों के ही कारण पैदा हुए हैं।

हम जब भी कोई चीज़ बाज़ार से खरीदते हैं, तो उसकी गारन्टी लेते हैं। अतः आप जब किसी से कोई सम्बन्ध बनाते हैं तो उसकी गारन्टी तो लीजिए। आप देह से जुड़े हैं, क्या आपने इसकी गारन्टी ली? कौन देगा इसकी गारन्टी? वही, जिसने इस देह को बनाया है, जिसके हाथ में इसका सर्वाधिकार है। जो देह का स्वामी है, जिसके हाथ में इसका एक-एक श्वास है, उससे इसकी गारन्टी लीजिए। अन्यथा इसका प्रयोग मत करना, नहीं तो आपकी देह ही आपके सर्वनाश का कारण बन जायेगी।

हम गारन्टी लिए बिना ही इसे अपना मानकर प्रयोग करना शुरू कर देते हैं। बड़े खुश होते हैं कि हमारे यहाँ लड़का पैदा हुआ, बीस साल बाद हमारा मुँह लटक जाता है कि ना पैदा हुआ होता तो अच्छा था। लड़की के लिए लड़का देखते हैं तो बड़ी प्रसन्नता से कहते हैं कि बड़ा अच्छा लड़का है, बड़े घर का है। पूछा, कि शराब तो नहीं पीता? शराब तो आजकल थोड़ी बहुत सभी ले लेते हैं, फैशन है, सोसाइटी में चलन ही ऐसा है। पाँच-सात साल बाद पता चला कि लड़की घर वापिस आ गई। क्योंकि, हम भौतिक

जगत को देखते हैं, हम उसकी गारन्टी नहीं लेते। अरे! जिसकी वह चीज़ है, उससे उसे बांध दीजिए। यदि आप देह का आनन्द व भोग चाहते हैं, तो रोज़ सुबह उठकर जिसकी वह देह है, उसके चरणों में समर्पित करिए, कि हे प्रभु! यह देह मेरी नहीं है। इसमें शर्म की बात नहीं है। आपकी तो है ही नहीं, शास्त्र ने इसे नित-नूतन कहा है। रोज़ सुबह आपका जन्म होता है और रात को निर्वाण हो जाता है। मैंने **'अद्य दिवसम्'** प्रवचन में इसका सविस्तार वर्णन किया है। यहाँ समर्पण शब्द बहुत अधूरा है क्योंकि हम समर्पण उस वस्तु का कर सकते हैं जो हमारी हो और यह देह तो हमारी है ही नहीं।

उस **सर्वशक्तिमान के सम्मुख उस देह के समर्पण का समर्पण करिए**। आप नाम, अनाम, रूप, अरूप, साकार, निराकार जिस भी रूप में ईश्वर को मानते हैं, उससे किसी भी भाषा में अथवा मौन ही, भावपूर्वक मन ही मन कहिए कि ''प्रभु! आपने जो यह अजूबा मुझे दिया है, मुझे इसका कुछ भी ज्ञान नहीं है और मुझे यह भी नहीं मालूम कि आपने मुझे यह देह क्यों दी है? मैं इस देह का प्रयोग करना भी नहीं जानता। जब-जब मैंने इस देह का प्रयोग किया है, तुम खुद चश्मदीद गवाह हो कि मैंने इसका गलत इस्तेमाल किया है। मैंने इस बुद्धि का गलत उपयोग किया है। इस शरीर की विभिन्न शक्तियों का दुरुपयोग किया है। आप स्वयं जानते हैं, और मैं बार-बार पकड़ा गया हूँ। मेरे ऊपर केस चला है और उस केस फाइल का नाम है **'प्रारब्ध'**।'' आप अपने प्रोग्राम मत देखिए कि आज आपको इतने बजे अमुक-अमुक स्थान पर पहुँचना है, क्योंकि प्रभु आपके कार्यक्रमों से बँधे हुए नहीं हैं। आपकी प्रार्थनाओं में गहराई और वज़न होना चाहिए, आप जीवात्मा हैं। रोते हुए प्रार्थना करनी है, क्योंकि जब रोते हुए प्रार्थना करेंगे तो वह प्रार्थना आपकी रूह से निकलेगी। तब जीवात्मा प्रार्थना करेगी कि ''प्रभु! मैं आपके द्वारा प्रदत्त इस देह की किसी भी शक्ति के बारे में नहीं जानता और इसे जानने की क्षमता भी मुझ में नहीं है, इसलिए हे प्रभु! मेरी ओर से इस देह व इस देह की समस्त शक्तियों का इस्तेमाल तुम ही करो, क्योंकि यह देह तुमने ही मुझे दी है :—

''बहुत जनम जिए रे माधो ये जनम तुम्हारे लेखे''

आप अपनी देह की 'पावर ऑफ अटोरिनी', 'मुख्त्यारनामा आम' रोज़ सुबह रोते हुए प्रभु को दे दीजिए। इसके साथ एक तकनीकी आध्यात्मिकता और बता रहा हूँ। मान लो कोई किसी मज़दूर को बेशकीमती कार भेंट में दे और वह उसके उचित इस्तेमाल से अनभिज्ञ होने के कारण उसमें गारा मिट्टी आदि ढोने का काम करे। (जैसा कि हम अपनी देह के साथ कर रहे हैं) तो उस मज़दूर की समझदारी इसमें है कि वह भेंटकर्त्ता को वापिस दे दे। अब आप एक काम और करना, आपकी प्रार्थना के विषय में बता रहा हूँ। आप प्रभु से कहना कि **आपने यह जो चमत्कारिक, उत्कृष्टतम, विलक्षण देह के रूप में अजूबा मुझे दिया है, यह आपका है। एक-एक क्षण, एक-एक पल, एक-एक प्राण व एक-एक गति आपकी है, अतः मैं आपकी ही शक्ति से, आपकी ही कृपा से, इसे आपको समर्पित करता हूँ। मुझमें शक्ति ही नहीं है कि मैं इसका समर्पण भी कर सकूँ।** मुझे तो यह बहुत अच्छी लगती है। मैं इसका कुछ भी नहीं जानता अतः मैं इसे तुम्हारी ही दी हुई शक्ति से समर्पित करता हूँ। इसे तुम मेरी ओर से उपयोग करो। **साथ ही यह भी कहना कि प्रभु ! यह देह भी तुम्हारी है और मैं भी तुम्हारा हूँ।** क्योंकि यदि हम किसी को कोई चीज़ भेंट दें और वह यह कहे कि मैं इसका इस्तेमाल करना नहीं जानता तो हम उससे लेकर किसी और को दे देंगे। परन्तु यदि वह व्यक्ति हमारा स्वजन होगा तो हम उसके लिए उस वस्तु के रख-रखाव व प्रयोग का प्रबन्ध भी करवा देंगे। तो आप स्वयं को भी प्रभु समर्पित कर दीजिए कि **''हे प्रभु ! यह देह भी तुम्हारी है और मैं भी तुम्हारा हूँ। यदि मेरे आनन्द के लिए, खेलने के लिए यह देह तुमने मुझे दी है तो मेरी ओर से मेरे आनन्द के लिए, मेरे हित में तुम इसे इस्तेमाल करो, ताकि मैं आज के दिन के जीवन के एक-एक पल का भरपूर आनन्द ले सकूँ। क्योंकि मैं जीवन जीने के लिए आया हूँ, जीवन काटने के लिए नहीं आया हूँ।''**

तब क्या होगा? कृपया एकाग्र करिए—जब यह प्रार्थना बार-बार आप

इष्ट व सद्गुरु-कृपा से करेंगे तब सारा परिदृश्य ही बदल जाएगा। सब कुछ विपरीत हो जाएगा। **देह आपसे बँध जाएगी और आप देह से छूट जाएँगे।** पहले हम देह से बँधे थे और देह हमसे बिल्कुल भी नहीं बँधी थी। हम इसकी लीपा-पोती करने के लिए परिचय, पूर्णता, प्रतिष्ठा, प्रमाण, परिस्थितियों आदि के लिए व पागलपन में न जाने क्या-क्या करते थे, कौन-कौन से विभिन्न बन्धनों में बँधते चले जा रहे थे! लेकिन जब आप इस देह का नित्य सद्गुरु-कृपा से नित्य समर्पण करते हैं और समर्पण का समर्पण करते हैं तथा स्वयं को भी समर्पित करते हैं कि **तब एक समय ऐसा आता है, जब प्रभु की कृपा हो जाती है। जब कृपा हो जाती है तो वही देह जो आपको नचा रही थी, वह आपके लिए नाचने लगती है। अब देह आपसे बँधना चाहती है और आप देह से छूट जाते हैं।** इस कृपा-प्रकरण को मैं महाभारत की एक कथा के दृष्टांत से विस्तार में समझाऊँगा। कृपया एकाग्र करिए।

महाभारत का युद्ध भारतीय इतिहास में एकमात्र ऐसा युद्ध है जैसा न कभी हुआ और न कभी होगा। जब युद्ध की ठन ही गई तो अर्जुन व दुर्योधन दोनों ही भगवान श्रीकृष्ण के पास सहायता की प्रार्थना लेकर द्वारका पहुँचे। भगवान श्रीकृष्ण द्वारका में सत्यभामा के महल में सो रहे थे। पहले वहाँ अभिमानी दुर्योधन पहुँचा जो भगवान के सिर के पास बैठ गया। फिर वहाँ द्रौपदी और अर्जुन पहुँचे, जब द्रौपदी ने दुर्योधन को वहाँ आसीन देखा तो वह सत्यभामा से मिलने चली गई। अर्जुन भगवान श्रीकृष्ण के चरणों के पास बैठ गये। दोनों भगवान के जागने की प्रतीक्षा करने लगे। प्रभु की लीला थी। प्रभु उठकर बैठे तो पहले उनकी दृष्टि अर्जुन पर पड़ी क्योंकि वह चरणों के पास बैठा था और फिर वह मुड़े तो दुर्योधन को देखा। प्रभु ने दोनों का कुशलक्षेम जानकर आने का कारण पूछा। प्रभु सब जानते हैं, वह मात्र लीला कर रहे हैं। दोनों ने युद्ध में सहायतार्थ याचना की, तो प्रभु ने कहा कि एक ओर मेरी पूर्ण प्रतिष्ठित चतुरंगिनी सेना है और दूसरी ओर अकेला व निहत्था मैं हूँ और क्योंकि मैंने अर्जुन को पहले देखा है तो प्रथम चुनाव का अधिकार अर्जुन का है। अब दुर्योधन घबरा गया। प्रथम अधिकार अर्जुन को

दिया और अर्जुन तो सेना ही तो माँगेगा! निहत्थे कृष्ण को लेकर क्या करेगा! परन्तु उसे हैरान करते हुए अर्जुन रो पड़ा और श्रीकृष्ण से कहा, "प्रभु! मेरी ओर केवल तुम आ जाओ, भले ही तुम शस्त्र मत उठाना। बस, मेरे सारथी बन कर रथ चलाना।" दुर्योधन ने मन ही मन अत्यन्त प्रसन्न होते हुए ऊपर से बुझे हुए हाव-भाव दिखाते हुए कहा कि "प्रभु! इसने आपको माँग लिया है तो फिर मुझे आप सेना ही दे दीजिए।" प्रभु ने दोनों को आश्वासन दिया और दुर्योधन अत्यन्त प्रसन्नता और अभिमान में भरा वहाँ से निकल गया।

अब वहाँ कक्ष में केवल श्रीकृष्ण और अर्जुन ही रह गये। दोनों परम मित्र हैं। भगवान ने अब अर्जुन को बिस्तर पर ही बुला लिया व स्वयं विश्राम की मुद्रा में लेट गये। अर्जुन ने भगवान के दोनों चरणों को अपनी गोद में लेते हुए अपने पाँव भी फैला लिए। अर्जुन भगवान के चरण दबाने लगा। इधर द्रौपदी को जब पता चला कि दुर्योधन चला गया है तो वह और सत्यभामा दोनों उसी कक्ष में आ गईं। आप इस चित्र पर एकाग्र करिए। अनौपचारिक वातावरण में भगवान लेटे हैं व अर्जुन श्रीकृष्ण के चरणों को अपनी गोद में लिए हुए दबा रहा है और अपने दोनों पैर भी उसने बिस्तर पर सामने की ओर पसार दिए हैं। जब द्रौपदी व सत्यभामा दोनों उस शयनकक्ष में आईं तो अभिवादन के बाद अर्जुन के एक पाँव को दबाने के लिए द्रौपदी ने अपनी गोद में रख लिया और दूसरे पाँव को सत्यभामा ने अपनी गोद में रख लिया। इस सखाभाव में कोई मर्यादा नहीं है। द्रौपदी तो अर्जुन की पत्नी है, उसका अर्जुन का चरण दबाना तो ठीक है, परन्तु सत्यभामा ने भी अर्जुन का दूसरा चरण अपनी गोद में रखकर दबाना शुरू कर दिया और अर्जुन आनन्द ले रहें हैं। इस कथा का प्रतीकात्मक आध्यात्मिक अर्थ समझिए। **जब आप प्रभु के चरणों में समर्पित हो जाते हैं तो प्रभु की समस्त माया आपके चरणों में आ जाती है।**

सत्यभामा प्रभु की माया-शक्ति है, जो अर्जुन के चरण दबा रही है और अर्जुन दबवा रहा है। उसे सत्यभामा की हैसियत और महानता का इल्म ही

नहीं है, क्योंकि भगवान के श्रीचरण उसकी गोद में हैं और द्रौपदी अर्जुन (जीवात्मा) की माया-शक्ति है। **जब आप स्वयं को भगवान के चरणों में समर्पित कर देते हैं और प्रभु आपका समर्पण स्वीकार कर लेते हैं, तब भगवान की समस्त प्रकृति, समस्त मायाशक्तियाँ आपकी चेरी हो जाती हैं। उस परम पिता परमात्मा की शरण में चले जाने पर उसकी समस्त माया जिसका संघनित रूप आपकी देह है, वह भी आपके चरणों में स्वतः ही आ जाएगी। अपने समस्त रहस्य आपके सम्मुख खोलना चाहेगी और उन रहस्यों को हृदयंगम करने के लिए आपका मन भी बनाएगी, क्योंकि देह आपसे बँध जाएगी और आप देह से मुक्त हो जाएँगे। इस अवस्था को कहा है 'जीवन-मुक्ति'।** जीवन के रहते हुए आप जिस देह से बँधे हुए थे, वह आपसे बँधी हुई नहीं थी। वह स्वयं में ईश्वर की सम्पूर्ण महाप्रकृति की द्योतक थी, सच्चिदानंद परमात्मा की सम्पूर्ण महामाया का संघनित स्वरूप थी। उस देह को बाँधने के लिए आपने अनेक बन्धन उत्पन्न कर लिए व उन बन्धनों से जन्मों-जन्मान्तरों में आपको कष्ट, रोग, तनाव, भय, त्रास, विक्षेप, दुःख, पाप, पुण्य के अतिरिक्त कुछ नहीं मिला। **आप दुःखी हुए और उस पागल की तरह चिल्लाए कि मुझे पेड़ ने पकड़ लिया है, मुझे छुड़ाओ। अब सद्‌गुरु ने आपकी पीठ पर चिमटा मारा कि ''तू तो बँधा हुआ है ही नहीं, तुमने स्वयं इन बन्धनों को पकड़ा हुआ है। तूने ही पेड़ को पकडा़ है, पेड़ ने तुझे नहीं पकड़ा।''**

जब यह मानव-देह आपकी चेरी बन जाएगी, आपसे बँध जाएगी और आप इससे छूट जाएँगे तो मानव-देह स्वतः ही अपने वे समस्त रहस्य आपको बताएगी, जो आप जानना भी नहीं चाहते। **जो देह आपकी स्वामिनी बनी हुई थी, आप उस देह के स्वामी बन जाएँगे। अब वे सातों प्रकरण—परिचय, पूर्णता, प्रतिष्ठा, प्रमाण, प्राप्तियाँ, परिस्थितियाँ व पागलपन यहाँ भी चलेंगे।** आपके सारे परिचय आपके इष्ट की वजह से होंगे जैसेकि लड़की विवाह के बाद जब ससुराल जाती है तो एक तो उसका पति होता है, शेष अन्य रिश्ते-नाते उस पति की वजह से होते हैं। इसी प्रकार

आप हर परिचय को ईश्वर के ज़रिए कराते हैं, क्योंकि वह स्थिर खूँटा है। **यहाँ क्या होता है कि आप देह व संसार से तथाकथित बँधे हुए थे लेकिन संसार आपसे बँधा हुआ नहीं था, तो वह 'बन्धन सा' था। आप ही उस बन्धन से स्वयं जकड़े हुए थे और उस बन्धन के रख-रखाव के लिए आपने असंख्य बन्धन पाले हुए थे। अब आप प्रभु से 'बँध से' जाते हैं, क्योंकि प्रभु से माना हुआ आपका बन्धन संसार को 'बन्धन सा' ही लगता है।** जैसेकि मीरा ने भगवान श्रीकृष्ण को अपना पति मान लिया तो संसार के लिए वह **'बन्धन सा'** ही था। मीरा को श्रीमती कृष्ण गोपाल के नाम से कोई नहीं जानता, रही तो मीरा मेवाड़ के महाराणा की पत्नी ही। लेकिन श्रीकृष्ण के साथ उसका बन्धन पक्का था, क्योंकि वह खूँटा स्थिर है। कृष्ण मीरा को नहीं छोड़ेगा, उसका संसारी पति उसे छोड़कर चला जाएगा।

इस प्रकार जीवन का परिदृश्य ही बदल जाता है। साधारणतः लोग आवश्यकता के वक्त किनारा कर लेते हैं। फिर आप भगवान से बँधे से लगते हैं, लेकिन वह बन्धन पक्का होता है। संसार के सम्बन्ध, कष्ट, मुसीबत में आपको अकेला छोड़ कर कन्नी काट कर चले जाते हैं परन्तु श्रीकृष्ण कभी भी कन्नी नहीं काटते। चीर-हरण के समय जब भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, धृतराष्ट्र आदि सिर झुकाकर बैठे थे, श्रीकृष्ण द्रौपदी की लाज बचाने के लिए प्रकट हो गए। भगवान कभी दुःख और विपत्ति में आपका साथ नहीं छोड़ते, क्योंकि वह बन्धन शाश्वत है, स्थिर है। आपके सारे सम्बन्ध जो आपने अपने माता, पिता, पति, पत्नी, भाई, बहनों आदि के कारण बनाए हुए थे, जब आप ईश्वर से जुड़ जाते हैं, तो वे सारे सम्बन्ध आपके आध्यात्मिक सम्बन्ध हो जाते हैं। उनमें कोई बन्धन नहीं होता, लेकिन वे सम्बन्ध आपको आनन्द देते हैं। वे आपके स्वजन होते हैं, वे आपके लिए अन्तर्मन से प्रार्थना करते हैं।

आपकी प्रतिष्ठा ईश्वर के कारण होती है, आपकी पूर्णता ईश्वर की वजह से होती है, आपकी प्राप्तियाँ ईश्वर के कारण, ईश्वर के लिए होती हैं, आपकी परिस्थितियों का स्वामी भी वही होता है। आपका पागलपन

भी ईश्वर के लिए ही होता है। इसे कहा है 'दीवानगी'। आप पागल हो जाते हैं :–

''क्या-क्या बताऊँ मैं तेरे मिलने से क्या मिला
मुद्दत मिली, मुराद मिली, मुद्दा मिला,
सब कुछ मुझे मिला जो तेरा नक्शे पां मिला।''

उसकी एक झलक उसे झल्ला बना देती है, तो पागलपन वहाँ भी होता है। उसे अपने इष्ट के सिवाय और कुछ भी नज़र नहीं आता–***'जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है'।*** लेकिन यह दुनियावी पागलपन जैसा नहीं होता। बन्धन के सातो अंग यहाँ भी होते हैं–परन्तु सारा परिदृश्य बदल जाता है। देह आपसे बँध जाएगी और आप देह से मुक्त हो जाएँगे :–

''मैं तो नाला हूँ ज़िन्दगी से,
मगर ज़िन्दगी मुझसे प्यार करती है,
मैंने कितना इसे ज़लील किया,
फिर भी कमबख्त मुझ पर मरती है।''

देह आपको अपने समस्त सत्यों से स्वयं परिचित कराएगी। देह आपके अन्तिम सत्य से जीते जी आपको मिला देगी और **देह का अन्तिम सत्य आपकी भस्मी है।** यह देह आपको आपके शिव-स्वरूप को धारण करवा देगी। आप शिव-अंश हो जाएँगे। **पहले आपको देहाध्यास था और देह के परम सत्य को धारण करने के बाद आपको भस्माध्यास हो जाएगा।** आप स्वयं में खाक होंगे, पहले आप स्वयं में देह थे। पर यह **सब परम इष्ट व सद्‌गुरु कृपा व अन्ततः इस देह की कृपा से ही होगा।** देह छूटेगी नहीं बल्कि देह आपकी सेवा में आ जाएगी। आपका देह से अध्यास छूट जाएगा। यह आध्यात्मिक तकनीक है, जो मात्र हम भारतीयों की ही धरोहर है। आप इसे अवश्य आत्मसात् करिए।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(1 फरवरी, 2004)

मुक्ति

आज परम इष्ट-कृपा भगवान आशुतोष देवाधिदेव महादेव की सद्प्रेरणा एवं आप सब महाजिज्ञासुओं की जिज्ञासावश आपके सम्मुख वह विषय प्रस्तुत करने जा रहा हूँ, जो मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य है। इस विषय का नाम है—**'मोक्ष' अथवा 'मुक्ति'**। आपको स्मरण होगा कि इसी मंच से पिछले प्रवचन में हमने आपको **'बन्धन'** के विषय में बताया था। वह **'बन्धन सा'** था, आज मोक्ष है, लेकिन **'मोक्ष सा'** नहीं है। इस मोक्ष पर हम सब भारतीय संस्कृति के पोषकों एवं द्योतकों का जन्मसिद्ध अधिकार है। उस देवाधिदेव महादेव महाकालेश्वर की परम अनुकम्पा हम भारतीयों पर है कि मात्र हमें ही बार-बार पुनर्जन्म मिलता है। (ताकि जीवन दर जीवन व्यतीत करते हुए जिन आसक्तियों को लेकर हम देह छोड़ते हैं, उन्हें पूरा करने का हमें सहर्ष अवसर मिल सके)। भगवान ने यह सुविधा मात्र हमको ही दी है और जिसको यह सुविधा दी है, वह भारतीय के अतिरिक्त कुछ नहीं है। क्योंकि हम ऋषियों-मनीषियों की सन्तानें हैं, इसलिए भगवान अतिरिक्त रूप से हमारे पक्षधर हैं। **हमारी जीवन-यात्रा बहुत लम्बी है और उस मोक्ष को प्राप्त करने के बाद भी हमें इस विश्व में आकर लीलाएँ करने व खेलने का अधिकार भी है। इसलिए मनीषियों ने 'मोक्ष' के पाँच प्रकार मानें हैं—सायुज्य, सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य एवं कैवल्य।**

जीवात्मा स्वयं को देह के साथ **बँधा सा** मानकर जन्म-जन्मान्तरों में जन्म दर जन्म भटकता रहता है। हम उस देह के साथ बँधे हैं, जो हमारे साथ बिल्कुल भी बँधी हुई नहीं है। इसलिए हम देह के साथ बंधे से हैं। **देह**

स्वयं में स्वतन्त्र भी नहीं है और हमसे बँधी हुई भी नहीं है। यदि यह देह स्वतन्त्र नहीं है और हमारे साथ भी नहीं बँधी है तो किससे बँधी है? यदि हमसे बँधी नहीं है तो हम देह से क्यों बँधते हैं? यह परम रहस्य है–**देह बँधी है देह के निर्माता से, देह के पालनकर्त्ता से और देह के संहारकर्त्ता से। हम उस देह से बँधे है जो हमसे बिल्कुल भी नहीं बँधी है। इसलिए यह बंधन 'बन्धन सा' है।** हमें जन्मों-जन्मान्तरों से यह मिथ्याध्यास हो गया है कि **'मैं देह हूँ'** जिसे **'देहाध्यास'** कहते हैं। दूसरे, जब हमने देह पर अधिपत्य जमा लिया कि यह देह मेरी है, इसे शास्त्र ने **'देहाधिपत्य'** कहा है। देह की किसी भी गतिविधि–जन्म-मृत्यु, माता-पिता, देश, काल, परिस्थितियों, विभिन्न घटनाओं का कारण हम नहीं जानते। मैं **'देहाध्यास'** शीर्षक प्रवचन में इसका सविस्तार वर्णन कर चुका हूँ। देह के एक भी पल का हमें कोई ज्ञान नहीं है। इस पर हमारा कोई अधिकार नहीं है। उस देह के साथ हम इतना बँध गये हैं कि उस देह को ही अपना स्वरूप समझ लिया! यानि जुर्म की भी एक सीमा होती है, हमने तो सब सीमाएँ पार कर लीं।

इस देह को इसके निर्माता, पालनकर्त्ता व संहारकर्त्ता द्वारा किस समय क्या खेल खिलाया जाएगा, हमें कुछ भी ज्ञान नहीं है। उस देह के साथ हम तद्‌रूप हो गए और उसे अपना मान बैठे। इस मिथ्या अध्यास व अधिपत्य से हमने इस देह से वे कार्य लेने प्रारम्भ कर दिए जिसके लिए यह हमें दी ही नहीं गई थी। हमने इस देह के निर्माणकर्त्ता व संहारकर्त्ता से सम्पर्क करने का भी प्रयास नहीं किया और देह पर अनधिकृत कब्ज़ा करके अपनी योजनाएँ, परियोजनाएँ बनानी प्रारम्भ कर दीं। इस देह को अपने हिसाब से चलाना चाहा। वहाँ से दैवीय अदालतों का मुकदमा चला हम पर, क्योंकि यह पूर्णतः अनधिकार चेष्टा थी, अनधिकृत कब्ज़ा था।

अनधिकृत कब्ज़े के बाद चेतावनी भी मिली लेकिन हमने मात्र अपने लिए ही नहीं, अपने नाती-पोतों के लिए तथा न जाने किस-किस के लिए हाथ मारने शुरू कर दिए। उन बन्धनों से हम बँधे जो हमारे साथ बिल्कुल

भी नहीं बँधे थे। ईश्वर ने इतनी अद्‌भुत चमत्कारिक व रहस्यपूर्ण मशीन, इस देह के रूप में हमें दी थी, जिसका प्रयोग करना हमें बिल्कुल भी नहीं आता था। यह भेंट नहीं थी, क्योंकि देने वाला बिना बताए कभी भी चुपचाप इसे छीन लेता है। हम रोज़ अपनी आँखों से देखते हैं, लेकिन उसके बाद भी दुर्भाग्यवश अपनी आँखें मूँदे हुए हैं। इन परिस्थितियों में ईश्वर हमारे ऊपर केस क्यों न चलाता? कारण बताओ! चेतावनियाँ आतीं हैं, नोटिस पर नोटिस आते हैं, वह हमें रोज़ चमत्कार दिखाता है। जा, हम कहीं रहे होते हैं पहुँच कहीं और जाते हैं। योजनाएँ धरी की धरी रह जातीं हैं, परियोजनाएँ कागज़ों व फाइलों में बंद रह जातीं हैं और देह बनाने वाला इसे जब चाहे ले जाता है, क्योंकि देह का सर्वाधिकार स्वामी वही है। यह सब अपने आस-पास हम खुली आँखों से देखते हैं, लेकिन फिर भी हम देह से इस प्रकार बँध गए कि स्वयं को भूल कर मात्र देह के साथ तद्‌रूप हो गए।

यह तद्‌रूपता मिथ्या थी, देह पर अधिकार झूठा था, इसलिए हम इसे आत्मसात् नहीं कर पाए और देह का प्रयोग अपने हिसाब से करने लगे। चलो, यह भी कोई बड़ा अपराध नहीं था, क्योंकि जिसे जो आता है, वह वही तो करेगा। लेकिन हमने तो इसके सद्‌गुणों और सुकृतियों को अवगुण और विकार मान लिया। मैं छोटा सा उदाहरण देता हूँ। जैसेकि किसी निपट गँवार को एक आलीशान अत्याधुनिक सुविधा-सम्पन्न भवन दे दिया जाए, जिसके स्नानघर में नहाने के लिए निहायत कीमती व तकनीकी व्यवस्था हो, जिसका प्रयोग करना उसे न आता हो, क्योंकि वह तो बाल्टी में पानी भर कर नहाने का आदी है। वह अपनी अल्पज्ञता स्वीकार करने के स्थान पर उस व्यवस्था की आलोचना करे और विभिन्न सुविधाओं को भला-बुरा कहने लगे। यही काम हमने अपनी देह के साथ भी किया। इस देह को कोसा कि हम कामी हैं, क्रोधी हैं, मोही हैं, लोभी हैं, अहंकारी हैं। न जाने इस देह के इन दिव्य-उत्प्रेरकों को कितना भला-बुरा कहा गया और उन तथाकथित विकृतियों से मुक्ति पाने के लिए कैसी-कैसी कसरत की गई। यह जानने का प्रयत्न ही नहीं किया कि प्रभु ने ये विभूतियाँ हमें क्यों दीं हैं! इनका

प्रयोग कैसे किया जाए, किस दिशा में लगाया जाए। इस प्रकार हमारे द्वारा अपराध-दर-अपराध होते गए।

इतने बड़े बन्धन को हम मनोवैज्ञानिक तौर पर आत्मसात् नहीं कर पाए और देह के इस एक बन्धन को पुष्ट करने के लिए हमने अनेक बन्धन बनाने प्रारम्भ कर दिए। इस देह के परिचय, पूर्णता, प्रतिष्ठा, प्रमाण, प्राप्तियों, परिस्थितियों के लिए पागलपन में हम उलझते चले गए जिसका विस्तृत वर्णन मैं **'बन्धन'** शीर्षक प्रवचन में कर चुका हूँ। मैं आज इस व्यासगद्दी से आपको आश्वस्त कर देना चाहता हूँ कि देह असत्य व मिथ्या नहीं थी, क्योंकि यह स्वयं ईश्वर, उस सच्चिदानंद द्वारा निर्मित थी। **ईश्वर द्वारा निर्मित कोई भी वस्तु असत्य कैसे हो सकती है, वह चेतनता-रहित व आनन्द-रहित कैसे हो सकती है! वह ईश्वर जो स्वयं में सौन्दर्य, शक्ति, ऐश्वर्य, ज्ञान, ख्याति व त्याग-स्वरूप है, उसकी किसी भी कृति में ये समस्त विभूतियाँ क्यों नहीं होंगी! यह देह भी स्वयं में सत्य थी, जन्म-मृत्यु से रहित थी, चेतन थी और आनन्दपूर्ण थी।** क्योंकि, हमने इसका प्रयोग अपने हिसाब से किया, इसकी विभिन्न सुकृतियों को जाने-समझे बिना किया, तो इस शाश्वत देह को नश्वर घोषित कर दिया। आज हम निर्द्वन्द, बेबाक इस विषय पर अपनी अनुभूति इष्ट-कृपा से आपके सम्मुख रख रहे हैं, यह कहीं भी लिखा हुआ नहीं है।

हम क्यों कहते हैं कि मेरा जन्म हुआ, मेरी मृत्यु होगी। क्या किसी ने अपना जन्म होते देखा है, किसी ने अपनी मृत्यु भी नहीं देखनी क्योंकि वास्तव में देह का न जन्म होता है और न ही मृत्यु होती है। जब भी हम होश में होते हैं, अपने नाम-रूप की पहचान में होते हैं तो देह हमारे साथ होती है। **देह शाश्वत ईश्वर द्वारा निर्मित होने के कारण स्वयं में शाश्वत थी, अजर, अमर थी। उस शाश्वत ने सब कुछ शाश्वत ही बनाया था। ये सम्पूर्ण कोटि-कोटि महाब्रह्माण्ड विभिन्न विधाओं में शाश्वत ही निर्मित, पालित व संहारित हैं। यह सब सत्य, चेतन व आनन्द में होता है और पुनर्निर्माण भी सत्य, चेतन व आनन्द में अविरल होता रहता है। यह देह**

स्वयं में सत्य, चेतन व आनन्द थी और हम स्वयं में सत्य ही थे। लेकिन देह के साथ जो बन्धन था, वह असत्य इसलिए था, क्योंकि **यह देह हमसे एक क्षण के लिए भी बंधी हुई नहीं थी।** इसलिए यह **बन्धन** निराधार व असत्य था। गाय समझ ले कि वह खूँटे से बँधी है और खूँटा गाय से बँधा हुआ न हो तो वह बन्धन आधार-रहित ही तो होगा। अतः हम भी देह के इस निराधार बन्धन के कारण ही **बँधे से** हैं और उस निराधार बन्धन को आत्मसात् न कर पाने के कारण ही हमने इसके परिचय, पूर्णता, प्रतिष्ठा, प्रमाण, परिस्थितियों, प्राप्तियों के लिए पागलपन में अन्य अनेक निराधार बन्धन भी पाल लिए। जब बहुत बन्धन पाल लिए तो देह खिसक गई। वह गीत था नः—

'मैं मायके चली जाऊँगी तू देखते रहियो'

यह देह पता नहीं कब अपने मायके चली जाए और मायके जाकर यह दुबारा वापिस नहीं आती। जीवात्मा इसे याद करती रहती है, यह आती है तो नाम-रूप बदल-बदल कर आती है। जीवात्मा कुछ भूल जाता है, कुछ याद रखता है। लेकिन देह चली जाती है, जब देह बनाने वाला चाहता है, इसे ले जाता है। खिसयाया हुआ जीव आसक्तियों को लिए हुए तड़पता रहता है। संक्षेप में, देह एक निराधार बन्धन था, जिसे आत्मसात् करने के लिए जीवात्मा ने अन्य अनेक निराधार बन्धन बनाए और यह देह अचानक चली गई। अगर यह बन्धन आधार-युक्त होता तो परिदृश्य बदल जाता।

यह बन्धन आधार-युक्त कैसे होता? मैंने प्रवचन के प्रारम्भ में बताया था कि देह स्वयं में स्वतन्त्र नहीं है। यह अपने निर्माता, पालनकर्त्ता एवं संहारकर्त्ता से बँधी है। **होना तो यह चाहिए था कि हम उस बन्धन से बँधते, जिससे देह बँधी है। कृपया एकाग्र करिए। ईश्वर एक क्षण के लिए भी, एक निमिष मात्र के लिए भी हमसे विमुख नहीं होता, बल्कि हम ईश्वर से विमुख से हो जाते हैं, उससे हट जाते हैं। देह हमसे कभी नहीं बँधती लेकिन हम देह से बँध से जाते हैं। उस देह से हम बँधे जो हमसे कभी बँधी नहीं थी और उस ईश्वर से हम हटे जो हमसे कभी हटा नहीं**

था। जो नहीं हटा उससे हम हटे, इसलिए हम हटे से थे और जो नहीं बँधा उससे हम बँधे, इसलिए हम बँधे से थे।

यदि संस्कारोंवश, सद्‌गुरु-कृपावश, सत्संगवश हम भी उस ईश्वर से बँधते जो हमसे जुड़ा हुआ ही था, एक क्षण के लिए भी हमसे हटा नहीं था। **यानि हमें ईश्वर से जुड़ा होने की अनुभूति हो जाती, आभास हो जाता तो हम मुक्त हो जाते,** क्योंकि **'बन्धन'** और **'बन्धन से'** में बहुत अन्तर है। कोई **बँधा** हो, तो छुड़ाया जा सकता है लेकिन जो **'बँधा सा'** हो, जिसे अपने बँधने का भ्रम हो, उसे कौन छुड़ा सकता है? कोई व्यक्ति यदि वास्तव में रोगी हो तो उसे रोग-मुक्त किया जा सकता है, लेकिन यदि किसी को अपने रोगी होने का भ्रम हो, जो **'रोगी सा'** हो तो उसका इलाज कैसे हो सकता है?

मोक्ष को मैं अत्यधिक सरलीकृत करके आपके सम्मुख रख रहा हूँ। कोई ग्रन्थ मैं नहीं पढ़ा हूँ। इष्ट-कृपा से अपनी निजी अनुभूति आपके सम्मुख रख रहा हूँ। मैं पुनः पुनरावृत्ति करूँगा–देह हमसे कभी **बँधी** नहीं थी, इसलिए हम देह से **बँधे से** थे। तो देह मिथ्या नहीं थी, **देह के साथ यह बन्धन मिथ्या था।** ईश्वर हमसे कभी **हटा** नहीं था, इसलिए हम **हटे से** थे। ईश्वर से हमारा हटना मिथ्या था। यदि कभी इष्ट व सद्‌गुरु कृपावश हम भी ईश्वर से बँधते और हमें पुरुषार्थ द्वारा ईश्वर के साथ अपने बँधन का आभास हो जाता। हमें अनुभूति हो जाती कि ईश्वर से मैं एक पल के लिए भी पृथक नहीं हुआ हूँ तो जो देह ईश्वर से बँधी हुई थी, वह भी हमसे बंध जाती और हम उससे छूट जाते। पूरा परिदृश्य ही बदल जाता। देह हमारे आगे-पीछे घूमती कि श्रीमान्! मैं आपके साथ रहना चाहती हूँ, आपकी सेवा करना चाहती हूँ और आप उससे हट जाते, उसके स्वामी हो जाते :–

'मैं तो नाला हूँ ज़िन्दगी से मगर,
ज़िन्दगी मुझसे प्यार करती है
मैंने कितना इसे ज़लील किया,
फिर भी कमबख्त मुझपे मरती है।'

काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं अहंकार, ये उसी क्षण आपके दिव्य

उत्प्रेरक हो जाते ये कम पड़ जाते, आप ईश्वर से इनको बढ़ाने की प्रार्थना करते, कि **''हे प्रभु! मुझे महाकामी, महाक्रोधी, महामोही, महालोभी व महा अहंकारी बना दो।''** आप प्रार्थना करते—हे प्रभु! मेरी जीवन-यात्रा तुझ से तुझ तक हो, मेरा यही कर्मक्षेत्र हो। सब कुछ तुम्हारे साथ हो। मेरा कर्म मात्र इतना हो कि मैं हर क्षण देखता रहूँ कि तुम मेरे साथ हो, चाहे जहाँ भी तुम मुझे ले जाओ। मुझे मात्र इतना ज्ञान हो कि तुम केवल तुम ही मेरे अपने हो, मेरे सब कुछ हो।'' जब आप स्वयं को ईश्वर के साथ बाँध देते हैं तो ईश्वर तो आप से एक पल के लिए भी पृथक नहीं होता। इसलिए ये काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार तथा समस्त नशे आपके ईश्वर-निमित्त ही होते हैं। **ईश्वर ने हमें मानव देह दी ही इसलिए थी कि इस उत्कृष्टतम, विलक्षणतम व अत्यधिक दिव्य-देह को पाकर, उसके द्वारा दी गई परम उत्कृष्ट दिव्य-बुद्धि द्वारा हम उसकी समस्त संरचना की प्रशंसा करें।** यह जानने का प्रयत्न करें कि मेरी चेतन सत्ता का अर्थ क्या है? मैं वास्तव में मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ और मुझे कहाँ जाना है?

कुत्ता, बिल्ली, चूहा, मेंढक आदि ईश्वर की इस परम उत्कृष्ट संसार महानाट्यशाला की प्रशंसा नहीं कर सकते। **अतः उसने मात्र मानव को यह बुद्धि दे दी ताकि वह उसकी प्रशंसा कर सके। परन्तु मानव ने इस बुद्धि से वाह-वाह की बजाय हाय-हाय करना प्रारम्भ कर दिया। हमें यह चाहिए, वह चाहिए, न जाने क्या-क्या चाहिए अपने बच्चों के लिए, परिवार के लिए, समाज के लिए, देश, धर्म, जाति के लिए और न जाने किस-किस के लिए।** अपने बच्चे के गर्भ में आते ही उसके कैरियर के विषय में सोचना प्रारम्भ कर दिया, यह भी जानना नहीं चाहा कि वह बच्चा आपका लगता कौन है! मानव प्राप्य की प्राप्तियों के पीछे दौड़ने लगा। देह जिन विभूतियों से विभूषित थी, उन्हीं की प्राप्ति में इसने देहाध्यासवश ईश्वर-प्रदत्त समस्त शक्तियों को झोंक दिया। मानव-देह के परम सत्य उस भस्मी अथवा वैराग्य को जानबूझकर, मूर्खतावश अथवा अनजाने में अनदेखा व उपेक्षित कर दिया। इसी कारण जो सौन्दर्य, शक्ति, ऐश्वर्य, ज्ञान, ख्याति

आदि विभूतियाँ हमारी अपनी धरोहर थीं, उन्हीं की प्राप्ति में हम भागते-भागते आसक्तियों को लिए हुए पुनः पुनः जन्मने व मरने लगे। ऐसे लोग मरने पर अपनी वस्तुओं की आसक्ति के कारण प्रेत-योनि में वहीं भटकते रहते हैं। यही **बन्धन सा** था, क्योंकि देह तो हमसे बँधी हुई नहीं थी, लेकिन हम उससे बँधे थे। उस बन्धन के कारण दैवीय अदालत से हमारे विरुद्ध केस चला—**'प्रारब्ध'** के रूप में, जिस केस की फाइल जन्मों-जन्मान्तरों में हमारे साथ चलती है। इसी के अन्तर्गत माँ के गर्भ में गर्भाधान से लेकर मृत्यु के उपरान्त अस्थि-विसर्जन तक सम्पूर्ण जीवन का निर्माण, पालन व निर्देशन अंकित रहता है।

हम देह पर अधिकार करने से बाज नहीं आते। यह हमारी फितरत व स्वभाव बन चुका है। उस देह से, जो हमारे साथ कभी भी बँधी नहीं थी, हम बँध जाते हैं और वह ईश्वर जिससे हम **हटे** से हैं, वह ईश्वर हमसे एक पल के लिए भी नहीं हटता। हमारा अस्तित्व ही उससे है। **जिस दिन हमें इस सत्य की सिद्धि हो जाएगी, हमें ईश्वर के अपने साथ सदा रहने की अनुभूति हो जाएगी तो वह भी बन्धन तो होगा लेकिन वह बंधन आधार-सहित होगा, पक्का होगा, शाश्वत** होगा, जबकि देह से हमारा बंधन निराधार है, क्योंकि देह तो हमसे कभी भी नहीं बँधती। बन्धन व मोक्ष में मात्र इतना ही अन्तर है। **जब आप आधार-रहित बन्धन से छूट कर आधार सहित बन्धन से बँध जाएँगे तो आप मुक्त हो जाएँगे। मोक्ष भी बन्धन है।** ईश्वर शाश्वत है। जब हम आधार-सहित बन्धन से बँधेंगे तो हम निराधार बन्धन से मुक्त हो जाएँगे। इस परिस्थिति का नाम है **'मोक्ष'**।

देह रूपी आधार-रहित, निराधार बन्धन से बँधने के कारण हम मलिन हो गए, विक्षिप्त व भयभीत हो गए और हम स्वयं को भूल गए हमारे व हमारे शुद्ध सच्चिदानंद स्वरूप के बीच आवरण पड़ गया और आधार-सहित बन्धन से बँधते ही ईश्वर से तो हम जुड़े हुए हैं ही। जब हमें उसका आभास हो जाता है, उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति हो जाती है, तो हम नश्वर बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं। सब मल, विक्षेप व आवरण समाप्त हो जाता है। इस

स्थिति का नाम है, **'मुक्ति'** :–

'न मैं बन्दा था, न खुदा था, मुझे मालूम न था,
दोनों इल्लत से जुदा था, मुझे मालूम न था
चाँद बदली में छिपा था, मुझे मालूम न था
मैं खुद ही खुद में पर्दा बना था, मुझे मालूम न था।'

आप सोच रहे होंगे कि यह तो बड़ा सरल है। कभी यह सोचने की भूल मत करना। देह व देह के बंधनों से हट कर ईश्वर से जुड़ जाओ, पर यह कैसे होगा? क्या यह इतना सहज है? इसकी प्रक्रिया क्या है? **वस्तुतः यह समस्त प्रकरण कृपा-साध्य है, कर्म-साध्य नहीं है।** जन्मों-जन्मान्तरों में धक्के खाते-खाते जब अन्दर से एक हूक, एक आर्त्तनाद उठती है कि ''प्रभु! मैं कौन हूँ, तुम कौन हो, कहाँ हो? तुम सच्चिदानंद हो, तो मैं सच्चिदानंद क्यों नहीं हूँ? तुम सौन्दर्यवान हो, तुम सशक्त हो, समर्थवान हो, तुम सब कुछ हो। मुझ में और तुझ में इतना अन्तर क्यों है?'' बेबसी में यह आर्तनाद उठती है तो प्रभु की, सद्गुरु की कृपा हो जाती है। अब उस पेड़ को पकड़े हुए पागल का चित्र अपने स्मृति-पटल पर लाइए जो इस भ्रम में था कि पेड़ ने उसे पकड़ा हुआ है महात्मा ने उसकी पीठ में चिमटा मारा तो वह तथाकथित बन्धन से छूट गया। इसी प्रकार जब हम भी उस पागल की तरह आर्तनाद करते हैं कि मुझे छुड़ाओ, मुझे संसार ने पकड़ लिया है तो सद्गुरु चिमटा मारता है। बशर्ते आप चिल्लाने लगें तब सद्गुरु की कृपावश आपको आभास हो जाता है कि देह व संसार ने तो आपको पकड़ा ही नहीं था। आपने ही स्वयं को इनसे जकड़ा हुआ था। यह मेरा नाती, पोता, यह मेरी फैक्टरी, धन, दौलत, पद, पोस्ट, प्रोपर्टी, डिग्रियाँ, यह मेरा देश, धर्म, कर्म, जाति, वर्ण, मान, सम्मान न जाने किस-किस से, काल से, परिवार से, जन्म से, मृत्यु से हम बँधे हुए हैं। **उन सबसे हम बँधे हैं जो हमारे से बिल्कुल भी बँधे हुए नहीं हैं।** हमारी पोस्ट हमसे बँधी नहीं है, हम ही उससे बँधे से हैं। हमारा व्यवसाय हमसे बँधा नहीं है, हम ही उससे बँधे से हैं। अरे मर के तो सभी छोड़ेंगे, जीते जी छोड़ कर देखिए?

जीते जी छूटने का एक ही उपाय है, जिसे मैं अपने विभिन्न प्रवचनों में बार-बार बता चुका हूँ कि **अपनी भस्मी को जीते जी आत्मसात् करिए। यदि आप उस भस्मी को (जो तब बनेगी जब हम नहीं होंगे) अपने वर्तमान में आत्मसात् करेंगे तो वह भस्मी जड़ नहीं होगी, वह चेतन हो जाएगी। आप शिव-तुल्य हो जाएँगे।** आप भस्मी होकर ईश्वर की तरह ही सच्चिदानंद, देशातीत, धर्मातीत, कर्मातीत, कालातीत, सम्बन्धातीत, लिंगातीत, त्रिगुणातीत हो जाएँगे। आप खाक होकर ही प्रभु के साथ सम्बन्ध बना सकते हैं। चाहे आप कितने बड़े शासक अथवा प्रभुत्व वाले क्यों न हों! आप ईश्वरतुल्य नहीं हो सकते। भस्मी को जीते जी धारण करते ही आपमें शिवत्व जाग्रत हो जाएगा और सभी पाँच विभूतियाँ (सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य व ख्याति) जिनके लिए आप जन्म-जन्मान्तरों में भागते रहे, वे आपसे ही प्रकट होनी शुरू हो जाएँगी। उस महाशेष भस्मी को धारण करते ही आप सब एक समान हो जाएँगे। आपके समस्त वैर, विरोध, ईर्ष्या, द्वेष, राग आदि समाप्त हो जाएँगे।

जब ईश्वर को जानने की इच्छा उत्पन्न होती है तो उसे शास्त्र ने **जिज्ञासा** कहा है। जब जीव में जिज्ञासा उत्पन्न होती है तो ईश्वर चौकन्ना हो जाता है कि कोई मुझे चाहता है, मेरे बारे में जानना चाहता है तो ईश्वर उस जीव को कई प्रकार से प्रोत्साहन देता है जैसेकि सरकार व्यापार या कोई फैक्टरी लगाने के लिए प्रोत्साहन-राशि देती है, इसी प्रकार ईश्वर भी अपनी समस्त दैवीय शक्तियों को उस जीव को हर प्रकार से सुविधाएँ देने में लगा देता है। पहला प्रोत्साहन यह मिलता है **कि ईश्वर आपको सहज ही श्रद्धा अर्थात् सत्य को धारण करने की क्षमता प्रदान करते हैं।** आपकी आई. क्यू. वाली बुद्धि शान्त होने लगती है और अन्य दिव्य-बुद्धियाँ **प्रज्ञा, मेधा, विवेक व ऋतम्भरा** जाग्रत होने लगती हैं। ये दिव्य-बुद्धियाँ पहले आई. क्यू. वाली बुद्धि से आच्छादित रहती हैं अब जिज्ञासा जाग्रत होते ही यह आवरण हट जाता है। हमारे ऋषियों-मनीषियों द्वारा प्रदत्त दिव्य-बुद्धियाँ जाग्रत होकर ईश्वरीय रहस्यों को पकड़ने लगती हैं। इसके

अतिरिक्त अशान्त, अस्थिर व अशक्त मानवीय-मन शान्त, सशक्त व स्थिर ईश्वरीय-मन में परिवर्तित होना प्रारम्भ हो जाता है। आपकी वासनाएँ उपासना बन जाती हैं, आपकी आसक्तियाँ भक्ति बन जाती हैं और संसार में जो आपका राग था वह ईश्वरीय चरणों के अनुराग में परिवर्तित हो जाता है। ये परिवर्तन चुपचाप आपके भीतर ईश्वरीय-कृपा से आने शुरू हो जाते हैं।

ईश्वर जब मेहरबान हो जाते हैं तो उसकी मेहरबानियों की कोई सीमा नहीं होती। उसी प्रकार जैसेकि आपका पुत्र यदि कुपुत्र हो जाए, भटक जाए और फिर अपना अपराध स्वीकार कर आपकी शरण में आना चाहे तो बाप अपने दोनों हाथ उसके लिए खोल देता है। **इसी प्रकार ईश्वर भी आपकी प्रतीक्षा कर रहा होता है। वही परम पिता परमात्मा कृपा करके जीव को सद्गुरु के द्वार पर पहुँचा देता है। संक्षेप में जीव में जब जिज्ञासा उत्पन्न होती है तो ईश्वर उसे श्रद्धा, मेधा, प्रज्ञा, विवेक व ऋतम्भरा से युक्त कर, मानवीय-मन को ईश्वरीय-मन में परिवर्तित कर, वासनाओं को उपासना, आसक्तियों को भक्ति और राग को अनुराग में बदलकर सद्गुरु से भी मिला देता है।** जिज्ञासु जब सद्गुरु के पास जाता है तो सद्गुरु पहचान जाता है, कि वह जीव ईश्वर द्वारा भेजा गया है। उसके अपने परीक्षण होते हैं, उसे कोई मूर्ख नहीं बना सकता। सद्गुरु उस जिज्ञासु को ईश्वर के ईश्वरत्व की किसी भी तरह से अनुभूति करवाता है। उसके बाद गुरु का गुरुत्व सिद्ध होने पर जब सद्गुरु की कृपा होती है तो सद्गुरु उस जिज्ञासु को मोक्ष का अधिकारी (मुमुक्षु) बनाकर पुनः ईश्वर के द्वार पर छोड़ देता है और स्वयं हट जाता है। अब न वहाँ शिष्य रहता है और न गुरु। वह मुमुक्षु बन जाता है और फिर स्वयं ईश्वर उसे आत्मज्ञान देते हैं :–

'सोइ जानइ जेहि देहु जनाई, जानत तुम्हहि तुम्हहि होइ जाई।'

सद्गुरु जिज्ञासु को ईश्वर के बारे में जनवाता है, उसके ईश्वरत्व की अनुभूति करवाता है लेकिन यदि आप ईश्वर को जानना चाहते हैं तो उसे स्वयं ईश्वर ही जनवाएगा। हाँ! **यदि आपने सद्गुरु को ईश्वर मान लिया है तो**

उस में भी इतनी क्षमता होती है कि वह ईश्वर को भी जनवा सकता है। मुमुक्षु को जब ईश्वर के द्वार पर सद्‌गुरु पहुँचा देता है तो ईश्वर की कृपा से वह मुमुक्षु, मुक्त हो जाता है। जो मुक्त होता है वह मानव नहीं रहता। वह क्या हो जाता है, वह ही जानता है! **सद्‌गुरु जिस अवस्था में हो उसे प्रणाम करना, उसके कृत्यों में अपनी बुद्धि कभी मत लगाना। नहीं तो बुद्धि विकृत हो जाएगी।** आप नहीं जानते वह कहाँ विचर रहा है। ईश्वर ही आपको ईश्वर के बारे में जनवाते हैं, और उसके बाद बहुत कुछ होता है :–

''मैंने यार को जां बेजा देखा,
कहीं बन्दा कहीं खुदा देखा,
कहीं जाहिर, कहीं छिपा देखा,
ज़र्रे-ज़र्रे में तेरे हुस्न का सरापा देखा,
तेरी वहदत में भी कसरत का तमाशा देखा,
दुनिया वाले तुझे ढूँढने बियाबान गए,
जब मैंने उसे देखा अपने दिल में खुलासादेखा,
शान तेरी दुनिया में निराली देखी,
सारी खलकत तेरे दर पे सवाली देखी,
जिसे आँखें खुदा ने दी वह पत्थर में खुदा देखे,
जिसका हो दिल पत्थर वह पत्थर में क्या देखे?''

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(15 फरवरी, 2004)